CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

7·6

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसाद और पन्त का तुलनात्मक विवेचन

सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कु. पुष्पा जैन
B.A. III
B.H.U.

प्रसाद जी के सम्मुख एक ओर तो नव युग - प्रवर्तक भारतेन्दु जी प्राचीनता के प्रतिरोध के रूप में खड़े थे और दूसरी ओर पाश्चात्य नाटकों की अभिनय कला अपनी नवीन मोहनी शक्ति का जादू डाल रही थी इस संधिकाल में प्रसाद जी ने साहित्य सृजन का कार्य प्रारंभ किया। प्रसाद जी ने समन्वयात्मक शैली का अनुगमन किया। उन्होंने भारतीय रसविधान और पाश्चात्य शील वैचित्र्य के समन्वय का पथ अपनाया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसाद एवं पन्त

का

तुलनात्मक विवेचन

लेखक

प्रो० राम रजपाल द्विवेदी, एम० ए०

प्रकाशक

सरस्वती पुस्तक सदन,

मोती कटरा, आगरा।

प्रथम संस्करण

संवत् २०१४ वि०

मूल्य ४॥)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय सूची

१—व्यक्ति एवं व्यक्तित्व	१
२—काव्य-ग्रन्थ	१४
३—प्रसाद एवं पन्त से पूर्व हिन्दी कविता	५२
४—प्रसाद-पन्त एवं छायावाद ।	६२
५—प्रसाद-पन्त एवं रहस्यवाद—	६८
६—प्रसाद-पन्त एवं प्रगतिवाद—	१२७
७—प्रसाद एवं पन्त गीति काव्य	१५६
८—प्रसाद-पन्त एवं नारी	२५०
९—प्रसाद एवं पन्त का प्रकृति चित्रण	२१९
१०—प्रसाद एवं पन्त का दार्शनिक चिन्तन	२६९
११—प्रसाद एवं पन्त की भाषा शैली	२९९
१२—छन्द योजना	३२१
१३—प्रसाद एवं पन्त की अलंकार योजना	३३२
१४—और अन्त में	३५५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संतोष कहाँ ? दो वर्ष बाद ही उनके ज्येष्ट भ्राता का दीपक बुझ गया। ऐसा वज्रपात ! ऐसे पारिवारिक आघात से तो चट्टान के भी आँसू आ जाते ! ! अतः यदि प्रसाद कवि बन गए तो आश्चर्य ही क्या ? पहला कवि भी तो उन्हीं की भांति वियोगी रहा होगा। बारह, पन्द्रह, सत्रह वर्ष की आयु में ही जिसने अपने पिता, मां,, अग्रज (एवं आगे चलकर दो पत्नियों) को कफन के नीचे देखा उसकी घनीभूत पीड़ा का अंदाज कैसे लगाया जा सकता है ? उसके करुणाकलित हृदय की गरजती हुई असीम वेदना की माप कैसे की जा सकती है ? आह ! संभवतः उनके वेदना से लदे हुए गीत इसीलिए इतने मधुर हैं।[1]

यदि प्रसाद जी के स्थान पर कोई अन्य व्यक्ति होता तो निश्चय ही वह इतने आघातों के उपरांत निराशावादी हो जाता किंतु प्रसाद सदैव आशावादी एवं आनंदवादी रहे। हाँ, उन्हें अपने जीवन-संघर्षों के कारण नियति में अडिग विश्वास हो गया था। उनकी यह आस्त जीवन पर्यन्त रही। 'जो होगा वह तो होगा ही'—इसमें उनका अविचल विश्वास था। उनकी प्रत्येक रचना में नियतिवाद बोलता है किंतु यह नियतिवाद प्रसिद्ध उपन्यासकार टॉमस हार्डी (Thomas Harday) के नियतिवाद से सर्वथा भिन्न है। उसके पात्र इस विश्वास के कारण अकर्मण्य हो जाते हैं, हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं बौद्धों के दुःखवाद का साकार मूर्ति बन जाते हैं किन्तु प्रसाद के पात्रों को तो इससे और भी बल मिलता है, वे कर्मण्य बनकर जीवन-सँग्राम में, भविष्य से निश्चिंत होकर, कूद पड़ते हैं। अपनी जीवन-तरी को झंझाओं में डालने से किंचित्मात्र भी नहीं हिचकते। राय कृष्णदास की पहली पत्नी की मृत्यु पर प्रसाद ने कहा था—"नियति चैन नहीं लेने देती।" उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द की अर्थी के साथ जाते समय भी वे चिंतित नहीं थे क्योंकि जो होना था वही तो हुआ। इतना ही नहीं वे क्षय रोग से आक्रांत हो गये, लोगों ने स्थान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं वायु-परिवर्तन के लिए उनसे बहुत आग्रह किया किन्तु जो मानव को 'नियति का दास' मानता आया क्या स्वयं उस नियति से बचने के लिए कहीं दूर जाता? नहीं। उन्होंने कहा—"मैं कहीं नहीं जाऊँगा। मैं जानता हूँ जो होना होगा वह तो होकर ही रहेगा" उनका ऐसा दृढ़ विश्वास था नियति में!! कवि उमर-खैयाम की निम्न रुबाई में उनकी दृढ़ आस्था थी :—

किसी की लौह लेखनी भाल-
शिला पर लिख जाती कुछ लेख,
न फिर फिरती पीछे की ओर,
लिखा क्या इतना तो ले देख।
न कम कर देगी आधी पंक्ति,
देख सब तेरी भक्ति, विवेक,
न तेरे आँसू की ही धार,
सकेगी धो लघु अक्षर एक।*

प्रसाद जी की दिनचर्या बड़ी व्यस्त थी। साहित्य-प्रेम के कारण उन्हें व्यवसाय की ओर ध्यान देने का समय ही नहीं मिलता था—ब्रह्मानंद-सहोदर को चखने वाला कवि नौन-तेल की ओर क्या देखता? उन्हें अर्थ से तनिक भी मोह नहीं था। उन्होंने कभी किसी पत्रिका से एक भी पैसा नहीं लिया। साहित्य एकेडेमी एव नागरी प्रचारिणी से प्राप्त हुए पुरस्कारों को इन्होंने नागरी प्रचारिणी को दे दिया था। उनका कार्य चुपचाप लिखना एवं गहन अध्ययन करना था। संध्या वेला में इनकी दूकान के सामने

* वच्चन द्वारा अनूदित श्री फ़िट्ज़जिराल्ड (Edward Fitzserald) की यह अनुवादित पंक्तियाँ :—

"The Moving Finger writers, and, having writ,
Moves on; nor all thy Piety nor wit
Shall lure it back to cancel Half a Line,
Nor all thy Tears wash out a word of it."

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाले चबूतरे पर साहित्यिक बैठक जमती जिसमें साहित्यिक तर्क-वितर्क होते रहते। महाकवि अपना मधुर मौन भँग नहीं होने देता, बहुत पूछे जाने पर ही कहीं अपना मत प्रगट करता। सज्जनता की तो वे साकार प्रतिमा थे। इसी का बेजा लाभ उठाने के लिए उनके यहाँ व्यर्थ समय नष्ट करने वाले व्यक्ति भी एकत्र हो जाते, किंतु प्रसाद की सुजनता उन्हें मना करने से रोके रहती। वे एक साथ सहृदय, मिलनसार, हँसमुख एवँ व्यवहार-कुशल थे। अपनी ओर से किसी का भी रोयाँ दुखी नहीं होने देते थे। अपने कटु से कटु आलोचकों के विषय में भी वे कुछ भी तो नहीं कहते थे। इतना ही नहीं वे आत्मविज्ञापन एवं आत्म-श्लाघा से बहुत डरते थे। एक बार स्वर्गीय प्रेमचंद ने अपने पत्र 'हँस' का आत्मचरितांक निकाला जिसमें तत्कालीन साहित्यिकों के चरित्र छपे। उन्होंने प्रसाद जी से भी आग्रह किया। उत्तर में उन्होंने जो पंक्तियाँ लिखकर भेजीं वे उनकी महानता की द्योतक हैं :—

मधुप गुनगुनाकर कह जाता कौन कहानी यह अपनी,
मुरझा कर गिर रही पत्तियाँ देखो कितनी आज घनी।
इस गंभीर अनन्त-नीलिमा में असंख्य मानव-इतिहास—
वह लो, करते ही रहते हैं, अपना व्यंग्य मलिन उपहास।
तब भी कहते हो—कह डालूँ दुर्बलता अपनी बीती।
तुम सुनकर सुख पाओगे, देखोगे यह गागर रीती॥
किंतु कहीं ऐसा न हो कि तुमही खाली करने वाले—
अपने को समझो, मेरा रस ले अपनी भरने वाले।
यह विडम्बना, अरी सरलते! तेरी हँसी उड़ाऊँ मैं।
भूलें अपनी, या प्रवंचना औरों की दिखलाऊँ मैं॥
उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ मधुर चांदनी रातों की।
अरे खिलखिला कर हँसते होने वाली इन बातों की॥
मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं स्वप्न देखकर जाग गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आलिंगन में आते आते मुसका कर वह भाग गया ॥
जिसके अरुण कपोलों की मतवाली सुन्दर छाया में।
अनुरागिनी उषा लेती थी निज सुहाग मधुमाया में ॥
उसकी स्मृति पाथेय बनी है थके पथिक की पंथा की,
जीवन को उधेड़ कर देखोगे क्यों मेरी कन्था की ?
छोटे से जीवन की कैसे बड़ी कथाएँ आज कहूँ ?
क्या यह अच्छा नहीं कि औरों की सुनता मैं मौन रहूँ ?
सुन कर क्या तुम भला करोगे मेरी भोली आत्म कथा ?
अभी समय भी नहीं—थकी सोई है मेरी मौन-व्यथा।

प्रत्येक शब्द में कितनी कसक है, कितनी वेदना है, कितनी छटपटाहट है। चाहे हम नहीं जानें किन्तु अवश्य ही कोई उनके स्वप्नों का चोर रहा है जो आलिंगन से पूर्व ही भाग गया है—मुसकराकर ! उनका हृदय सदैव उसी वेदना से अभिभूत रहा और यह तो नियम ही है कि जब हृदय अत्यन्त भरा होता है तो रसना मौन हो जाती है इसीलिए तो प्रसाद—'छोटे से जीवन की कैसे बड़ी कथाएँ आज कहूं ? ? "उद्धव-शतक के कान्ह की भी तो यही दशा हो गई थी अतः उन्होंने :

नैंकु कही बैननि, अनेक कही नैननि सौं,
रही सही सोऊ कहि दीनी हिचकिन सौं ॥

जहाँ तक उनके व्यक्तिगत जीवन का सम्बन्ध है वे बड़े सात्विक वृत्ति के शिवोपासक व्यक्ति थे। ईशोपनिषद् के 'तेन त्यक्तेन भुंजी था' के अनुसार प्रसाद जी जगत को ईश्वर का प्रसाद मानते थे एवं अनासक्ति दृष्टि से उसका सप्रेम भोग करना ही समीचीन समझते थे। वे शैवागमों के अनुसार 'शरीरं त्वं शंभो' के अनुयायी थे अतः अपने दैनिक जीवन में प्रत्येक व्यक्ति का 'आइए प्रभु' कह कर स्वागत करते थे। वे जीवन की सार्थकता माया कह कर, त्याग करने में नहीं अपितु ललकारकर आस्वादन करने में मानते थे। नियमित रूप से वे पौराणिक एवं संस्कृत ग्रंथों का परायण करते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतः उनके ज्ञान का कोष अपरिमित था। शतरंज के अतिरिक्त वे अन्य कोई खेल नहीं खेलते। पान के वे बहुत शौकीन थे। पाक-शास्त्र में भी बड़े निपुण थे। इसके अतिरिक्त उन्हें पुष्पों से बड़ा प्रेम था इसीलिए उन्होंने अपने घर के सामने एक वाटिका लगा रक्खी थी जिसमें विभिन्न प्रकार के पौदे थे। वे उसका पालन स्वयं करते। वाटिका के पारिजात के वृक्ष के नीचे एक पत्थर की चौकी थी, जिस पर बैठ कर वे अपनी रचनाएँ सुनाते—वैसे कवि-सम्मेलनों से वे सदैव दूर रहते। व्यायाम में उन्हें बचपन से ही अभिरुचि थी अतः एक हजार बैठक और पाँच सौ दण्ड वे प्रतिदिन लगाते थे। इसी कारण उनकी दैनिक खुराक में घी-दूध-फल के अतिरिक्त आधा सेर बादाम भी थे। उनका शरीर अत्यन्त सुगठित था। प्रसाद जी के परमस्नेही श्री विनोद शकर व्यास के शब्दों में "प्रसाद जी का कद मध्यम श्रेणी का था। गौर वर्ण, गोल मुँह, दाँत सब एक पंक्ति में हँसने में बहुत स्वाभाविक मालूम होते थे। जवानी में ढाका की मलमल का कुरता और शांतिपुरी धोती पहनते थे लेकिन बाद में खद्दर का भी उपयोग करते रहे। जाड़े में सुँघनी रंग के पट्टू का कुर्त्ता अथवा सकरपारे की सींवन का रुईदार ओवरकोट पहनते थे। आँखों पर चश्मा और हाथ में डण्डा—प्रसाद जी का व्यक्तित्व बहुत ही आकर्षित था। "डा० नगेन्द्र उनके व्यक्तित्व के विषय में इस प्रकार लिखते हैं—"शांत गम्भीर सागर जो अपनी आकुल तरंगों को देख कर धूप में मुस्करा रहा है या फिर गहन आकाश जो झंझा और विद्युत को हृदय में समा कर चाँदनी की हँसी हँस रहा है…… …… ऐसा ही कुछ प्रसाद का व्यक्तित्व था।"

किन्तु प्रकृति का विधान बड़ा जटिल (Rigid) है। निशीथ के प्रथम प्रहर में मुसकराता हुआ तारा दिनकर की प्रथम रश्मि आने से पूर्व ही आकाश की गहन नीलिमा में विलीन हो जाता है। वृन्त पर मुसकराते हुए कुसुम की बाट धूल जोहती रहती है। यौवन को मुसकराता देख कर बुढ़ापा अट्टहास कर उठता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इतराते हुए मानव के भाल में उसके अनजाने ही नियति टेढ़ी लकीर खींच देती है। किन्तु क्या वह लकीर मिट सकती है? या फिर मिटाई जा सकती है? १८ जनवरी १९३७ से उन्हें ज्वर आने लगा। २२ फरवरी को उनके कफ की जाँच कराई गई—यह क्या? यह तो राजयक्ष्मा था। उनकी पत्नी की इहलीला भी तो इसी के द्वारा समाप्त हुई थी। उनसे स्थान परिवर्तन के लिए बहुत कहा गया किन्तु नियतिवादी प्रसाद पर इसका तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। जो होना होगा वह यहीं होगा"—उनका सीधा-सा करुण उत्तर था। १४ नवम्बर की संध्या से उनकी दशा और भी खराब हो गई, साँस तक लेना कठिन था। १५ नवम्बर १९३७ को हिन्दी साहित्य के इतिहास में कुछ और पन्ने जुड़ने से रुक गए। हरिश्चंद घाट पर, उनके पूर्वजों की प्रथानुसार प्रसन्नवदन प्रसाद की चिता धू-धू करके जल उठी। उन की कोमल जीवनी विकराल लपटें आकाश में लिखने लगीं। श्री मैथिलीशरण कह उठे :

'जयशंकर' कहते-कहते ही अब भी काशी आवेंगे।
किंतु 'प्रसाद' न विश्वनाथ का मूर्तिमान हम पावेंगे॥
तात, भस्म भी तेरे तनु की हिन्दी की विभूति होगी।
पर हम जो हँसते आते थे रोते रोते जावेंगे॥

श्री सुमित्रानंदन पन्त

"एक वार पंत जी को इंगित करके इनके पिता पं० गंगादत्त पन्त ने एक साधु से कहा—'यह मेरा सबसे छोटा वेटा है' साधु ने कहा—'सबसे छोटा या सबसे बड़ा?"

—एक तथ्य

प्रकृति की वगिया में खिला हुआ एक ग्राम है कौसानी। यह अल्मोड़े से ३०-३२ मील की दूरी पर है। कवि पन्त ने सर्व प्रथम इसी गाँव में २० मई १९०० को अपने शिशु-नयन खोले। उस समय तक बालक प्रसाद जीवन का एक दशक बिता चुका था। आपके पिता का नाम पं० गंगादत्त एवं माँ का नाम श्रीमती सरस्वती था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गंगादत्त जी ने अपनी सबसे छोटी संतान का नाम गुसाईंदत्त रक्खा। यही गुसाईं दत्त आगे चल कर सुमित्रानन्दन कहलाए। इनके पिता कौसानी राज्य के कोषाध्यक्ष (कवि के शब्दों में 'निधिपति') थे। धन की कमी नहीं थी फिर भी वे बड़े सीधे-सादे सरल जमींदार थे। उनका हृदय बड़ा उदार था। प्रतिदिन पूजा पाठ किया करते। इसी वातावरण के प्रभाव से कवि सुमित्रानंदन भी ईश्वर का ध्यान किया करते हैं। पंत की माँ का देहान्त इनके जन्म के समय ही हो गया। इसका पन्त को कितना दुख है—"यदि वह माँ आज जीवित होती तो * कितनी प्रसन्न होती। कितने दुख की बात है कि वह सरस्वती अपनी आँखों से इतना न देख पाई कि उनका पुत्र सरस्वती की आराधना करके कैसा यशस्वी बनेगा।" एक अन्य स्थान पर भी इन्होंने नियति को इसके लिए बहुत बुरा कहा है।

नियति ने ही निज कुटिल कर से सुखद,
गोद मेरे लाड़ की थी छीन ली।
बाल में ही हो गई थी लुप्त हा!
मातृ अंचल की अभय छाया मुझे॥

इनका पालन पोषण, इसीलिए, इनकी फूफी ने किया। माँ की स्मृति इन्हें आज भी कचोटती रहती है। बहुत सी कविताएँ इन्होंने माँ को सम्बोधित करके लिखी हैं जिनमें कुछ तो अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं।

पंत जी प्रारंभ में गाँव-पाठशाला के ही टाट पर बैठे। चार पाँच वर्ष पढ़ने के पश्चात् वे अल्मोड़ा के राजकीय विद्यालय में भर्ती किए गए। वहाँ से नवीं कक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् यह प्रसाद जी की नगरी चले आए तथा वहाँ से मैट्रिक किया। सन् १९२० में म्योर सेन्ट्रल कालेज प्रयाग में इन्होंने अपना नाम लिखा

*पंत जी की माँ का नाम, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, सरस्वती था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिया किन्तु वहाँ अधिक समय तक अध्ययन नहीं कर सके क्योंकि १९२१ के असहयोग आंदोलन की गूंज प्रयाग तक पहुँची। वकीलों, जजों, अन्य सरकारी कर्मचारियों के अतिरिक्त विद्यार्थियों ने भी अपनी पाठशालाओं के साथ 'असहयोग' प्रारम्भ कर दिया था। २१ वर्ष का युवक पंत उन्हीं विद्यार्थियों में से था। अनंतर इन्होंने घर पर ही अध्ययन किया। इसका श्रेय प्रसिद्ध विद्वान पं० शिवाधार पाण्डेय को है जिनकी सहायता से इन्होंने हिन्दी, संस्कृत, अँग्रेजी आदि कई श्रेष्ठ साहित्यों का अध्ययन किया। दर्शनों का भी इन्होंने मनन किया। आगे चल कर इन्होंने 'रूपाभ' नामक पत्र का भी संपादन किया। इनकी एवं नरेन्द्र शर्मा की मैत्री तभी से है। जरा रिजर्व (Reserved) होने के कारण इनके मित्रों की परिधि लघु ही है फिर भी हिन्दी के गण्यमान कवियों से-रत्नाकर प्रसाद, हरिऔध, पाठक, गुप्त. निराला, महादेवी, बच्चन आदि से—आपका अत्यन्त ही घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। स्वभावगत सरलता के कारण वे सहज ही सबके प्रेम-पात्र बन गए हैं। उनके अपने शब्दों में "श्री मैथिलीशरण गुप्त की मुझ पर बड़ी कृपा रही है।.........उनके चिरगाँव मैं हो आया हूँ। वहाँ मैंने बड़ा सुख का अनुभव किया। अयोध्यासिंह उपाध्याय का मेरे प्रति बड़ा सद्भाव रहा। उनके सभापतित्व में होने वाले प्रयाग के कवि-सम्मेलन में जब मैंने 'छाया' कविता पढ़ी तो उन्होंने गद्गद् होकर अपने गले की माला मेरे गले में डाल दी थी। 'रत्नाकर' जी मुझे बहुत प्यार करते थे यहाँ तक कि एक चित्र भी उन्होंने मेरे साथ खिंचवाया था। श्रीधर पाठक से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। रविवार की संध्या को मैं प्रायः उन्हीं के साथ खाना खाया करता था। प्रकृति के वे बड़े प्रेमी थे। वे मेरी 'वीणा' की रचनाओं को बहुत पसंद करते थे। कभी कभी कह दिया करते थे कि तुम भविष्य के कवि हो। प्रसाद जी के साथ तो, जब मैं काशी जाता, ठहरता ही था। वे अत्यन्त मधुर स्वभाव के व्यवहार कुशल व्यक्ति थे। स्वाभाविक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूप से कविता जिसके व्यक्तित्व में निवास करे, ऐसे प्राणी थे ये। निराला जी से सुहृद मित्र की भाँति घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।...' मुझे स्मरण है (याद रखना चाहिए कि कवि पंत की स्मरण शक्ति बड़ी तीव्र है) अपनी मौन निमंत्रण कविता मैंने उन्हें सुनाई थी और उन्होंने उसकी बड़ी प्रशंसा की थी। जिन दिनों निराला जी लखनऊ में थे और मैं कालाकाँकर से वहाँ जाता तो उनसे नित्य भेंट होती। हम साथ ही संध्या समय टहलने जाते और कभी कभी अमीनाबाद में साथ बैठकर चाय पीते। उन दिनों का मुझे अब भी स्मरण है। निराला एक बार कालाकाँकर भी आए थे और यह बात तो प्रसिद्ध ही है कि निराला मुझे बहुत प्यार करते हैं। महादेवी से मेरा प्रथम परिचय धीरेन्द्र वर्मा के विवाह में हुआ। मुझे देखकर वह सहसा हँस दी, इस समय इतना ही स्मरण है। कालाकाँकर से जब मैं आता तो उनसे भी मिलने जाता था। एक बार वे भी कालाकाँकर आई थीं। 'संसद' में जब उपेन्द्रनाथ 'अश्क' रहते थे तो वहाँ जाता ही रहता था।" प्रकट है कि पंत जैसे भोले व्यक्तियों का मित्र बनने में किसी को भी अपने सौभाग्य से ईर्ष्या हो सकती है।

पंत जी का स्वभाव बड़ा सरल है एवं व्यक्तित्व आकर्षण पूर्ण। प्रकृति के आँचल में आँख मिचौनी खेलने के कारण उन्हें प्रकृति से अत्यंत ही प्रेम रहा है। प्रकृति ने भी उनका ध्यान बराबर रक्खा है। प्रकृति-विधात्री ने उनके शरीर को इतना कोमल बनाया है कि कोमलता भी शरमा जाती है। सुकुमार एवं सुगठित शरीर, उन्नत ललाट, चमकते नेत्र, गोरे वर्ण—किसी को भी उनकी ओर आकर्षित कर लेते हैं। उनके बालों के विषय में तो कहना ही क्या? 'बच्चन' तक उनसे इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होंने भी अपने बाल बढ़ा लिए थे। उनके बालों का रंग इतना सुनहरा था कि लाल मालूम होते थे। 'अब वह सुनहलापन नहीं है, वे भूरे और सफेद भी हो चले हैं पर आज भी घुँघराले हैं और कन्धो के चणिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्पर्श से इच्छित आकार-प्रकार से उनके सिर पर शोभायमान हो जाते हैं। पंत जी को इन बालों से बड़ा मोह है। लोगों से बात-चीत करते, चलते, फिरते उनकी उँगलियाँ उन्हें ठीक करने में व्यस्त रहती हैं और इन बालों की सुन्दरता के लिए वे नाई के ऋणी नहीं हैं। अपने जीवन में नाई को उन्होंने बहुत कम पैसे दिए होंगे। खुद काटते, छांटते हैं।.... 'सरस्वती' के भूतपूर्व संपादक पं. देवीदत्त शुक्ल कहा करते थे कि पंत जी के बालों में भी कवित्व है।" इतना ही नहीं उनकी वेष-भूषा भी बड़ी सुरुचि पूर्ण है। पैण्ट को छोड़कर वे प्रत्येक कपड़े को अपनी इच्छानुसार सिलवाते हैं। पैण्ट, कोट, टाई के साथ चश्मा लगाकर हिन्दी का यह गोरा कवि किसका मन नहीं मोह लेगा? चश्मा भी इनके पास विभिन्न फ्रेमों एवं विभिन्न रंगों के देखे गए हैं। इनके स्वभाव में शिष्टता इतनी है कि किसी से क्रोधित होना तो जानते ही नहीं हैं। घर से कहीं अकेले नहीं निकलते। कैसी विडम्बना है कि सदा किसी का साथ चाहने वाला व्यक्ति अविवाहित है। इस विषय में आप लिखते हैं—"सन् १६२१ में जब मैंने कालेज छोड़ दिया, आर्थिक द्वार तो मेरे लिए उसी दिन बन्द हो गया था। मेरी मां नहीं रही। पिता भी चले गए। भाइयों ने विशेष काम नहीं किया। इस प्रकार घर का सहारा भी चला गया। मैं अच्छे ढँग से पला हूँ, अच्छे ढँग से रहने का आदी हूँ और सभी बहुत अच्छे ढँग से रहें—इस बात का पक्षपाती हूँ। ऐसी दशा में क्या यह न्याय-संगत था, क्या यह व्यावहारिक था, क्या यह संभव भी था मैं विवाह की बात सोचता?"

पंत जी को मंत्रों में बहुत विश्वास है। वे हाथ एवं जन्मपत्री भी देखना जानते हैं। तंगज़ौर से निकलनेवाली एक ज्योतिष-पत्रिका का आप एक-एक शब्द पढ़ते हैं। इसके अतिरिक्त 'हिमालय' 'प्रतीक' 'अदिति' तथा 'ऐडवेंट' को छोड़ कर वे प्रत्येक पत्र-पत्रिका को 'कूड़ा' कहते हैं कालिदास के ग्रंथों से उन्हें बहुत प्रेम है। उन्हें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दवाइयों का ज्ञान अत्यन्त ही आश्चर्य जनक है। किसी भी रोग का निदान एवं उसकी दवा वे ठीक-ठीक बता सकते हैं। बच्चन के शब्दों में "पंत जी को अपने घर में रखना, एक अच्छे डॉक्टर को घर में रखना है।" हर समय उनके समीप दवाओं की पुड़ियाँ रहती हैं। हाज़िर जवाबी में वे किसी से पीछे नहीं हैं। जीवन में आदर्शवाद के क़ायल हैं। कवि के साथ-साथ उन्हें गाने बजाने का भी शौक़ है। अभिनेता के गुण तो उनमें सभी हैं। उनके रंगों के ज्ञान को देखकर हैरत होती है। मकानों के फ़र्श, दीवार, मेज़ पोश, पर्दे आदि कैसे रंग के हों—वे सहज ही बता देते हैं। उन्हें न अकेला दुख न सुख—दोनों ही अभीप्सित हैं, जीवन में दोनों की ही महत्ता उन्हें स्वीकार्य है :—

मैं नहीं चाहता चिर सुख,
मैं नहीं चाहता चिर दुख।
सुख—दुख की आँख मिचौनी,
खोले जीवन अपना मुख।

और सुख-दुख की इसी आँख मिचौनी को खेलता हुआ कवि अपनी जीवन-पथ पर बढ़ा चला जा रहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२—काव्य-ग्रंथ

'प्रसाद' जी के काव्य-ग्रंथ

जयंति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥
—भर्तृहरि।

"अर्थात् वे रससिद्ध कवीश्वर धन्य हैं जिनके काव्य रूपी शरीर को जरा-मरण का भय नहीं रहता।"

अपने जीवन के लघु ४८ वर्षों में प्रसाद जी ने हिन्दी साहित्य के प्रत्येक आहत अंग पर पट्टी बाँधी। कहानी, उपन्यास, काव्य, नाटक, लेख-हिन्दी साहित्य के प्रत्येक अंग को उन्होंने नई दिशा प्रदान की। कवि, कहानीकार, नाटककार, लेखक—वे एक साथ सब कुछ थे किन्तु सर्व प्रथम वे कवि थे, बाद में और कुछ। यही कारण है कि उनके नाटकों, कहानियों एवं निबंधों में भी काव्य का माधुर्य है।

प्रसाद जी ने १९०९-१० से साहित्य-मंदिर में आरती उतारना प्रारम्भ की। उस समय हिन्दी में एकमात्र 'सरस्वती' ही उच्च-स्तरीय पत्रिका थी जिसके सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद जी द्विवेदी थे। द्विवेदी जी सनेही जी, रामचरित उपाध्याय एवं मैथिली-शरण गुप्त पर पीयूष-वर्षण करते रहे। प्रसाद जी की एक भी रचना को उन्होंने अपनी पत्रिका में स्थान नहीं दिया। निराला की 'जूही की कली' भी 'सरस्वती' ने फटकार के साथ कुचल दी। यह देख कर प्रसाद जी ने अपने भांजे श्री अम्बिका प्रसाद गुप्त द्वारा मासिक 'इन्दु' का प्रकाशन कराया। यह उच्चकोटि का साहित्यिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पत्र था। प्रसाद जी अपनी कहानियाँ, लेख, कविताएँ आदि इसी में प्रकाशित कराते थे। जब इसे आर्थिक घाटा रहा तो इन्होंने अपना औदार्य दिखाने में कमी नहीं की। 'माधुरी' के अनुरोध को भी वह नहीं टाल सकते थे अतः इसमें भी उनकी रचनाएँ निकलती रहतीं।

कविवर प्रसाद की प्रकाशित काव्य-रचनाओं का क्रम इस प्रकार है : (१) चित्राधार, (२) कानन-कुसुम, (३) करुणालय, (४) महाराणा का महत्त्व, (५) प्रेम-पथिक, (६) झरना, (७) आँसू, (८) लहर एवं (९) कामायनी।

चित्राधार—'चित्राधार' में प्रसाद जी की बीस वर्ष तक की समस्त रचनाएँ—गद्य एवं पद्य—संग्रहीत हैं। प्रथम प्रयास होने पर भी इसमें कवि की भाषा की जुल्फ सँभालने की प्रवृति के दर्शन होते हैं। यह संग्रह कई खण्डों में विभक्त है। गद्य, पद्य, नाटक, कथा, निबंध—सब कुछ है इसमें। इसमें भाषा की सफाई अधिक नहीं हो सकी है (आशा भी नहीं करनी चाहिए), इतिवृत्तात्मकता के भी दर्शन होते हैं, यथा—

हैं आस चित्त में होय निवास तेरो।
होवै निवास मह देव ! प्रकाश तेरो॥

किन्तु यह प्रसाद का दोष नहीं है—वह युग ही ऐसा था। भक्ति-रस की कविताओं के भी इसमें दर्शन होते हैं। यह कविताएँ पदों, कवित्त, एवं सवैयों में हैं। किसी पंक्ति को पढ़ने से तो ऐसा लगता है जैसे हम 'भ्रमरगीत' पढ़ रहे हैं, यथाः

ऐसो ब्रह्म लेइ का की रहैं ?

पौराणिक कथाएँ बड़ी रोचक हैं एवं 'भक्ति' जैसे विषय पर निबन्ध हैं। व्याकरण की भूलों एवं भाषा के दोषों के होते हुए भी प्रस्तुत संग्रह भावी प्रौणता को टेर टेर कर कहता है।

कानन-कुसुम—कवि प्रसाद का दूसरा संग्रह 'कानन-कुसुम' है। इसमें सन् १९१२ तक की रचनाओं का संग्रह है। इसके प्रत्येक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्करण में परिवर्तन होता रहा है। कानन-कुसुम में कवि के निजी शब्दों में "रंगीन और सादे, सुगंध वाले और निर्गंध, मकरंद से भरे हुए, पराग में लिपटे हुए, सभी तरह के कुसुम हैं।" वस्तुतः सभी प्रकार के कुसुम हैं—'सौंदर्य' 'श्री कृष्ण जयन्ती' से लेकर 'शिल्प' 'भरत' 'चित्रकूट' तक। यह सुनिश्चित है कि इन कुसुमों में विशेष गंध नहीं है किन्तु रंग तो है ही, गंध की भूमिका तो है ही।

करुणालय—प्रसाद जी पर बौद्ध-धर्म के अहिंसावाद की कितनी गहरी छाप थी, इसके दर्शन हमें प्रस्तुत कृति में मिलते हैं—'रे मनुष्य! तू कितना नीचे गिर गया आज प्रलोभन-भय तुझसे करवा रहे हैं कैसे आसुर कर्म! अरे तू चूद्र है—और धर्म की छाप लगा कर मूढ़ तू! फँसा आसुरी माया में हिंसा जगी।" इस 'गीति-नाट्य' में पात्रों (Dramatis Personac) की संख्या अत्यधिक है—नौ पुरुष और दो स्त्री। कथानक महाराज हरिश्चन्द्र से सम्बन्ध रखता है। प्रसाद जी इसमें मानव को आगे बढ़ने का ही संदेश देते हैं।

चलो पवन की तरह, रुकावट है कहाँ,
बैठोगे तो कहीं एक पग भी नहीं।
स्थान मिलेगा तुम्हें, कुटिल संसार में,
इच्छित फल की चाह दिलाती बल तुन्हें।
सारे श्रम उसको फूलों के हार से,
लगते हैं, जो पाता ईप्सित वस्तु को।

इन पंक्तियों से यह भी प्रकट है कि प्रारम्भ में कवि को अतुकांत छन्दों में वह सफलता नहीं मिली जो उसे 'प्रेम-पथिक' में अथवा पंत एवं निराला को मिली। उपरोक्त पंक्तियाँ गद्य की ही सीमा में आएँगी। हाँ, परम्परा के प्रति विद्रोह का आभास अभी से प्राप्त होने लगता है।

प्रेम-पथिक—प्रसाद जी की यह कृति अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है—इसलिए नहीं कि इसमें आँसू जैसा यौवन का खुमार है अथवा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कामायनी जैसी विराट भावना अपितु यह कि यह काव्य प्रथम बार सन् १६०५ में ब्रजभाषा में लिखा गया था किन्तु इस भय से कि द्विवेदी जी की खड़ी बोली की हिमायत के कारण कहीं युग इसे बिसार न दे इन्होंने १६१३ में इसे पुनः खड़ी बोली में प्रकाशित किया। यह 'करुणालय' की ही भाँति अतुकांत रचना है किन्तु इसमें और उसमें महान अंतर है। यह एक प्रेम-काव्य है, 'करुणालय' की भाँति भाव-काव्य नहीं। इसमें प्रेम का आदर्श रूप अत्यन्त भव्य है। निम्नलिखित पंक्तियाँ अत्यन्त ही सुहावनी हैं।

कहीं तुम्हारा स्वार्थ लगा है, कहीं लोभ है मित्र बना,
कहीं प्रतिष्ठा, कहीं रूप है, मित्र-रूप में रंगा हुआ।
हृदय खोल कर मिलने वाले बड़े भाग्य से मिलते हैं।

तथा—

पथिक ! प्रेम की राह अनोखी भूल-भूल कर चलना है।
घनी छाँह है जो ऊपर तो नीचे काँटे बिछे हुए।
प्रेम-यज्ञ में स्वार्थ और कामना हवन करना होगा।
तब तुम प्रियतम स्वर्ग-विहारी होने का फल पाओगे।

निम्नलिखित पंक्तियाँ तो बहुत ही उद्धरित (Oftguoted) होती हैं।

इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रांत भवन में टिक रहना,
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं।

इन पंक्तियों में कवि प्रेम की अछोर डगर की ओर इंगित करता है। कवि का नियतिवाद, जो उनकी प्रत्येक रचना में प्राप्त होता है, एवं जिसका अनुवाद उन्होंने अपने जीवन तक में कर लिया था (जैसा पीछे लिखा जा चुका है) इस रचना में गोचर होने लगता है।

लीलामय की अद्भुत लीला किससे जानी जाती है,
कौन उठा सकता है धुँधला पट भविष्य का जीवन में।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(जिस मंदिर में देख रहे हो जलता रहता है कर्पूर,
कौन बता सकता है उसमें तेल न जलने पाएगा।)

अंतिम पंक्तियों के पढ़ने से ही हमें एक अन्य कवि का स्मरण हो आता है जिन्होंने ऐसी ही भावना इन शब्दों में व्यक्त की है।

जिसकी मिट्टी भी पुजती थी, उसको मिट्टी में मिलते देखा।
थी सुमन सेज कल तक जिसकी, वह आज पड़ा भू पर देखा॥

प्रस्तुत कृति में वर्णनात्मकता ही अधिक है, फिर भी सूखापन नहीं आने पाया है। अलंकार-रूढ़ियों से बंधन-मुक्त होने का दिलासा कवि निम्न पंक्ति में दिलाता है।

सच्चा मित्र कहाँ मिलता है ?
दुखी हृदय की छाया सा।

इसमें स्थूल वस्तु (सच्चा मित्र) की उपमा सूक्ष्म (छाया) से दी गई है—आगे चल कर यह बात छायावाद की प्राण बन गई।

झरना—इसमें कवि की १९१४ से लेकर १९२१ तक की रचनाओं का संकलन है। 'झरना' के निनाद में कई स्वर सुनाई पड़ते हैं—गद्यात्मक पद्य के जिनमें प्रसाद गुण नग्न होकर आया है, सरस पद्य के, शुष्कता के, सौंदर्य के। कुछ पंक्तियाँ तो काव्य न रह कर गद्य के धरातल पर उतर आई हैं।

जलन छाती की बड़ी सहता हूँ,
मिलो मत मुझसे यही कहता हूँ;
बड़ी हो दया तुम्हारी।
तुम रहो शीतल हमें जलने दो,
तमाशा देखो, हाथ मलने दो;
तुम्हें है शपथ हमारी।

एवं—

किसी पर मरना, यही तो दुख है।
उपेक्षा करना—मुझे भी सुख है॥

हम इन पंक्तियों पर भी संतोष कर लेते हैं क्योंकि आगे चल कर तो कवि ने बड़ी सरस रचनाएँ दी। खेद तो हमें तब होता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब श्री मैथिलीशरण जी अपनी प्रौढ़तम कृति 'साकेत' में ऊपर जैसी पंक्तियाँ ही—नहीं नहीं कहीं कहीं तो इससे भी निकृष्ट—देते हैं।

तुमको दुख तो हमको भी।
तुमको सुख तो हमको भी॥ आदि आदि।

प्रेम का एक चित्र बड़ा ही सुन्दर है—दो साथ साथ खड़े हैं, एकांत है ही, मन का ज्वार हिलोर ले उठा।

निभृत था—पर हम दोनों थे,
वृत्तियाँ रह न सकी फिर दान्त।
कहा जब व्याकुल हो उनसे—
मिलेगा कब ऐसा एकान्त?
हाथ में हाथ लिया मैंने,
हुए वे सहसा शिथिल नितांत।
मलय ताड़ित किसलय कोमल.
हिल उठी उँगली—देखा भ्रांत॥

संभवतः इन्हीं "हम दोनों" का एक निम्न पंक्तियों में कवि के हृदय को झरने के रूप में बहाने का उत्तरदायी है।

कर गई सावित तन मन सारा।
एक दिन तब अपांग की धारा॥
हृदय से झरना—
बह चला, जैसे दृग जल ढरना।
प्रणय—वन्या ने किया पसारा,
कर गई सावित तन-मन सारा॥

अभिव्यक्ति अत्यन्त सरल है—उस पर 'आँसू' जैसा झीना पर्दा डालने का प्रयास नहीं किया गया है।

एक गीले गान का भी उदाहरण लीजिए—

निठुर! इन्हीं चरणों में मैं,
रत्नाकर हृदय उलीच रहा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुलकित प्लावित रही वनों,
मत सूखी बालू की बेला ॥

सीधी-सादी पंक्तियों में कवि का हृदय बोल रहा है। बेव से यही तो कहा जाता है न?

इस प्रकार यह 'झरना' विभिन्न प्रकार के छन्दों की धारा लेकर बहा है।

आँसू—आह! आँसू' और प्रसाद-प्रसाद और 'आंसू'—दो ही घुलमिल गए हैं। एक की स्मृति दूसरे को चुपके से बुला ला है। अब तक हिन्दी जगत गागर में सागर की बात सुनता आ था अब उसने आँसू की एक बूंद में ही समस्त समुद्रों को दे लिया। आंसू काव्य स्याही से नहीं अपितु कवि के आंसुओं ही लिखा गया है जो पाठक के नयनों को अनजाने ही बरस देता है। इस कृति के द्वारा प्रसाद जी ने 'हिन्दी जगत को प्रथ बार उस वेदनावाद की मादकता से विभोर किया जिससे वा में सारा छायावादी युग मतवाला हो उठा था। वेदना की भय बाढ़ में सारे युग को परिप्लावित कर देने की जैसी क्षमता प्रस जी के इन आंसुओं में रही है वह हमारे साहित्य के इतिहास वास्तव में अतुलनीय है।*

सचमुच एक-एक पंक्ति हृदय को चीरती चली जाती है। का के कहे जाने वाले भाव एवं कला दोनों पक्षों का इसमें इत मंजुल संगुफन है कि पाठक का तन और मन डोलने लगता है। श

कल तक आलोचक आंसू में केवल छायावाद एवं रहस्य के ही मानते आए थे किन्तु अब यह बात सुनिश्चित हो चुकी है यह काव्य विशुद्ध प्रेम-काव्य है। इसका आलंबन इसी धरती ही कोई जीव है—परी लोक का नहीं। हमें तो ऐसा लगता कि झरना का ही 'तव' है—

कर गई प्लावित तन मन सारा।
एक दिन तव अपांग की धारा॥ —हृदय से झरना

* श्री इलाचंद्र जोशी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बह चला, जैसे दृगजल ढरना।
प्रणय-वन्या ने किया पसारा।
कर गई प्लावित तन-मन सारा॥

'आँसू' में उस लोक का आभास आलोचकों को इन जैसी पंक्तियों से हो जाता है—

आती है शून्य क्षितिज से।
क्यों लौट प्रतिध्वनि मेरी?

× × ×

कुछ शेष चिन्ह हैं केवल।
मेरे उस महामिलन के॥

× × ×

गौरव था नीचे आए।
मिलने को प्रियतम मेरे।

× × ×

चंचला स्नान कर आवे।
आलोक मधुर थी ऐसी।

× × ×

लोग 'महामिलन' 'क्षितिज' 'नीचे आए' आदि से सोच बैठते हैं कि कवि का लक्ष्य ईश्वर है किन्तु हमें 'अव्यक्त' 'अगोचर' जैसे शब्दों से ही रहस्यवाद नहीं मान लेना चाहिए अपितु उन शब्दों के मूल में जाना चाहिए। किसी-किसी ने तो इन्ही शब्दों को लेकर 'आँसू में प्रलय एवं सृष्टि के रूपक की कल्पना की है।

प्रस्तुत काव्य में कवि प्रसाद की कला अत्यंत प्रौण है। भाषा का जैसा निखार इसमें है वैसा पूव रचनाओं में नहीं। शब्दों की लक्षण-शक्ति का प्रयोग खूब ही किया गया है। जिन्हें यदि न समझा जाय तो काव्य रहस्यवाद की कृति मान लिया जाता है। चंद्रिका सुख अँधेरी दुख, स्फुलिंग गरम आँसू, विधु मुख एवं काली जंजीरे वालों के प्रतिक होकर आए हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब तक की रचनाओं में कवि विभिन्न छन्दों का प्रयोग करत आया था, इसमें आदि से अंत तक एक ही छंद प्रयुक्त किया गय है। यह छंद 'आँसू' काव्य के ही कारण इतना प्रसिद्ध हुआ कि लोग इसे 'आँसू छंद' ही कहने लगे किन्तु वस्तुतः यह आनंद छं है जिसमें १४—१४ मात्राओं पर विराम देकर २८ मात्रायें होती हृदय की टीस व्यक्त करने के लिए यह छंद अत्यन्त ही उपयुक्त यही कारण है कि महादेवीजी भी अपनी वेदनाभिव्यक्ति मुख्यत ऐसे छंदों में ही व्यक्त करती हैं—

इन मेघों को रोता था,
जब चातक का बालक मन।
आँखों में तब करुण के,
घिर घिर आते थे सावन॥

इस छंद का प्रभाव हिन्दी कवियों पर ही नहीं अहिन्दी कवियों पर भी पड़ा। एक मराठी कवि—श्री वि० वा० बोखणकर—ने आँसू का अनुवाद ऐसे ही छंद में किया था।

इस करुणाकलित हृदय में,
क्यों विकल रागिनी बजती।
क्यों हाहाकार स्वरों में,
वेदना असीम गरजती ?

का अनुवाद उन्होंने इस प्रकार किया था—

ह्या करुण कलित हृदयांत,
कां विकल रागिणी बाजे ?
कां हाहाकार स्वरांत,
आसीम वेदना गर्जें ?

सारांश यह है कि आँसू भावुक कवि प्रसाद की अत्यंत प्रौढ़ सरस एवं प्रभावशाली कृति है।

लहर—'आँसू' बहने के उपरांत कवि के मन-मानस में 'लहर' आई। लहरें मुक्त रूप से उठी हैं जिनमें गीतात्मकता है। इसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रचनायें किसी एक स्थन पर बैठकर नहीं लिखी गई थीं अतः इसमें एक ही मानसिक स्थिति की आशा करना व्यर्थ है। इसकी कुछ रचनायें बहिर्मुखी हैं एवं कुछ अंतर्मुखी। इसकी सबसे प्रसिद्ध रचना निम्न हैं :

ले चल वहाँ भुलावा देकर,
मेरे नाविक ! धीरे धीरे,
जिस निर्जन में सागर लहर,
अम्बर के कानों में गहरी,
निश्छल प्रेम कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे॥

जिस गंभीर मधुर छाया में,
विश्व चित्र-पट चल माया में,
विभुता विभु-सी पड़े दिखाई,
दुःख-सुख वाली सत्य बनी रे॥
श्रम विश्राम क्षितिज-वेला से,
जहाँ सृजन करते मेला से,
अमर जागरण उषा नयन से,
बिखराती हो ज्योति घनी रे॥

कहते हैं कि एक बार प्रसाद जी मन बहलाने के लिए सपरिवार पुरी गए थे। पुरी के समीप समुद्र की रमणीय आभा से वे अत्यंत ही प्रभावित हुए तथा उनमें समुद्र के पार संघर्षमयी जगती से दूर (Far from the madding Crowd) जाने की बलवती इच्छा उठ खड़ी हुई तभी इस गीत की रचना हुई। यह गीत अत्यन्त ही प्रसिद्ध है। इससे कवि पर पलायनवाद (Escapism) का भी अभियोग लगाया जाता है—कहा जाता है कि कवि में निराला की भांति संघर्षों के समक्ष ताले ठोंक कर आने की सामर्थ्य नहीं थी अतः वह इस धरती से दूर जाने की योजना बना रहा था। किन्तु छायावादियों पर जीवन-संघष से पलायन के आरोप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का उत्तर महादेवी वर्मा ने बहुत सुंदर दिया है। वे कहती हैं कि सिद्धार्थ भी तो जगत छोड़ गए थे किंतु उन्होंने 'जीवन के संघर्षों में पराजित होने के कारण महा प्रस्थान नहीं किया।❀ वे इसे यथार्थ की पूर्ति मात्र कहती हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि कवि प्रसाद यदि 'धीरे धीरे 'कोलाहल की अवनी को तजकर दूर जाना चाहते हैं तो यह पलायन नहीं है। कोई कोई इसमें रहस्यवाद की भी खोज करते है। उनके अनुसार नाविक ईश्वर है जिससे कवि ने अपनी जीवन तरी को भव-समुद्र से पार करने की प्रार्थना की है। आलोचकों को यह ध्यान संभवतः टैनिसन, टैगोर आदि के नावरूपकों से आया होगा।

कामायनी :—'कामायनी' प्रसाद की कला का ताजमहल है। इस महाकाव्य का कथानक पौराणिक है—स्वयं प्रसाद के शब्दों में 'ऐतिहासिक' है। महाकवि मिल्टन के पैरेडाइज़ लास्ट' (Paradise Lost) की ही भाँति इसमें आदि पुरुष की कथा है। कथानक के सूत्र विभिन्न पुराणों से लिये गये हैं एवं कल्पना के योग से उन्हें जोड़ दिया गया है। फिर भी कथानक इतना संगठित नहीं हो सका है जितनी किसी महाकाव्य में आशा की जाती है। 'लज्जा' सर्ग का कथानक से कोई भी सीधा संबंध नहीं है। यदि इस सर्ग के पृष्ठों को न भी बाँचा जाय तब भी कथानक का सूत्र जुड़ जाता है। मनु श्रद्धा, इड़ा प्रमुख पात्र हैं। इन पात्रों का सांकेतिक अर्थ भी है—'मनु' मन का 'श्रद्धा' हृदय का एवं 'इड़ा' मस्तिष्क का प्रतीक है। आनंद तभी प्राप्त हो सकता है जब मनु (मन) श्रद्धा (हृदय) एवं इड़ा (बुद्धि) का समन्वय करता है। अन्त के सर्गों से यह भी निश्चय हो जाता है कि बुद्धि (इड़ा) का त्याग कर देने पर भी हृदय (श्रद्धा) से काम चल जाता है। श्रद्धा ही मनु को संबल देकर "उन चरणों"

❀ 'आधुनिक कवि'—महादेवी—'अपने दृष्टिकोण से पृ० २०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तक ले गई है। कवि मानव जाति की इच्छा पूर्ण न होने का भी कारण देता है :

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके,
यह विडम्बना है जीवन की ॥

कवि इच्छा, ज्ञान एवं कर्म का सामंजस्य चाहता है। एक को लिए बैठे रहने से कोई भी काम नहीं बनता। चिंता, लज्जा, आशा आदि मनोविकारों की इतनी सुघड़ अभिव्यक्ति देखकर हम बिना आश्चर्य किए नहीं रह सकते। 'लज्जा' का वर्णन देखिए :

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ,
मैं शालीनता सिखाती हूँ।
मतवाली सुंदरता पग में,
नूपुर सी लिपट मनाती हूँ ॥
लाली बन सरस कपोलों में,
आँखों में अंजन सी लगती।
कुंचित अलकों सी घुँघराली,
मन की मरोर बनकर जगती ॥

कवि ने लज्जा का अनुभव कितने समीप से किया है। कवि 'चिंता' से क्या कह रहा है—आइए सुन लें—

ओ चिंता की पहली रेखा !
अरी विश्व-वन की व्याली !
ज्वालामुखी स्फोट की भीषण,
प्रथम कंप सी मतवाली !
× × +
अरी व्याधि की सूत्रधारिणी !
अरी आधि मधुमय अभिशाप।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हृदय-गगन में धूमकेतु सी,
पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप ॥

चिन्ता को दिया गया प्रत्येक नाम कवि की महान् सूक्ष्मदर्शिता का द्योतन करता है।

प्रलय के उपरान्त समुद्र से निकली हुई भूमि का चित्रण कामायनी के अत्यंत विख्यात वर्णनों में से है :

सिंधु सेज पर धरा वधू अब
तनिक संकुचित बैठी सी।
प्रलय-निशा की हलचल-स्मृति में,
मान किए सी ऐंठी सी ॥

प्रलय की घोर आपदाओं के उपरान्त धरती को प्रसाद ने उस गोल मटोल गुड़िया जैसी वधू माना है जिसे सुहागरात की व्यथित स्मृति बार बार कचोटती है।

इस महाकाव्य की प्रकृति हमें दोनों रूपों में मिलती है। स्वयं मुसकराकर हमें हर्षित करने वाली एवं अपनी भ्रूभंगियों से डराने वाली। दोनों का एक-एक चित्र निहारिए :+

उषा सुनहरे तीर बरसती,
जय लक्ष्मी सी उदित हुई।
उधर पराजित काल रात्रि भी,
जल में अंतर्निहित हुई।

एवं—

उधर गरजती सिंधु लहरियाँ,
कुटिल काल के जालों सी।
चली आ रही फेन उगलती,
फन फैलाए व्यालों सी ॥

इसके साथ साथ कामायनी में समरसता का उल्लेख है जो शैव दर्शन का शब्द है। जीवन को संघर्षों में व्यतीत करके मनु अंतिम समय 'आनन्द' में निमग्न होकर 'शिव' रूप हो जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार कामायनी की परिणति आनंद में होती है जो पाठक के हृदय को शांत रस से विभोर कर देती है।

इड़ा के सारस्वत नगर के वर्णन के बहाने प्रसादजी ने आधुनिक युग का चित्र खींचा है। वहाँ भी वही धूल-धक्कड़ थी जो आज के जगत में है। वहाँ श्रद्धा (हृदय) नहीं था इड़ा (बुद्धि) का राज्य था अतः संघर्षों का तुमुल नाद कर्ण कूहरों को फोड़े देता था—बुद्धि के विकास से होता भी ऐसा ही है। कवि ने भूमिका में लिख दिया है—"बुद्धिवाद के विकास में अधिक सुख की खोज में दुःख मिलना स्वाभाविक है।"

इन उलझनों से त्राण का एक मेव उपाय कवि ने गाँधीवाद के स्वावलम्बन में दिया है। मन की अनुपस्थिति में कवि ने श्रद्धा से तकली चलवाई है।

चल री तकली धीरे धीरे
प्रिय गये खेलने को शिकार।

'पार्वती' महाकव्य की पार्वती भी तकली चलाती दिखाई गई है।

भाषा तो प्रस्तुत महाकाव्य की प्रौढ़तम है ही। समग्रतः 'कामायनी' अपने ढंग का अकेला ही महाकाव्य है जिसका साथी विश्व की किसी भी भाषा के साहित्य में नहीं।

पन्त के काव्य-ग्रन्थ

'पन्त जी के बालों में भी कवित्व है।"

पं० देवीदत्त शुक्ल (भू० पू० संपादक सरस्वती')

पन्त को कवि बनाने का बहुत कुछ श्रेय इनकी जन्मभूमि को ही है। कौसानी की सुषमा एवं साहचर्य्य ने पंत की वीणा के तार झंकृत कर दिए जिनसे अनजाने ही कविता बह निकली। कवि ने स्वयं स्वीकार किया है—"कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है जिसका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल को है। कवि-जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मैं घण्टों एकान्त में बैठा प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौंदर्य जाल बुनकर मेरी, चेतना को तन्मय कर देता था। जब कभी में आँखें मूँदकर लेटता था, तो वह दृश्य पर चुपचाप मेरी आँखों के सामने घूमा करता था।१ अब मैं सोचता हूँ कि क्षितिज में सुदूर तक फैली, एक के ऊपर एक उठी ये हरित, नील, धूमिल, कूर्मांचल की छायांकित पर्वत श्रेणियाँ, जो अपने शिखरों पर रजत मुकुट हिमाचल को धारण किए हुए हैं और अपनी ऊँचाई से आकाश की अवाक् नीलिमा को और भी ऊपर उठाए हुए हैं, किसी भी मनुष्य को अपने महान् नीरव सम्मोहन के आश्चर्य में डुबाकर, कुछ काल के लिए, भुला सकती हैं।२ इस प्रकार उनकी जन्मभूमि ने उनके शैशव से ही काव्यांकुरों को पनपने का सुअवसर दिया। श्री दीनानाथ पंत के अनुसार पन्त का काव्य-जीवन उस समय से आरंभ होता है जब वे दशमी कक्षा में पढ़ते थे। उनकी रचनाएँ 'मर्यादा' 'सुधाकर' 'हिमाचल' आदि कविताओं के विषय 'कागज कुसुम' तम्बाकू का धुआँ जैसे होते। उन्होंने 'हार' नामक एक उपन्यास भी लिखा था किंतु उसे छपवाया नहीं। रचना-काल की दृष्टि से पन्त की रचनाओं का क्रम निम्न प्रकार है :

(१) वीणा (२) ग्रंथि (३) पल्लव (४ गुंजन ५) युगांत (६) युगवाणी (७) ग्राम्या (८) स्वर्णकिरण (९) स्वर्णधूलि (१०) मधुज्वाल (११) युगपथ (१२) उत्तरा एवं (१३) अतिमा।

---

१ ऐसी ही कवि वर्ड्सवर्थ की 'डैफोडिल्स' नामक कविता है जिसके अनुसार जब कभी कवि अपने बिस्तरे पर पड़ा होता है, तभी प्रकृति के वे दृश्य उसके अन्तर्नयनों के समक्ष थिरका करते हैं।

२ आधुनिक कवि—पर्यालोचन—पृ० ७–८.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वीणा—"इस संग्रह में दो एक को छोड़कर अधिकांश रचनाएं सन् १९१८-१९ की लिखी हुई हैं। उस कवि जीवन से नव-प्रभात में नवोढ़ा कविता की मधुर नूपुर-ध्वनि तथा अनिर्वचनीय सौंदर्य से एक साथ ही आकृष्ट हो मेरा 'मन्द कवि यशः प्रार्थी, निर्बोध, लज्जा, भीरु कवि, वीणा-वादिनी के चरणों के पास बैठा स्वर-साधन करते समय, अपनी आकुल-उत्सुक-हृत्तन्त्री से बार-बार चेष्टा करते रहने पर, अत्यंत असमर्थ अँगुलियों के उलटे सीधे आघातों द्वारा जैसी कुछ भी अस्फुट अस्पष्ट झंकारें जाग्रत कर सका हूँ, वे इस वीणा के स्वरूप में आपके सन्मुख उपस्थित हैं।"१ इस प्रकार 'वीणा' की झंकार को कवि ने 'दुधमुहाँ प्रयास' कहा है। इसकी कविताएँ यद्यपि 'पल्लव' के पूर्व की हैं किंतु प्रकाशित 'पल्लव के उपरान्त ही हुई थीं। इसकी बहुत सी कविताएँ 'मा' सम्बोधन से लिखी गई हैं। प्रार्थनापरक कविताओं का बाहुल्य है जिसमें 'गीतांजलि' का प्रभाव गोचर होता है। बालकवि प्रकृति को देखकर अपने अस्तित्व को उसी में घुलाने को आतुर हो उठता है :

कुसुद-कला बन कल-हासिनि,
अमृत - प्रकाशिनि नभ - वासिनि,
तेरी आभा को पाकर मा!
जग का तिमिर-त्रास हर दूँ।

प्रतिबिम्बवाद की झलक भी कहीं-कहीं मिलती है :

मा! वह दिन कब आयेगा जब,
मैं तेरी छवि देखूँगा,
जिसका यह प्रतिबिंब पड़ा है
जग के ,निर्मल दर्पन में।

सबसे सुंदर कविता 'प्रथम रश्मि' है जिसका संगीतमय प्रवाह स्थायी प्रभाव छोड़ता चला जाता है। कल्पना एवं सौंदर्यानुभूति

१—वीणा—विज्ञापन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का समन्वय अत्यन्त ही अनूठा है। दिनकर की प्रथम रश्मि को 'बाल-विहंगिनि' कैसे जान लेती है एवं कूक मचा उठती है—इसी जिज्ञासा से अभिभूत होकर कवि बाल-सुलभ प्रश्न कर निकलता है:

प्रथम रश्मि का आना रंगिनि !
तूने कैसे पहचाना ?
× × ×
कूक उठी सहसा तरु-वासिनि !
गा तू स्वागत का गाना,
किसने तुझको अन्तर्यामिनि !
बतलाया उसका आना !

तीसरे छंद में उषा के कुछ पूर्व का वर्णन देखिए :

शशि किरणों से उतर उतर कर,
भू पर कामरूप नभचर,
चूम नवल कलियों का मृदु मुख
सिखा रहे थे मुसकाना।

सरिता को अबाध गति से बहते देख कवि ठीक ही तो सोच बैठा :—

वह न कभी पीछे फिरती है—
कैसा होगा उसका बल—
एक ग्रंथि भी नहीं पड़ी है,
उसके तरल मृदुल उर में।

इस प्रकार प्रथम संग्रह में ही कवि हमें भविष्य का आश्वासन दे जाता है। 'उलटे सीधे आघातों' द्वारा भी इसकी वीणा के तारों से ऐसे स्वर निकल पड़े हैं जो पाठक पर स्थायी प्रभाव छोड़ जाते हैं।

ग्रंथि :—यह कृति जनवरी सन् १६२० ई० में लिखी गई। डा. नगेन्द्र के शब्दों में "जब तारुण्य का बालरवि उसके प्राणों को पुलकित कर रहा था, उसी समय मधु-वेला भाग्य ने उसके हृदयमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक ग्रंथि डाल दी जिसे वह कदाचित् अभी तक नहीं खोल सका है। बहुतों से सुना कि ग्रँथि पंत जी के अपने अनुभव पर आधृत है जिसमें उन्होंने अपनी प्रणय-कहानी लिखी है"।१ कुछ भी हो रचना पढ़ने के उपरांत बच्चन का यह कथन है कि "पंत जी की कल्पना के गायक हैं, अनुभूति के नहीं- इच्छा के गायक हैं, वासना, तीव्र इच्छा के नहीं।" कुछ गलत सा ज्ञात हो निकलता है। उनकी तीन चार कविताओं के पढ़ने से यह धारणा बन जाती है कि इनमें उन्होंने अनुभूति एवँ तीव्र इच्छा को ही वाणी दी है। 'ग्रंथि' के अतिरिक्त अन्य कविताएँ 'आँसू' एवं 'उच्छ्वास' है। ग्रंथि एक ऐसी प्रेमी-कथा है जिसे अँग्रेजी में 'बॉय-मीट-गर्ल-स्टोरी (Boy-meet-girl-Story), कहते हैं। नायक की अचानक नौका डूब जाती है। जब वह होश में आता है तो अपने सर को एक बालिका की गोद में रखा हुआ पाता है। दोनों हृदयों के भेद को नयन खोल देते हैं। किंतु जैसा कि ऐसे कथानकों में होता ही है, बालिका की वैवाहिक ग्रंथि किसी अन्य पुरुष के साथ बँध जाती हैं और वह बेचारा अपने भाग्य पर रोता रहता है। बस इतना अफ़साना है। बालिका के मुख को कवि 'अपूर्व' कहता है। बस समय 'पूर्व' में चन्द्रमा भी था किंतु उसके मुख के समक्ष तो वह कुछ भी नहीं था। इतना ही नहीं—

बाल रजनी सी अलक थी डोलती,
भ्रमित हो शशि के बदन के बीच में,
अचल, रेखांकित कभी थी कर रही,
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में।

आगे चलकर कवि प्रेम की 'अनोखी रीति' के विषय में कहता है कि यह "अपांगों से अधिक देखता है" "दूर होकर और बढ़ता है" तथा "वारि पीकर" सदा घर पूछता है। इसके बाद ही—

१—सुमित्रानंदन पन्त (पंचम सं०) पृ० ६८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निज पलक, मेरी विकलता, साथ ही,
अवनि से, डर से मृगेक्षिणि ने उठा,
एक पल निज स्नेह श्यामल दृष्टि से,
स्निग्ध करदी दृष्टि मेरी दीप से।

कथानक अनुकान्त छँद में बाँधा गया है। नायक अपनी कथा अपने आप ही कहता है। अँत में—

हाय मेरे सामने ही प्रणय का,
ग्रंथि बंधन होगया, वह नव कुसुम,
मधुप-सा मेरा हृदय लेकर, किसी—
अन्य मानस का विभूषण हो गया।

पल्लव :—"पल्लव' पंत जी का तृतीय काव्य-सग्रह है। इसमें १६२५ तक की रचनाएँ सम्मिलित हैं। इनमें यौवन के गीत हैं। अतः इसमें उद्दाम वेग एवं 'तरुणतम सुन्दरता की आग' है कवि के अपने शब्दों में इसमें :—

न पत्रों का मर्मर संगीत,
न पुरुषों का रस, राव, पराग,
एक अस्फुट, अस्पष्ट, अगीत,
सुप्ति की ये स्वप्निल मुस्कान;
सरल शिशुओं के शुचि अनुराग,
वन्य विहँगों के गान।

किंतु यह तो कहने की बातें हैं। सच तो यह है कि—

हृदय के प्रणय-कुंज में लीन,
मूक-कोकिल का मादक गान।
बहा जब तन-मन-बँधन हीन,
मधुरता से अपनी अनजान।
खिल उठी रोओं—सी तत्काल,
पल्लवों की यह पुलकित डाल।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'पल्लव' की रचनाएँ तो एक नव-संदेश लेकर आई ही, इसकी भूमिका ने भी हिन्दी जगत में वह क्रांति मचादी जो सन् १८००में वर्ड्सवर्थ (W. Wordsworth) की लिरिकल बैलेड्स की भूमिका' (Preface to the Lyrical Ballads) ने अंग्रेजी साहित्य में मचा दी थी। भूमिका क्या है, खड़ी बोली के पक्ष एवं व्रज भाषा के विपक्षमें अच्छी-खासी तक़रीर है। कवि ने अपना दृष्टि कोण दिया है कि उसमें व्रज भाषा छोड़कर खड़ी बोली में बोलना क्यों प्रारम्भ कर दिया? आचार्य शुक्ल जैसे उद्भट विद्वानों तक को इसी भूमिका से भ्रांति हो गई थी जिसके कारण वे मान बैठे थे कि छायावाद अभिव्यंजना की एक शैली मात्र है। अस्तु—

इसकी 'उच्छ्वास' एव 'आँसू' कविताओं में आलोचकों ने पंत के जीवन के सूत्रों के स्पर्श को खोजा है। 'उच्छ्वास' की बालिका का वर्णन देखिए :—

सरलपन ही था उसका मन,
निरालापन था आभूषन,
कान से मिले अजान नयन,
सहज था सजा सजीला तन।
× × ×
छपी-सी पी-सी मृदु मुसकान,
छिपी-सी, खिची सखी-सी साध
उसी की उपमा सी बन, मान,
गिरा का धरती थी, धर हाथ।
रँगीले, गीले फूलों—से
अधखिले भावों से प्रमुदित
बाल्य-सरिता के कूलों से,
खेलती थी तरंग-सी नित।

यदि ऐसी बाला से कवि का युवक मन उलझ बैठा तो बेजा ही क्या?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसके उस सरलपने से
मैंने था हृदय सजाया,
नित मधुर-मधुर गीतों से
उसका डर था,उकसाया।

× × ×

मैं मंद हास—सा उसके
मृदु अधरों पर मँडराया
और, उसकी सुखद सुरभि से
प्रतिदिन समीप खिंच आया।

'आँसू' की बालिका भी कोई साधारण नहीं थी :—

तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा स्नान;
तुम्हारी वाणी में कल्याणि!
त्रिवेणी की लहरों का गान।

× × ×

करुण भौंहों में था आकाश,
हास में शैशव का संसार;
तुम्हारी आँखों में कर वास
प्रेम ने पाया था आकार! आदि।

कवि सोच नहीं पाता कि आँसू को विरह कहे अथवा वरदान। कुछ भी हो आँसू को निरा दुखद नहीं समझना चाहिए, इसीलिए तो कवि कह उठता है :—

कल्पना में है कसकती वेदना,
अश्रु में जीता, सिसकता गान है;
शून्य आहों में सुरीले छँद हैं,
मधुर लय का क्या कहीं अवसान है!

आँसुओं के कारण ही तो हृदय से काव्य-झरना फूट निकलता है :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान,
उमड़कर नैनों से चुपचाप,
वही होगी कविता अनजान।

कवि विरह के कारण बड़ा दुखी है। वह सोच नहीं पाता :—

हाय किसके उर में
उतारूँ अपने उर का भार!
किसे अब दूं उपहार,
गूँथ यह अश्रुकणों का हार!!

कवि का 'पावस-ऋतु सा जीवन' है, उसके नयन 'गहरे' धुँधले, धुले, साँवले मेघों से' भरे रहते हैं, हृदय में 'अगणित मृदु भाव' विहगों के समान कूजते रहते हैं, कभी कभी उसे अपनी भावी 'कुहरे सी धूमिल' दिखाई पड़ती है, और तभी :—

तड़ित सा सुमुखि! तुम्हारा ध्यान
प्रभा के पलक मार, उर चीर,
गूढ़ गर्जन कर जब गंभीर
मुझे करता है अधिक अधीर,
जुगुनुओं-से उड़ मेरे प्राण
खोजते हैं तब तुम्हें निदान।

आँसू, उच्छ्वास के अतिरिक्त छाया, नक्षत्र, मौन-निमंत्रण, बादल राग, परिवर्तन आदि अत्यन्त सुन्दर रचनाएँ हैं। छाया का चित्र अत्यन्त अनूठा है, बादलराग (१९२२) के बादल कविवर शैले (P. B. Shelley) के द क्लाउड' (The Cloud) की भाँति सुरपति के "......अनुचर' हैं जो अपना तराना अपने आप ही सुनाते हैं। नवीन उपमाएँ देखिए :

धीरे धीरे संशय से उठ,
बढ़ अपयश-से शीघ्र अछोर,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नभ के उर में उमड़ मोह से,
फैल लालसा से निशि भोर,

मौन निमंत्रण (१९२३) अपनी गेयता, भाषा-प्रांजलता
रहस्यात्मकता के कारण अत्यन्त ही मीठा गीत हैं। साहि
वाचस्पति श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने लिखा है कि जब
गीत उन्होंने कवि के मुँह से सुना तो वे 'अवाक्' होकर पंत
मुँह की ओर ताकते रहे थे। इसीलिए पल्लव उन छह ग्रंथों
है जो उन्हें "अत्यन्त प्रिय हैं।"[१] जहाँ तक 'परिवतंन' रचना
संबंध है यह इसी संग्रह की नहीं अपितु कवि की सर्वश्रेष्ठ कवि
है। कवि के स्वयं के शब्दों में "इस कविता जगत में नित्य ज
को खोजने का प्रयत्न मेरे जीवन में जैसा परिवर्तन के रच
काल से हो गया था 'परिवर्तन' उस अनुसंधान का केवल प्रत
मात्र है।" यह सन् १९२४ की रचना है जब अल्हड़ कवि
शरीर में यौवन हिलोरें मार रहा था। कवि कल्पना-लोक में
थोड़ा धरती की ओर भी देख लेता है और उसी कठोरता
चित्र खींच देता है फलतः "परिवर्तनमय विश्व की करुण आ
व्यक्ति इतनी वेदनाशीन हो उठी है कि वह सहज ही सभी हृद
को अपनी सहानुभूति के कृपासूत्र में बाँध लेना चाहती है।"[२]
कवि के मानसिक एवं साहित्यिक परिवर्तन का प्रतीक है।
ने यहाँ से कल्पना की चारुता छोड़कर धरती की कठोरता
ओर निहारना आरंभ कर दिया है। इसके दर्शन की अंतः सलि
में शाँतिप्रिय जी विवेकानंद एवं कवींद्र रवीन्द्र का प्रभाव दे
हैं। इस कविता में "भिन्न भिन्न वर्णों के चित्र हैं। कहीं शृंगार
अरुण राग है तो कहीं वीभत्स का नीला रंग है। एक ओर
'स्वर्णभृँगों' के गंध विहार हैं तो दूसरी ओर वासुकि सहस्र
की शत शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार है। कवि की भाषा

१—कुछ पृ० ८५
२—पं० शांतप्रिय द्विवेदी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इतनी प्रबल शक्ति अन्यत्र कम दिखाई देती है। जिस प्रकार मानव-जीवन के सिनेमा गृह में मनोहर और भयंकर चित्र प्रतिक्षण बदलते रहते हैं ठीक इसी प्रकार परिवर्तन के चित्र पल में रम्य और पल में भयानक होते रहते हैं।"[१] यह किसी भी बड़े कवि की कविता से निस्संकोच मैत्री कर सकता है।"[२] सचमुच अनुभूति और कला का समन्वय जैसा इस गीत में है, अन्यत्र दुर्लभ है। कवि की प्रतिभा इसमें अपने यौवन के अधर चूम लेती है। यहीं से कवि भावुकता के राजपथ से चिंतन की पगडंडी की ओर अपने चरण बढ़ाने आरंभ कर देता है। भाषा के संबंध में नगेन्द्रजी ने ठीक ही लिखा है—"यद्यपि 'युगान्त' की भाषा 'पल्लव' की भाषा से अधिक प्रौढ़, मांसल और परिपूर्ण है परंतु उसमें यह स्वाभाविक प्रस्फुटन कहाँ ?" यही कारण है कि 'पल्लव' की प्रशंसा शांतिप्रिय से लेकर जोशीजी एवं आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी से लेकर डा० रामविलास शर्मा ने एक स्वर से की है।

गुंजन—यह पंतजी की आत्मा का 'उन्मन' गुंजन है जिसमें उनका १९२६ से ३२ तक की कवि यात्रा का लेखा जोखा है। अब कवि, जैसा 'परिवर्तन' के संदर्भ में कहा जा चुका है भावुकता से हटकर आत्मा की ओर चला गया है अतः इसमें मनन एवं चिन्तन की ही गूँज है—यही परिवर्तन है।

अब उसने अपने सौंदर्यान्वेषणमात्र विधान (Constitution) में कुछ सुधार (Amendment) कर लिया है। अब वह 'सुंदर' का खेत त्यागकर 'शिवं' के खलिहान की ओर आता दिखाई पड़ता है; प्रकृति को सांत्वना देकर संसार की बात सुनने के लिए सरक रहा है। उसे संसार 'अति दुख' एवं 'अति-सुख' से 'पीड़ित' दिखाई पड़ता है इसीलिए वह संसार में सुख दुख का विनिमय चाहता है। निम्न पंक्तियों में दार्शनिक उक्तियों को अत्यन्त अनूठे ढंग से कहा गया है :

१—नगेन्द्र २—कवि निराला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कँप कँप हिलोर रह जाती—
रेमिलता नहीं किनारा !
बुद् बुद् विलीन हो चुपके
पा जाता आशय सारा।

'भावी पत्नी के प्रति' विख्यात गीत इसी संग्रह में है। ई
पर भी कवि की आस्था प्रतीत होती है। 'तप रे मधुर मधुर म
अत्यन्त ही उच्च कोटि का गीत है जिसमें कवि की मानवता
भावना सतह पर आ जाती है :

मानवतावाद

तप रे मधुर मधुर मन !
विश्व-वेदना में तप प्रतिपल,
जग-जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुष, उज्ज्वल औ कोमल
पत रे विधुर विधुर मन !

× × ×

तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन !

'एक तारा' एवं 'चाँदनी' भी इस संग्रह की लम्बी कविता
हैं। 'चाँदनी' में कवि अप्रस्तुत मानवी रूप-चित्रण में इतना तल्ल
हो जाता है कि उसे याद ही नहीं रहता कि वह चाँदनी
वर्णन कर रहा है, किसी नायिका का नहीं—

नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारद हासिनि,
मृदु करतल पर शशि-मुख धर'
नीरव, अनिमिष, एकाकिन !
वह स्वप्न-जड़ित नत चितवन
छू लेती अग जग का मन,
श्यामल, कोमल, चल चितवन
जो लहराती जग-जीवन !

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'एक तारा' में कवि 'नौका-विहार' की भाँति कुछ दार्शनिक बन गया है। 'नौका-विहार' के से चित्र समूचे हिन्दी साहित्य में अन्यत्र नहीं मिलते :

सैकत शय्या पर दुग्ध-धवल, तन्वगी गंगा, ग्रीष्म-विरल,
लेटी हैं श्रांत, क्लान्त, निश्चल
मृदु मन्द मन्द, मंथर-मंथर लघु तरणि हंसिनी सी सुन्दर
तिर रही खोल पालों के पर।

अन्तिम पंक्तयाँ—इस धारा सा ही जग का क्रम'—में कवि दार्शनिक चिंतन की ओर उन्मुख हो जाता है।

युगान्त—'गुंजन' के उपरान्त कवि की रचनाओं का संग्रह 'युगान्त' है। वैसे बीच में वे 'ज्योत्सना' नामक एक नाटिका एवं 'पाँच कहानी' भी लिख चुके थे। अपनी नाटिका में वे संसार की समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करते हैं। कवि को यह यह देखकर बड़ा दुख है कि—

जो हैं समर्थ जो शक्तिमान,
जीने का है अधिकार उसे।
उसकी लाठी का बैल विश्व,
पूजता सभ्य संसार उसे॥

कवि का अभीप्सित निम्न पंक्तियों में सुना जा सकता है :

गूँजे जयध्वनि से आसमान,
सब मानव मानव हैं समान।
निज कौशल, मति इच्छानुकूल,
सब कर्म-निरत हों भेद-मूल।
बंधुत्व-भाव ही विश्व मूल,
सब एक राष्ट्र के उपादान।

अस्तु—

पंत की सन् १९३४ से १९३६ तक की रचनाएँ 'युगांत' में संकलित हैं। इसमें आकर पंत के सौंदर्य-युग का अन्त हो जाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। कवि सौंदर्य को अपने तक ही सीमित रखना नहीं चाहता वह "सौंदर्य एवं आनंद का जगत में पूर्ण प्रसार देखना चाहता है।"❀ १६३६ ही वह वर्ष है जिसमें छायावाद का मुँह कफन से ओझल हो जाता है एवं हिन्दी जगत में एक नवीन वाद-शिशु थिरक निकलता है जिसे प्रगतिवाद नाम देकर मार्क्सवादी पंडितों ने अपने को कृतकृत्य समझा। इसकी रचनाओं में कवि जग जीर्ण धरती पर नव प्रभात लाने का संदेश लाया है प्रारंभ में तो कवि चाहता है।

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र,
हे स्रस्त-ध्वस्त हे शुष्क-शीर्ण !
हिम-ताप पीत मधुवात मीत,
तुम वीतराग, जड़ पुराचीन।

तथा—

गा कोकिल ! बरसा पावक-कण,
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन,
ध्वंश-भ्रंश जग के जड़-बंधन।
पावक-पग धर आवें नूतन।
हो पल्लवित नवल मानवपन।

पंत की आस्था अब प्राचीन मूल्यों (Values) में नहीं रह गई है, वह जीवन के नए मान चाहता है। उसके गद्य के शब्दों में "युगान्त में मैं निश्चय रूप से इस परिणाम पर पहुँच गया था कि मानव-सभ्यता का पिछला युग समाप्त होने को है और नवीन युग का प्रादुर्भाव अवश्यभँवी है।" 'बापू के प्रति' शीर्षक कविता में कवि महात्मा गाँधी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है क्योंकि जब वह "जड़वाद जर्जरित जग," एवं "यंत्राभिभूत जग" से दुखी था, ऐसे में गाँधी आए। बाँसों का झुरमुट न जाने कितनी आवाजों से भरा हुआ है।

❀आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'अल्मोड़े का वसंत' में तो घाटी सचमुच ही उड़ निकलती है।

लो चित्र-शलभ सी पंख खोल।
उडने को है कुसुमित घाटी।
यह है अल्मोड़े का है वसंत,
खिल पड़ी निखिल पर्वत पारी।

इस भाव परिवर्तन के साथ ही युगांत में कवि की कला एवं शैली में भी यथेष्ट परिवर्तन आ गया है। अब कवि रंगीन शब्दों के पीछे दौड़कर अपने बल को नहीं बिखेरता है इसलिए इस संकलन की भाषा गाँव की गोरी के समान बिना क्रीम एवं लिपस्टिक लगाए ही आई है।

युग वाणी एवं ग्राम्या—युगांत में कवि ने छायावादी भवन की खिड़की से झाँका भर था, 'युगवाणी' एवं ग्राम्या में वह उस भवन से पूर्णतया बाहर आ गया है। 'युगवाणी' में ३६ तक की एवं ग्राम्या में आगे एक वर्ष की कवितायें सम्मिलित हैं वैसे तो युगांत से ही भाव एवं भाषा दोनों में कवि में अन्तर दिखाई पड़ने लगा था। 'युगवाणी' में तो कवि खुले रूप में कह ही देता है।

खुल गए छंद के बंध,
प्रास के रजत पास,
अब गीत मुक्त,
औ' युगवाणी बहती अयास।

इसके साथ साथ ही:

बन गए कलात्मक भाव,
जगत के रूप नाम,
जीवन-संघर्षण देता सुख,
लगता ललाम।

इतना ही नहीं अब तो कवि साहसपूर्वक यहाँ तक कह देता है:

सुन्दर, शिव, सत्य,
कला के कल्पित माप-मान,
बन गए स्थूल....

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसलिए—

आज सत्य, शिव, सुन्दर करता,
नहीं हृदय आकर्षित,
सभ्य, शिष्ट औ, संस्कृत लगते,
मन को केवल कुत्सित,
× × ×
आज असुन्दर लगते सुन्दर।

इसीलिए गगन को ताकने वालों को कवि खूब फटकारता है। उसे धरती के रोम रोम में सहज सुन्दरता भरी दिखाई पड़ती है। इसीलिए उसे अब—

कूड़ा करकट सब कुछ भू पर।
लगता सार्थक सुन्दर।

यही कारण है कि अब कवि का ध्यान सितारे नहीं अपितु-
सिगरेट के ख़ाली डिब्बे पन्नी चमकीली।
फीतों के टुकड़े तस्वीरें नीली पीली॥
आकर्षित करते हैं।

कवि को बड़ा दुख होता है। 'विश्व विवर्तनशील' है किन्तु किसान अब भी वही है उसके खेत, गृह, द्वार, वृष, हँसिया और हल में तनिक भी अन्तर नहीं आया है। किन्तु अभी कवि निरा मार्क्सवादी नहीं है (और न निरा गाँधीवादी ही) उसे दोनों के सामंजस्य में ही अपना भव्य भविष्य गोचर होता है :

मनुष्यत्व का तत्व सिखाता, निश्चय हमको गाँधीवाद।
सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद॥

इसीलिए गांधी—स्तवन के साथ-साथ ही अब कवि मार्क्स का भी भजन गा उठता है।

धन्य मार्क्स! चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर।
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान-चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।

'ग्राम्या' में कवि का स्वर और भी साफ हो गया है। 'युगवाणी' कवि के अपने शब्दों में "ग्राम्या के लिए..........पृष्ठभूमि का काम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करती है।"[1] नगेन्द्र के शब्दों में "युगवाणी प्रगतिवादी पंत का सिद्धान्त वाक्य था—ग्राम्या उसका प्रयोग। युगवाणी में पंत जी अपने नवीन सिद्धान्तों की रूप-रेखा निश्चित कर रहे थे। सिद्धान्त अमूर्त होते हैं, इसलिए युगवाणी में रस से पुष्ट माँस नहीं है। ग्राम्या तक वे सिद्धान्त स्थिर कर चुके और अब उन्होंने उसके प्रयोग के लिए एक मूर्त आधार चुन लिया। स्वभावतः ग्राम्या की स्नायुयों में कवित्व का गाढ़ा रस प्रवहमान है, उसके अंग भरे हुए और यौवन पीन है।

है माँस—पेशियों में उसके दृढ़ कोमलता,
संयोग अवयवों में अश्लथ उसके उरोज।
कृत्रिम रति की है नहीं हृदय में आकुलता,
उद्दीप्त न करता उसे भाव-कल्पित मनोज।"[2]

ग्रामों को कवि "सामंत युग के खंडहर के रूप में" देखता है।

यह तो मानव लोक नहीं रे! यह है नरक अपरिचित,
यह भारत का ग्राम सभ्यता-संस्कृति से निर्वासित।
× × × ×
मानव दुर्गति की गाथा से ओत प्रोत मर्मान्तिक,
सदियों के अत्याचारों की सूची यह रोमांचक।

अब कवि अपने दर्द भरे अफसानों को नहीं सुनाता, अब वह भारत के ग्रामों को वाणी देने का प्रयास करता है। निम्न पंक्तियों कितने भारी दुख से बोझिल हैं।

बैठ, टेक धरती पर माथा, वह सलाम करता है झुककर,
उस धरती से पाँव उठा लेने को जी करता है क्षण भर।

इस प्रकार कवि ने ग्रामीणों के प्रति "बौद्धिक सहानुभूति" खूब दिखाई है।

१—'आधुनिक कवि'—पृ० ३४
२—'सुमित्रानंदन पंत'—१७३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वर्ण किरण और स्वर्ण धूलि—स्वर्ण रचनाओं के साथ पंत जी के काव्य का तृतीय मोड़ प्रारम्भ होता है—द्वितीय मोड़ ग्राम्या के साथ समाप्त हो जाता है—प्रथम 'युग' का तो 'अंत' बहुत पूर्व १६३५ में ही हो चुका था। इन संकलनों में कवि की कई प्रकार की रचनाएँ हैं—प्रकृति सम्बन्धी, समाज सम्बन्धी, आत्म सम्बन्धी एवं आध्यात्म सम्बन्धी। अधिकतर रचनाएं आध्यात्मिक ही हैं। अरविंद का दर्शन कवि को सदा के लिए मार्क्सवादी पाठशाला में नाम लिखाने से रोक लेता है। 'युगवाणी' एवं 'ग्राम्या' में कवि अवश्य मार्क्सवादी जीवन-दर्शन की ओर खिंच गया किन्तु उनका अन्तर इस दर्शन से अनुप्रभावित रहा। वे भारतीय ग्रामों एवं ग्रामवासियों को "बौद्धिक सहानुभूति" ही दे सके। वैसे भी वे पूर्ण भौतिकवादी तो युगवाणी तथा ग्राम्या में भी नहीं थे। उन्होंने लोक का कल्याण मार्क्सवाद एवं गांधीवाद के गठबंधन में ही माना। अतः इन रचनाओं में आकर कवि एक बार पुनः अन्तर्मुखी हो गया।

सामाजिक जीवन से कहीं महत् अन्तर्मन,
बृहत् विश्व इतिहास, चेतना गीता किंतु चिरंतन।

विश्व की त्राहि त्राहि का कारण वह भौतिकता के अत्यधिक विकास एवं आत्मा की उपेक्षा को मानते हैं।

बहिर्चेतना जागृत जग में अन्तर्मानव निद्रित।
बाह्य परिस्थितियाँ जीवित, अंतर्जीवन मूर्छित मृत॥

'स्वर्ण किरण' का कवि दावे के साथ कहता है कि कोई कितना ही प्रयास करे चेतना की पुकार नहीं दबा सकता चेतना का ही सूक्ष्म रूप आत्मा है।) समुद्र के चारों ओर की दीवारें ज्वार के समय व्यर्थ सिद्ध होती हैं उसी प्रकार मनुष्य की आत्मा उस महा चेतन से मिलने के लिए जिस समय ललक उठती है उस समय माटी का यह शरीर, यह भौतिकवाद, उसे आकर्षित नहीं कर सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस धरती के उर में है
उस शशि मुख का असीम सम्मोहन,
रोक नहीं पाते भू के तट
जीवन वारिधि का उद्वेलन।

उनकी आध्यात्मिक चेतना आनन्दमयी है, उसमें भौतिकता का स्थान है।

तीसरी रे भूख आत्मा की गहन !
इन्द्रियों की देह से ज्यों है परे मन ॥
मनोजग से परे ज्यों आत्मा चिरंतन !
जहाँ मुक्ति विराजती
औ, डूब जाता हृदय-क्रंदन !
वहाँ सत का वास रहता,
वहाँ चित का लास रहता,
वहाँ चिर उल्लास रहता,
यह बताया योग दर्शन।
किंतु ऊपर हो कि भीतर,
मनोगोचर या अगोचर,
क्या नहीं कोई कहीं ऐसा अमृतघन,
जो धरा पर बरस भर दे भव्य जीवन ?
जाति वर्गों से निरख जन
अमर प्रीति प्रतीति में बंध
पुण्य जीवन करें यापन।
औ धरा हो ज्योति-पावन।

कवि की आध्यात्मिकता में सदैव ऊपर कहा हुआ 'चिर उल्लास रहता' है। इतना ही नही उसकी आत्मा का यह 'चिर उल्लास' सर्वत्र फैल गया है।

यह नीला आकाश न केवल,
केवल अनिल न चंचल,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इनमें चिर आनंद भरा
मेरी आत्मा का उज्ज्वल।
हलकी गहरी छाया के जो
घिरते ये रंग—बादल,
मेरी आकांक्षा की विद्युत्
बहती इनमें प्रतिपल।

व्यष्टि एवं समष्टि, ऊर्ध्व विकास एवं समदिक विकास, आध्यात्मिक एवं भौतिक विकास के समन्वय ही कवि की आध्यात्मिक चेतना का मूल तत्त्व है।

ब्रह्मज्ञान रे विद्या, भूतों का एकत्व समन्वय,
भौतिक ज्ञान अविद्या, बहुमुख एक सत्य का परिचय।
आज जगत में उभय रूप तम में गिरने वाले जन,
ज्योति केतु कृषि-दृष्टि करे उन दोनों का संचालन।
बहिरंतर की सत्यों का जग जीवन में कर परिणय,
ऐहिक आत्मिक वैभव से जन-मंगल हो निःसंशय।

वस्तुतः पूर्व के ब्रह्म ज्ञानी एवं पश्चिम के भौतिक ज्ञानी दोनों ही दुखी हैं। इसीलिए पन्त "योरोप का जीवन सौष्ठव तथा भारत का जीवन-दर्शन" चाहते हैं। पंत, जैसा अभी कहा है, अपने तीसरे मोड़ में योगी अरविन्द से इतने अधिक प्रभावित हुए थे कि उन्हें दिव्य जीवन का दूत मानने एवं विश्व को दुखों से त्राण दिलाने का एक मात्र साधन मानते थे।

दूत दिव्य जीवन के, दिव्य तुम्हारा दर्शन,
अति मानस का स्पर्श प्राण मन करता चेतन।
मानव उर प्रच्छन्न तुम्हारा नव पद्मासन,
तन मन प्राण हृदय से तुमको देव! समर्पण।

इसी अरविंदवाद का पाथेय लेकर पंत की आत्मा उस पथ पर चल पड़ी है जिस पर चल कर वह विश्व को कुछ शांति दे सकती है, मानवता को घोर भौतिकवादी पंजे से बाहर साँस लेने के लिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूमिका बना सकती है, समाज की आशा की स्वर्ण-किरण दिखा सकती है।

बदलेंगे हम चिर विषण्ण वसुधा का आनन
विद्युत गति से लावेंगे जग में परिवर्तन !
क्यों न मंजरित युवकों का हो विश्व संगठन,
नव यौवन आदर्शवादिता अरे न नूतन।
क्या करते ये धन कुबेर पंडित वैज्ञानिक
दिशा भ्रांति क्यों हो जाते राष्ट्रों के नाविक।
ज्ञात नहीं क्या लोक नियत है आज भू पथिक;
वर्ग राष्ट्र से लोक धरा का श्रेय है अधिक।
दिवस ज्योति सा सार सत्य यह गोचर निश्चित,
मनुष्यत्व है रीति नीति धर्मों से विस्तृत।
संस्कृति रे परिहास क्षुधा से यदि जन कवलित,
कला कल्पना जो कुटुम्ब-तन नग्न, गृह रहित !

कवि नवीनता के लोभ में इतना वह जाता है कि रूढ़िवादी ईश्वर भी अब उसे अच्छा नहीं लगता। वह उसे मृत्यु की चिर निद्रा में सुलाना चाहता है ताकि उसका नवीकरण हो जाय।

मरने दो ईश्वर को तब मरने दो हे,
वह जी उट्ठेगा, ईश्वर को मरने दो !
वह फिर मरता, जी उठता,
ईश्वर को चिर मुक्त सृजन करने दो !

'स्वर्ण धूलि' के 'मानसी रूप' की मंगल कामना के साथ हम पन्त के स्वर्ण काव्यों से 'बाई-बाई' करते हैं।

प्रतीत प्रीति प्राण में,
चरण धरो, चरण धरो,
लिये हो हाथ हाथ में,
न तुम डरो, न तुम डरो !
न रक्तपात युद्ध हो,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न ऊर्ध्व शक्ति रुद्ध हो,
मनुष्य शुद्ध बुद्ध हो,
विदेह मन न क्रुद्ध हो,
अभय अमर हो मृत्यु
आज साथ साथ जो मरो।
क्षुधार्त रे असंख्य प्राण,
नग्न देह, बुद्धि म्लान,
रोग व्याधि से न त्राण, निश्चय लो आज जान,
तुम प्रथम मनुष्य हो, न युग्म मात्र स्त्री न रो।
विनम्र शिष्ट निराभिमान
पुरुष नारि हों समान,
प्रीति प्राण, मुक्त ज्ञान,
युक्त कला नृत्य ज्ञान,
स्वर्ग तुल्य हो धरा,
जघन्य रूढ़ियो झरो।

उत्तरा युगपथ आदि परवर्ती काव्य—स्वर्णधूलि के पश्चात् पंत मधुज्वाल, युगपथ, उत्तरा एवं अतिमा नामक रचनाएें हैं। इ चौकड़ी में उत्तरा का महत्व असंदिग्ध है। सतही तौर से देख पर ज्ञात होता है कि उत्तरा भी स्वर्णकाव्य परम्परा में ही आ है किंतु यह बात नहीं। ध्यानपूर्वक देखने से स्पष्ट होता है 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' में समष्टि चिंतन की प्रधानता है लेकि 'उत्तरा' में पंत का कवि मानव को मानव समाज को संस्कृति को ब डालने की अभिव्यक्ति प्रदान करता है।' वैसे तो कवि 'युगान्त' औ ही चिंतन की गोद में अपना सर रख लेता है किंतु उस चिंतन ए स्तनपान 'उत्तरा' में ही करता है। जिस प्रकार खड़ी बोली ए हिमायत के लिए कवि को 'पल्लव' की इतनी लम्बी भूमिका लिखनी पड़ी थी इसी प्रकार 'अपना दृष्टिकोण' उपस्थित करने के लिये कवि को इसमें प्रस्तावना लिखनी पड़ी। कवि के शब्दों में 'इनि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तावना का उद्देश्य ...कम से कम शब्दों में अपना दृष्टिकोण भर उपस्थित कर देना है।....मेरी इधर की रचनाओं का मुख्य ध्येय केवल उस युग-चेतना को अपने यत्किंचित प्रयत्नों द्वारा वाणी देने का रहा है जो हमारे संक्रांति काल की देन है और जिसने एक युगजीवी की तरह मुझे भी अपने क्षेत्र में प्रभावित किया है। इस प्रकार के प्रयत्न मेरी कृतियों में ज्योत्सना काल से आरम्भ हो गये थे। 'ज्योत्सना' की स्वप्न भ्रात चाँदनी (चेतना) ही एक प्रकार से स्वर्णकिरण में युग प्रभात के आलोक से स्वर्णिम हो गई है।.... बाहरी दृष्टि से उन्हें युगवाणी तथा स्वर्णकिरण काल की रचनाओं में शायद परस्पर विरोधी विचार धाराओं का समावेश मिले, पर वास्तव में ऐसा नहीं है।' इन रचनाओं के अध्ययन से ज्ञात हो जाता है कि पंत किसी एक वाद के दास नहीं हैं अपितु वे एक ही साँस में मार्क्सवादी गांधीवादी अद्वैतवादी एवं अरविंदवादी हैं। उन्हें अपने काव्य के चोला बदलने में हया नहीं आती—क्यों आए वे न तो आंतरिक उन्नति ही चाहते हैं और न वाह्य अभ्युदयमात्र उत्तरा के प्रारम्भ में कवि लिखता है—'ज्योत्सना में मैंने मानव जीवन की जिन वहिरन्तर मान्यताओं का समन्वय करने का प्रयत्न तथा नवीन सामाजिकता (मानवता में उसके रूपांतरित होने की ओर इंगित किया है, युगवाणी और ग्राम्या में उन्हीं के वहिर्मुखी (समतल) संचरण को (जो मार्क्सवाद का क्षेत्र है) अधिक प्रधानता दी है किन्तु समन्वय तथा संश्लेषण का दृष्टिकोण एवं तज्जनित मान्यताएँ दोनों में समान रूप से हैं।... युगवाणी, तथा ग्राम्या में यदि ऊर्ध्वमानों का समधरातल पर समन्वय हुआ है तो स्वर्णकिरण और स्वर्णधूलि में समतल मानों का ऊर्ध्वधरातल पर जो तत्वतः एक ही लक्ष्य पर निर्देश करते हैं।' कवि को इस प्रकार सूक्ष्म-स्थूल एवं आदर्श-यथार्थ का समन्वय अभीष्ट है। अरविंद की भौतिकवाद एवं आध्यात्मवाद दोनों का समन्वय चाहते थे। पंत के शब्दों में भी'....भविष्य में हम जिस मानवता अथवा लोक संस्कृति का निर्माण करना चाहते हैं उसके लिए हमें बाहर भीतर दोनों ओर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से प्रयत्न करना चाहिए सूक्ष्म और स्थूल दोनों शक्तियों से सामं-जस्य करना चाहिए।" [१] इस सामंजस्य से विश्व को अत्यंत लाभ होगा क्योंकि 'आदर्श तथा वस्तुवादी अपनी अपनी उपयोगिता तथा सीमाओं को मानते हुए विश्व कर्म में परस्पर सहायक की तरह हाथ बँटा सकते हैं।'—और इन्हीं विचारों की प्रतिध्वनि 'उत्तरा' की प्रथम रचना में ही मिलती है :

बदल रहा अब स्थूल धरातल,
परिणत होता सूक्ष्म मनस्तल,
विस्तृत होता बहिर्जगत अब,
विस्तृत अन्तर्जीवन अभिमत,

कवि ने अनुभव किया कि कोरे मार्क्सवाद से तो काम नहीं चल सकता अतः वह—युगपथ एवं—उत्तरा में आकर अन्तर्चेतना-वादी बन गया—'मैं वर्गहीन सामाजिक विधान के साथ ही मानव अहन्ता के विधान कीभी नवीन चेतना के रूप में जन संघर्ष के अतिरिक्त अन्तर्मानव का संघर्ष देखता हूँ।' 'उत्तरा में इस अन्तर्चेतनावाद-आध्यात्मवाद—सम्बन्धी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते समय कवि ने शृङ्गारिक उपमाओं का जी खोलकर प्रयोग किया है। उरोज श्रेणी जंघाएँ आदि वस्तुओं की ओर कवि की कलम मुड़ गई है। इन शृंगारिक कविताओं में प्रगतिवादी आलोचकों को वासना की गंध आ गई है। सच तो यह है कि पंत ने जब 'ग्राम्या एवं 'युग-वाणी की रचना की थी उस समय तो इन आलोचकों ने एक स्वर से पंत जी की कला की दाद दी किंतु ज्यों ही कवि ने स्वर्णकाल उत्तरा आदि की रचना की उन्होंने उन्हें (पंत को) बुजुआ कलाकार घोषित करने में तनिक भी देर नहीं लगाई। कवि के अंतर्चेतना-वाद पर कस कस कर हथौड़े मारे गए। उनको समाज के प्रति अपना कर्तव्य न निभाने पर खूब कोसा गया, उनकी रामना...

१—'उत्तरा'।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ओढ़ने की ढांक मात्र कहा गया। डा० रामविलास शर्मा ने ललकार लगाई—'दूसरे महायुद्ध के पहले जब कांग्रेसी मंत्रिमंडल बने थे। तब से उत्तरा के लिखने तक जनता की चेतना और उसके साथ हिन्दी जनता की चेतना में काफी परिवर्तन हो गया है। अन्तर्चेतनावादी पंतजी से सामाजिक चेतना के ये परिवर्तन छिपे नहीं हैं लेकिन वे इस नई सामाजिक चेतना से सहानुभूति नहीं रखते—न बौद्धिक न हार्दिक। वह अपने पुराने समन्वयवाद को नया जामा पहनाकर हिन्दी पाठकों से कहते हैं—मैं प्रतिगामी नहीं हूँ। लेकिन मार्क्सवाद का कौनसा विरोधी अपने को प्रतिगामी मानता है। उसका व्यवहार उसकी प्रतिगामिता प्रकट कर देता है। पंतजी यदि अपने अन्तर्चेतनावाद से लोगों को बहकाना चाहते हैं तो कुछ दिन कोशिश करके और देखें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३-प्रसाद एवं पन्त से पूर्व हिन्दी कविता

"जनता की चिन्ता वृत्ति के परिवर्तन के साथ साथ साहि
के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।"

आचार्य राम चंद्र शुक्ल
हिं. सा. का इति.—पृ.

किसी कवि अथवा लेखक की रचनाओं के अध्ययन से
उससे पीछे के युग पर दृष्टि पात कर लेना कम महत्व का न
होता। विना पृष्टि भूमि समझे हम नहीं कह सकते कि उस क
ने हमें कौन सी ऐसी नवीन वस्तु दी जो उससे पूर्व नहीं थी, उस
ऐसी कौनसी नई बात कह दी जो उसके पूर्वज नहीं कह स
उसने ऐसी कौनसी तान सुना दी जो उसके बुजुर्गों के सितार
नहीं निकल सकी। अस्तु—

इन कविद्वयों (और निराला भी) के आविर्भाव से पूर्व हि
साहित्य में वह युग है जिसे साहित्य के इतिहासकारों ने द्विवे
युग माना है एवं उससे भी पूर्व भारतेन्दु काल। हिन्दी का आ
निक युग वस्तुतः भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८५०—८५) से ही प्रार
होता है। इससे पूर्व हिंदी का साहित्य रीति की सड़ी गली नालि
में होकर वहा था। चाम पर मरने वाले गली-गली में चक्कर का
गोचर होते थे। हिन्दी कवियों की निगाह जब उठती तभी उ
किसी न किसी राधा का दीदार हो जाता। किसी भी सलौने
कृष्ण तथा सलौनी को राधा मान लिया जाता, फलतः रीतिकाली
कविता में जितनी खिंचाई इन दो साहवों की हुई है, उतनी अ
किसी की नहीं। राधा और कृष्ण को अपनी रचनाओं का आ
स्वन बनाने में कवियों को प्रत्यक्ष लाभ था। वे शृंगार के नाम प

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुछ भी कह सकते थे और उस पर राधा और कृष्ण—सच्चात् भगवान की मुहर लगा देते और इस प्रकार वे (कविगण) बुजुर्गों के कृपाभाजन बनने से बच जाते। यदि वे खुले शब्दों में अपनी शृंगारिक भावनाओं को कागज पर उतारते तो संभव था उनकी आंखों के सामने ही जनँता उनकी कृतियों को अग्नि को समर्पित कर देती किंतु, क्योंकि उनमें जनता के आराध्य का नाम आ जाता अतः उनका पठन-पाठन खूब हुआ। कविवर भिखारी दास ने खुले शब्दों में कह दिया।

आगे के कवि रीझि हैं तो कविताई
न तु राधिका गोविन्द सुमिरन को बाहनों है।

वस्तुतः इसी बहाने से कवियों ने हिन्दी जनता को बहुत लम्बे अरसे तक भरमाए रक्खा। नायिकाओं के कवियों ने ऐसे ऐसे भेद किए कि पाठक चलती फिरती स्त्री में नायिका का प्रकार खोजने लगे। आश्चर्य का विषय तो यह है कि कवियों की आँखें केवल कामिनियों की ओर ही कैसे उठती? जीवन के विभिन्न व्यापार उन्हें अपनी ओर क्यों नहीं खींच सके? शायद वह युग ही ऐसा था वह हवा ही ऐसी थी। उन्हें कामिनी कुचों को रंगने से ही फुर्सत नहीं मिली फिर वे स्वदेश को कैसे देख सकते जो ब्रिटिश भार से कराह रहा थी वे उस किसान को भी नहीं देख सके जिसके पास गरीबी छोड़-कर कोई ऐसी वस्तु नहीं थी जिसे वह अपनी कह सकता। किन्तु इस अश्लीलता का उत्तरदायित्व 'जनरुचि' को नहीं ठहराया जा सकता जैसा डा० नगेन्द्र ने. ठहराया है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में "इसका (अश्लीलता का) कारण जनता की रुचि नहीं; आश्रय-दाता राजा महाराजाओं की रुचि थी जिनके लिए कर्मरायता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।"१

भारतेन्दु काल तक आते आते रीतिकालीन धारा "वेपानी"२ हो गई थी। भारतेन्दु की सर्व तो मुखी प्रतिभा ने पीछे मुड़कर देखा

१—हिं. सा. का इतिहास पृ. २६१.
२—आचार्य विनय मोहन शर्मा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवश्य किंतु उनकी निगाह आगे भी गई और सबसे अधिक उन्होंने अपने चारों ओर देखा। उन्हें अपने देश की राजनीति आर्थिक सामाजिक, धार्मिक प्रत्येक प्रकार की "दुर्दशा" पर था। वे अंग्रेजो का विरोध खुल्लमखुल्ला तो न कर सके दबी जबान से उन्होंने कह ही तो दिया।

अँगरेज राज सुख-साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी॥

उन्हें भारतीय ललनाओं पर कितना खेद था, यह इन पंक्ति से पता लग जाता है।

"आज बड़ा दिन है, क्रिस्तान लोगों को इससे बढ़कर आनन्द का दिन नहीं है। किंतु मुझको आज उलटा और दुख इसका कारण मनुष्य-स्वभाव-सुलभ ईर्ष्यामात्र हैं। मैं कोई नहीं कि राग द्वेष से विहीन हूँ। जब मुझे अंगरेजी रमणी भेद सिंचित केश राशि, कृत्रिम कुंतल जूट, मिथ्या रत्नाभ विविध-वर्ण वसन से भूषित, क्षीण कटि देश कसे, निज निज गण के साथ प्रसन्न वदन इधर से उधर फर फर कल की पुतली भाँति फिरती हुई दिखलाई पड़ती है तब इस देश की सीधी स्त्रियों की हीन अवस्था मुझको स्मरण आती है और यही मेरे दुःख का कारण होती है।"१

'अंधेर नगरी अनबूझ राजा' में भारतेन्दु का व्यंग अत्यंत प्रखर हो उठा है। भारत की धार्मिक दशा ने भी उन्हें बड़ा थित बना दिया था। एक ओर हम उन्हें राधाकृष्ण की भ झूमते पाते हैं। दूसरी ओर मंदिरों के पाखण्डी पुजारियों की तूतो को बेनकाब करते। उनसे पूर्व के कवि एक ललना को छो दूसरी की कंचुकी उघाडने के लिए ही लालायित रहे। वे अन ही रसंलवादी थे जिसके अनुसार "स्त्री पुरुष स्वभावतः क्रमश पुरुष स्त्री गामी होते हैं। वे कुछ या बहुत काल तक भले ही

१—'नीलदेवी'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यक्ति के प्रेम में बँधे रहें पर एक समय आता है जब उनकी प्रेम की ज्वाला बुझने लगती है और वे अपने में नया उभार लाने के लिए नए साथी की खोज में व्यग्र हो जाते हैं।"

भारतेन्दु ने, जैसा अभी लिखा गया है, अपने पीछे मुड़कर देखा और अपने चारों ओर भी। उनकी दृष्टि "योनिमात्र" पर ही नहीं रह सकी। अतः उन्होंने एक ओर जहाँ :—

तेरी अँगिया में चोर बसैं गोरी।
छोड़ि दे किन बंद चोलिया पकरैं चोर हम अपनो री।

जैसी रचनाएं लिखकर अपने पूर्वजों को सलाम झुकाया वहाँ उनसे अलग "जयहिंद" करना भी सीखा—और यही वह वस्तु है जो उनके युग को रीतियुग से अलग करती है। वे भारत की दयनीय दशा देखकर मौन न रह सके :—

सोई भारत भूमि भई सब भाँति दुखारी।
रह्यौ न एकहु वीर सहस्त्रन कोस मँझारी॥
होत सिंह को नाद जौन भारत बन माहीं।
तहँ अब ससक सियार स्वान खर आदि लखाहिं॥
जहँ झूसी उज्जैन अवध कन्नौज रहे बर।
तहँ अब रोवत सिवा चहूँ दिसि लखियत खँडहर॥
धन विद्या बल मान वीरता की रति छाई।
रही जहाँ तित केवल अब दीनता लखाई॥

इसीलिए उन्होंने रोने के लिये सबको आमंत्रित किया :—

अबहु सब मिलिकैं रोवहु भारत-भाई।
भारत-दुर्दसा न देखी जाई॥

शायद भारतेन्दु समस्त भारतवासियों के आँसुओं से भारत-भाग्य के 'कुअंक' धो देना चाहते थे। ईश्वर-प्रार्थना करते समय भी उन्हें भारत का ध्यान रहा—

कहाँ करुणानिधि सोए ?
जागत नाँहि अनेक जतन करि भारतवासी रोए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देश-सुधार के साथ ही साथ कविता के आलंबन अन्यान्य विषय भी हो चले जिनमें व्यंग प्रमुख था। रीतिकाल में हास्य तो था किंतु तत्त्वकालीन परिस्थितियों पर व्यंग भारतेन्दु युग से ही प्रारम्भ हुआ जो आज तक चला आ रहा है। हाँ, उस समय का व्यंग कुछ कम चोट करता था किंतु आज का—विशेषतः प्रगतिवादियों का व्यंग तो बस कमर ही तोड़ देता है। 'अंधेर नगरी' तो विख्यात है ही, उस युग के अन्य लेखक भी इस फ़न के उस्ताद थे। 'प्रेमघन' भी भारतेन्दु की ही भाँति देश-दशा पर अत्यन्त क्षुब्ध थे। कांग्रेस के अधिवेशन का भी प्रभाव इस काल के लोगों पर आशाँतीत पड़ता. देश में एक नई स्फुर्ति आ जाती, फलतः कवि भी अपनी लेखनी द्वारा उसमें सहयोग देते—केवल गुलगुले, गिलमों, गलीचों, चिक, चिरागों तक ही अपने को सीमित नहीं रखते। एक बार स्व: दादाभाई नौरोजो को विदेश में 'काला' कह दिया गया, इस पर प्रेमघन जी अत्यंत दुखी हुए:—

अचरज होत तुमहुँ सम गोरे वाजत कारे।
तासों कारे 'कारे' शब्दहुँ पर हैं वारे॥
कारे काम, राम, जलधर जल-बरसनबारे।
कारे लागत ताही सौं कारन कौं प्यारे॥
यातें नीको है तुम 'कारे' जाहु पुकारे।
यहै असीस देत तुमको मिलि हम सब कारे॥
सफल होंहि मन के सब ही संकल्प तुम्हारे।

एक शब्द में भारतेन्दु युगीन कवि ने "राधाकृष्ण की कामक्रीड़ा की छलकन से कुछ विरक्त हो अपनी स्थिति पर विचार करना प्रारम्भ कर दिया था।"*

भाव के साथ साथ भाषा में भी एक मोड़ आया। कविगण व्रजभाषा छोड़कर खड़ी बोली में लेखनी चलाने का साहस करने लगे। 'साहस' इसलिए कि व्रजभाषा हिन्दी कविता के लिए रूढ़ि हो गई

* श्री विनय मोहन शर्मा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थी। इस काल के कवियों ने खड़ी बोली के घूँघट को बड़े भय के साथ उघाड़ा। इस नई देवी की धोती को, इस काल के कवि, चुनरी बनाने के सोच भी न सके, सोचा द्विवेदी कालीन कवियों में था किंतु कार्य में अनुवाद तो हमरे प्रसाद और उनसे भी अधिक पंत ने किया। हरिश्चंद्र ने, जिन्होंने व्रजभाषा में लिखने का श्री गणेश किया था, लिखा—"पश्चिमोत्तर देश के कविता की भाषा व्रजभाषा है यह नियत हो चुकी है और प्राचीन काल से लोग इसी भाषा में कविता करते आते हैं परन्तु यह कह सकते हैं, कि यह नियम अकवर के समय से पूर्व नहीं था क्योंकि मलिक मुहम्मद जायसी और चंद की कविता विलक्षण ही है और वैसे ही तुलसीदास जी ने भी व्रजभाषा का नियम भंगकर दिया। जो हो मैंने स्वयं कई वेर परिश्रम किया कि खड़ी वोली में कुछ कविता बनाऊँ पर वह मेरे चित्तानुसार नहीं बनी। इससे यह निश्चय होता है कि व्रज-भाषा ही में कविता करना उत्तम होता है और इसी से सब कविता व्रजभाषा में ही उत्तम होती है।"❀

कुछ भी हो भारत के इन्दु एवं उसके मण्डल के नक्षत्रगण ने हिन्दी को नया प्रकाश अवश्य दिया। वे रीति की धारा को विल्कुल मोड़ने में तो समर्थ न हो सके किंतु उसे टेढ़ी तो कर ही दिया देश के वहते आँसू पौंछने के लिए हाथ तो वढ़ाया, विलखते समाज की सुधि तो ली।

इन्दु के अस्त होने के उपरांत हिन्दी साहित्य के क्षितिज पर आचार्य महावीर प्रसादजी द्विवेदी का आविर्भाव हुआ। जिसे आधुनिक हिन्दी साहिय कहते हैं वह सच्चे अर्थों में तो इनके सरस्वती-सम्पादन का भार उठाने के ही समय से (१६०४ ई०. प्रारम्भ होता है। आचार्यजी के सम्पादन काल में 'सरस्वती' ने हिन्दी की धारा को जो मोड़ दिया, उसे यहाँ दुहराना असंगत है। आपसे पूव, जैसा कि अभी कहा है, ऐसा कोई कवि नहीं था जिसे हम विशुद्ध खड़ी बोली का कह सकें—हाँ, प्रयास अवश्य

❀ 'भारत-दुर्दशा'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किए गए। श्रीधर पाठक ने 'एकान्तवासी योगी' की रचना खड़ी बोली में ही की। अतिरिक्त उन्होंने गोल्डस्मिथ 'Oliver Goldsmith' के द ट्रैवलर' 'The Traveller' एवं 'द डैज़रटैड विलिज (Deserted Village) के अनुवाद खड़ी बोली में क्रमशः श्रांत पथिक' तथा 'ऊजड़ ग्राम' से किए। किंतु द्विवेदीजीकी पाठशाला में तो खड़ी बोली अनिवार्य (Compulsory) थी। उन्हें भारतेन्दुकालीन श्रृंगार तक पसंद नहीं था। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में लिखा "इस तरह की कविता (अर्थात् रीतिकालीन श्रृंगारी कविता) सैकड़ों वर्षों से होती आ रही है। अनेक कवि हो चुके हैं जिन्होंने इस विषय पर न मालूम क्या लिख डाला है। इस दशा में नए कवि अपनी कविता में नयापन कैसे ला सकते हैं? वही तुक, वही छंद, वही शब्द, वही उपमा, वही रूपक। इस पर भी लोग पुरानी लकीर बराबर पीटते जाते हैं। कवित्त, सवैये, दोहे सोरठे लिखने से बाज़ नहीं आते।" उन्होंने कवियों को कविता के विषय के संबंध में भी इंगित किया—"चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त, जल, अनन्त आकाश, अनंत पृथ्वी, सभी से उपदेश मिल सकता है और सभी के वर्णन से मनोरंजन हो सकता है फिर क्या कारण हैं कि इन विषयों को छोड़कर कोई-कोई कवि स्त्रियों की चेष्टाओं का वर्णन करना ही कविता की चरम सीमा समझते हैं।" उस समय ऐसी ललकार लगाना सचमुच बड़ी दिलेरी एवं जवाँमर्दी का काम था। उन्हें रूढ़ि की कोई बात भी तो पसंद नहीं थी—न भाव, न भाषा तकनीक। रीतिकालीन श्रृंगारी कविता करने वालों को वे "केवल अविचार एवं अंध परंपरा" के अनुयायी मानते थे। उस समय जीवन की मधुर भावनाओं को कलमों की नोंक पर नहीं उतरने दिया जाता था। यह बात कह कर ही नहीं रह गए उन्होंने स्वयं कविताएँ की जो खड़ी बोली में थीं एवं श्रृंगार से योजनों दूर थीं। आचार्यजी रेलवे में सर्विस करते समय मराठी पद्य-साहित्य से भी काफी परिचित हो चुके थे अतः उनकी कविता में मराठी का अक्खड़पन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। फलतः उन द्वारा बनाए गए मार्ग पर चलने वालों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कविताएँ चाहे आज के हृदय को न छू सकें (नहीं ही छूती हैं) उन दिनों हिन्दी जनता का कंठहार हो गई। कारण यह था कि उनसे पूर्व किसी आचार्य ने भाषा सुधारने के कार्य में तनिक भी हाथ नहीं लगाया, जो जैसा चाहता लिख देता। आचार्य को 'भाषा' की यह 'अनस्थिरता' बहुत खटकी। घोर परिश्रम से उन्होंने उसमें स्थिरता पैदा की। कोई भी रचना उनकी निगाह के सामने से गुजरे बिना 'सरस्वती' के पन्नों पर नहीं जा सकती थी। फलतः हिन्दी का प्रत्येक लेखक 'जो कुछ लिखता बहुत ही ध्यानपूर्वक लिखता। आज की भाँति 'काता और ले दौड़े' वाली बात नहीं थी। यही कारण है कि जिस किसी की रचना 'सरस्वती' में छप जाती वह अपना अहोभाग्य समझता। इस प्रकार उन्होंने भाव एवं भावाभिव्यक्ति दोनों में क्रांति उत्पन्न कर दी। हिन्दी लेखक थरथरा उठे। कवियों को अपने हृदय की मीठी बात कहने में संकोच हो निकला। सरस अभिव्यक्ति फूट-फूट कर रोने लगी। कविता सूखी गद्य बन गई। सन् १८०० में लिरिकल बैलेड्स की भूमिका Preface to the Lyrical Ballads में वर्डसवर्थ द्वारा काव्य का भाषा-विषय विचार कि "जन-साधारण एवं पद्य की भाषा में न तो कोई अन्तर है और न होना चाहिए"१ द्विवेदी स्कूल की चिरकालीन प्रार्थना बन गया। इसका फल यह हुआ कि कविता के विषय नितांत रूखे एवं सूखे होने लगे। आचार्य के कानों को—न जाने क्यों—नीरस तरुरिह विलसित पुरतः' की अपेक्षा 'शुष्कः वृक्षः तिष्ठत्यग्रे' में अधिक रस आने लगा। कविता की रूक्षता का एक और कारण था और वह यह था कि उन्होंने निठल्ले कवियों को भी कवि गढ़ दिया

१'There neither is nor there can be any difference between the language of common man and that of metrical composition.'

—Preface to the Lyrical Ballads

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिससे कविता में स्वच्छन्द प्रवाह (Spontaneity) का सर्वथा अभाव हो गया। सर्व श्री रामचरित उपाध्याय, हरिऔध, गोपालशरणसिंह, मैथिली शरण गुप्त उन्हीं में से हैं। गुप्तजी की 'भारत-भारती' की धूम मच गई, संस्कृत वृत्तों में लिखित 'प्रिय प्रवास की पूजा होने लगी, उर्मिला पर आँसू बहाकर हमारे राष्ट्रकवि ने हिन्दु जनता पर जो अहसान किया उसकी प्रशंसा द्विवेदी जी शतमुख होकर करने लगे। स्वयं द्विवेदी जी ने इस प्रकार की पंक्तियाँ गढ़ीं :—

तुम्ही अन्नदाता भारत के सचमुच बैलराज महाराज।
बिना तुम्हारे हो जाते हम दाने दाने को मोहताज॥
तुम्हें षण्ड कर देते हैं जो महा निर्दयी जन सिरताज।
धिक उनको, उन पर हँसता है, बुरी तरह वह सकल समाज॥

अथवा

प्राकार जासु नभ-मंडल में समाने।
प्राचीर जासु लखि लोकप हू सकाने॥
जाकी समस्त सुनि संपति की कहानी।
नीचे नवाय सिर देवपुरी लजानी॥

रामचरित उपाध्याय की बानगी लीजिए—

मम निवेदन है कछु आपसे
सुन उसे उर में धर लीजिये

बाबू मैथली शरण का तो कहना ही क्या ? वे तो उस समय के 'वाचकों' को साकेत' में न जाने कहाँ कहाँ ले जाकर रेगिस्तानों की सैर कराने लगे।

कौशल्या रानी भोली।
धाड़ मारकर यों बोली॥
× × ×
शोक ने ली आज आज अफर डकार।
वत्स हुआ कर उठे डिडकार॥
× × × ×
ठंडी न पड़ बनो रह तत्तो॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसी पंक्तियाँ आदर्श मान ली गईं। हाँ 'हरि औंध' जी अवश्य इस रुक्षता के कफन को ओढ़ने से मना करते हुए प्रतीत होते हैं। आचार्य शुक्ल ने ठीक ही लिखा है कि "उपाध्याय जी कोमल काँत पदावली को कविता का सब कुछ नहीं तो बहुत कुछ समझते हैं।....किसी प्रकार की रचना को हद पर—चाहे उस हद तक जाना अधिकतर लोगों को इष्ट न हो—पहुँचा कर दिखाने की प्रवृत्ति के अनुसार उपध्याय जी ने अपने इस काव्य (प्रिय प्रवास) में कई जगह संस्कृत शब्दों की ऐसी लम्बी लड़ी बाँधी है कि हिन्दी को 'है' 'था' 'किया' 'दिया' ऐसी दो-एक क्रियाओं के भीतर ही सिमटकर रह जाना पड़ा है। पर सर्वत्र ऐसी बात नहीं है। अधिकतर पदों में बड़े ढंग से हिंदी अपनी चाल पर चलीं चलती दिखाई पड़ती है।"*

इस प्रकार बीसवीं सताब्दी के प्रारंभिक दो दशक हिंदी के लिए नितांत मरुस्थल बन कर आए। किंतु इस मरुस्थल में भी हमारे प्रसार एवं पंत हरीतिमा लाने की योजनाएँ बनाते रहे। वे द्विवेदी जी के डण्डे के भय से उनके समक्ष तो कुछ कर नहीं सकते थे अतः चुपके से उनकी पाठशाला से भाग गये और सितारों से चुप चुप कहानियाँ सुनने लगे। चुपके चुपके उन तरानों को गाने लगे जिन्हें आचार्य जी ओठों पर भी नहीं लाने देते थे; प्रकृति की उन गल बाहियों को देखने लगे जिन्हें देखने के लिए द्विवेदी जी छुट्टी ही नहीं देते थे; उस सुदंरता क स्पर्श करने लगे जिसकी ओर उंगली उठाते हीं द्विवेदी जी अपने रजिस्टर में गैरहाजिरी लगा देते थे—उस उन्मुक्त आकाश में निर्बंध घूमने लगे जिसके विषय में सोचने से ही आचाय जी अपने स्कूल से रस्टिकेशन(Rustication) कर देते थे।

---

* हिंदी साहित्य का इतिहास—पृ-७३४

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४-प्रसाद-पन्त एवं छायावाद

"भारतीय साहित्य-समाज के अंतः पट पर छायावाद ने जो मार्के की कसक भरी मीठी मनुहार दी है, जो व्यापक रागनी छोड़ी है जो वासंती तान गुंजितकी है, उल्लास की वीणा पर भव्य भावनाओं की जो कोमल उँगलियाँ फेरी हैं कल्पना के कमनीय पंखों पर उड़ कर संसार की जो सुनहरी झाँकी ली है, वह सब अपनी सरसता, स्निग्धता तथा संगीतमयता के कारण अमिट और अमर है।"

गं० प्र० पाण्डे—'छायावाद और रहस्वाद' पृ० ४६।

रजनी का मुसकराता तारक मण्डल उषा-सौंदर्य को निहारकर तिरोहित हो जाता है. किन्तु क्या उषा का वह सौंदर्य अक्षय है! थोड़े काल पश्चात ही सविता त्यौरी चढ़ाकर आता है एवं उषा-सौंदर्य को रौंदकर नभ को आलोक मण्डित कर देता है। अट्टहास कर उठता है वह! किंतु सूर्य का अट्टहास भी तो अस्थायी है। उसका उद्दाम यौवन भी तो अंत में छोटी सी पहाड़ी के पीछे मुँह छिपाने को चल देता है और फिर……फिर चंद्र मानों तारिकाओं का बदला लेने के लिए अपना घूँघट खोलकर वातायन से झाँकने लगता है। सितारे भी मानो अपनी अभीप्सित वस्तु पूर्ण हुई जान एक बार फिर अपने सखाओं सहित टहल निकलते हैं। फिर वही चक्र चल निकलता है। उधर ग्रीष्म अपने घरघराते यान पर आकर जगती की हरीतिमा को मिट जाने के लिए वाध्य कर देता है किंतु फिर वे फुहारें भी तो आती हैं जो चट्टानों तक को दूर्वादल से सजा देती हैं। एक बार बसंत भी तो आता है—इठलाता हुआ मुस्काता हुआ, कुरूपता को चुनौती देता हुआ। डालों को कितनी प्रकार से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सजा देता है, कुसुमों को कितने प्रकार के रंगों से रंजित कर देता है, डालों पर रह रह कर कितना यौवन लिख देता है, पराग युक्त समीर भेजकर मनु की संतति के हृदयों को कितनी देर तक गुद-गुदाता रहता है। कहीं दूर, भीड़ से अलग अकेले खड़े, सहमे से मौन पादप को निहारकर उससे नहीं रहा जाता और समीप जाकर वह उसके मन की पूछ ही तो आता है। और फिर......फिर पतझर का वह प्रभंजन भी तो आता है जो स्वप्न देखते हुए सुमनों को धरती की कठोरता छूने के लिए विवश कर देता है, यौवन-भार से लदे हुए वृन्तों को ठठरी बनाकर आँसू बहाने के लिए एकांकी छोड़ देता है। जिस समय वह अट्टहास करता है, लजीली कलियों को छेड़ता हुआ भ्रमर चौंक पड़ता है एवं भयभीत हो चुपके से सरक जाता है। कलिका बेचारी अपने भाग्य के लेख को पढ़ती हुई अनचाहे ही चू पड़ती है। इन सब बातों के आधार पर यह आसानी से कहा जा सकता है कि जगत की प्रत्येक वस्तु परिवर्तन शील है। इसी बात को दूसरे शब्दों में यूँ भी कह सकते हैं कि जगत की कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो सदा-सर्वदा एक ही रूप में बनी रहे। हाँ, यदि उस वस्तु को वैसा ही बनाए रखने का प्रयास किया जाय तो उसका रूप, रंग, आभा—सब विनष्ट हो जाएँगे, मुरझा जायगी वह और अंत में स्वयमेव मृत्यु के हिमानी अङ्क में खो जायगी। साहित्य में भी तो ऐसा ही होता है। वहाँ भी तो ग्रीष्म आती है वहाँ भी तो पतझर होता है, वहाँ भी तो बहार नाचती है—क्या नहीं होता वहाँ ?

हाँ, तो हिन्दी साहित्य भी उस धुँधले काल से परिवर्तन शील रहा है। सच पूछा जाय तो साहित्य में पलक मारते युग बीत जाते हैं। कभी ऐसा भी होता है कि हमारी आँखें पथरा जाती हैं और युग का छोर ? नहीं दिखाई देता। वीर युग का पर्यवसान भक्ति में हुआ। लोग कहते हैं कि भक्ति युग हिन्दी का स्वर्णयुग था किंतु लोगों ने तो भक्ति के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस स्वर्ण को त्यागकर रीति के मुलम्मे पर अपने प्राणों की बाजी लगा दी। क्यों?—इसीलिए कि गत्यात्मकता जीवन है, स्थिरता मौत।* उन्होंने अच्छा ही किया। भक्ति की निर्मल सरिता त्यागकर रीति की गँदली नाली स्वीकार करने में उन्होंने बुद्धिमता का ही परिचय दिया। परोक्ष साँवले कृष्ण को भूलकर प्रत्यक्ष सलौने कन्हैया के गीत गाकर कवियों ने उचित ही किया। जीवन पर्यन्त पतिव्रत धारण करने वाली भक्तियुगीन सीता से 'उस' पाख में पतिव्रत छुड़वाकर[1] हमारे कवियों ने अपनी ईमानदारी ही दिखाई। इतना ही नहीं सीता के चोर को राम के समान लंका जैसे सुदूर देश में खोजने से पहले ही 'अँगिया' में छिपा जान लेना उनकी दूरदर्शिता का ही परिणाम है।[2] और चोर न देने पर चढ़ाई कर देना हमारे रीतिकालीन कवियों के अडिग साहस का द्योतक है। हिंदी-साहित्य का कितना सुन्दर काल होगा। वह संभव है आप पूछ बैठे कि इतने सुन्दर काल को भी मिटा देने के लिए फिर हिन्दी वालों ने क्यों प्रयत्न किए? उत्तर वही है—वही—गत्यात्मकता जीवन है, स्थिरता मौत। अब कवि को अपना चोर लंका में दिखाई नहीं दिया। अँगिया को तो उसके पुरखों ने ही उघाड़कर देख लिया—वहा भी नहीं था। उसे तो अपना चोर चारों ओर ही दिखाई देने लगा—उसके समक्ष ही उसकी वस्तुओं की चोरी होने लगी—कवि चीख उठा अपने चोर को देखकर—

सर्वसु लिए जात अङ्गरेज।[3]

अतः भारतेन्दु कालीन कवि उस अँगरेज चोर को भगाने के प्रयास में ही लगा रहा किंतु चोर ऐसा वैसा नहीं था—सुल्ताना था

* 'Change is life stagnation is death.'

१. 'यदि पाखैं पतिव्रत ताखैं रखौ।'—भारतेन्दु

२. तेरी अँगिया में चोर बसैं गोरी।
छोड़ि दे किन बंद चोलिया पकरैं चोर हम ·पनो री॥

३. पं० प्रतापनारायण मिश्र।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतः भगाने का प्रयास करते हुए भी भय के कारण तत्कालीन कवि को कहना ही पड़ता था—

अँगरेज राज सुख-साज सजे सब भारी।

फिर हिन्दी क्षितिज पर आचार्य द्विवेदी का उदय हुआ। उन्होंने देखा चोर वास्तव में अत्यंत ढीठ हैं—बलवान तो है ही। इसलिए उन्होंने चोर को भगाने का प्रयत्न करने से पूर्व समाज को संगठित करके शक्तिशाली बनाने की ठानी। जब समाज शक्तिशाली है तो चोर को तो आने का साहस ही नहीं हो सकेगा—उन्होंने ठीक ही सोचा। उन्हें यह भी नहीं रुचा कि चोर को 'अँगिया' में ढूँढ़ा जाय। इतना ही नहीं कि उन्हें अँगिया मे ढूँढना नहीं रुचा, उन्हें तो उस स्थान के विषय में कल्पना में भी सोचना घृणित था। फलतः कविता स्थूल विषयों पर हो निकली, कोने कोने में भारत की भारती की गूँज छा गई। कविता के विषय उपयोगितावाद एवं भौतिकता से आगे नहीं झाँक सके। अंग्रेजी साहित्य में भी एक ऐसा ही काल आ गया था जिसके नायक श्री अलैग्जैण्डर पोप (Alexander Pope) थे। उनके काव्य में भी स्थूलता अपने शीर्ष बिन्दु पर पहुँच चुकी थी किन्तु जैसा कि पूर्व लिखा जा चुका है परिवर्तन जगत का अटूट नियम है। कवियों की भावुकता एवं सूक्ष्मता ने पोप की स्थूलता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और साहित्य में प्राचीनता एवं शास्त्रीयता के स्थान पर एक नव नूतन पद्धति को अपनी स्वीकृति दी जो रोमेण्टिसिज्म (Romanticism) नाम से विख्यात हुई। द्विवेदी युग में भी नैतिकता उपयोगवादिता एवं तकनीक की गहरी लकीरें बन गई थीं—और युवक कवियों का इन्हीं लकीरों के प्रति अभिनव विद्रोह था जो हिन्दी साहित्य में छायावाद के नाम से अभिहित हुआ। शुक्ल जी के अनुसार भी "छायावाद का चलन द्विवेदी-काल की सूखी इतिवृत्तात्मक की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ।"[१] कौन से पण्डित ने इस नवजात शिशु का नामकरण किया—यह अभी

१. हिं० सा० का इतिहास पृ० ८०७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संदिग्ध है। इसे यह नाम किसी ने उपहास करने के लिए दिया था—यह अब असंदिग्ध है। पंत को यह नाम रुचिकर नहीं लगा- "छायावाद नाम से मैं संतुष्ट नहीं हूँ। यह तो द्विवेदी युग के आलोचकों के द्वारा नई कविता के उपहास का सूचक है।" किंतु महादेवी वर्मा अपनी 'रश्मि' की भूमिका में कुछ और ही कहती हैं- "स्वच्छन्द छंद में चित्रित इन मानव अनुभूतियों का नाम छायावाद उपयुक्त ही है। मुझे तो आज भी प्रिय है।" इस सब परेशानी का कारण संभवतः आचार्य शुक्ल हैं जिन्होंने इसे पश्चिम की देन कहा उन्होंने छायावाद एवं रहस्यवाद को पर्यायमान लिया था- "छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहां उसका संबंध काव्य-वस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उसे अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। रहस्यवाद के अन्तर्भूत रचनाएँ पहुँचे हुए पुराने संतों या साधकों की उस वाणी के अनुकरण पर होती हैं जो तुरीयावस्था या समाधि-दशा में नाना रूपकों के रूप में उपलब्ध आध्यात्मिक ज्ञान का आभास देती हुई मानी जाती थी। इस रूपात्मक आभास को योरोप में छाया (Phantasmata) कहते थे। इसी से बंगाल के ब्रह्म समाज के बीच उक्त वाणी के अनुकरण पर जो आध्यात्मिक गीत या भजन बनते थे वे 'छायावाद' कहलाने लगे। धीरे धीरे यह शब्द धार्मिक क्षेत्र में वहाँ के साहित्य-क्षेत्र में आया और फिर रवि बाबू की धूम मचने पर हिन्दी के साहित्य में भी प्रकट हुआ।"[1] प्रकट है कि आचार्य शुक्ल इसे पश्चिम से बंगाल के द्वार से आया हुआ एक वाद मानते हैं, असल की नकल मानते हैं, सत्य वस्तु की छाया मानते हैं। ऐसा ही सोचकर किसी ने इसे यदि छायावाद नाम दे दिया तो क्या बेजा किया? किंतु छायावाद उपहास योग्य

१. हिं० सा० का इतिहास पृ० ८०६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं है। पगडण्डी पर घिसटते हुए हिन्दी साहित्य को राजपथ पर डालने का श्रेय इसे ही है—"छायावाद आधुनिक हिंदी कविता के स्वाभाविक विकास की एक महत्वपूर्ण मंजिल है, जहाँ पहुँचकर हिन्दी कविता भक्ति कालीन काव्य की ऊँचाई और गौरव को पुनः प्राप्त कर सकी है।"[1]

जहाँ तक छायावाद शब्द की व्याख्या का संबंध है अब तक इसकी न जाने कितनी व्याख्याएँ हो चुकी हैं। श्री विनय मोहन जी शर्मा के शब्दों में—"यदि एक वाक्य में कहें तो कह सकते हैं कि वे सब रचनाएँ जो अन्तर्वृत्ति निरूपक हैं छायावाद के अन्तर्गत आ जाती हैं।" वे जरा और आगे कहते हैं, "रहस्यवादी रचनाएँ भी जो अन्तर्वृत्तिनिरूपक ही होती हैं 'छायावाद' शैली की कृतियाँ कहला सकती हैं।"[2] इस प्रकार वे छायावाद की शैली पर विशेष बल देते हैं! कविवर प्रसाद जी के अनुसार "कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश विदेश की सुन्दरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया।"[3] उन्होंने अन्यत्र भी लिखा है—"छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ हैं। अपने भीतर से मोती की तरह अन्तर स्पर्श करके भाव समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति छाया कान्तिमय होती है।" इस प्रकार प्रसाद जी भी छायावाद काव्य की एक शैली तो मानते हैं किंतु विशेष प्रकार की—ध्वन्यात्मक, लाक्षणिक, प्रतीकात्मक एवं वक्र।

१. अवंतिका, जनवरी १९५४
२. 'कवि प्रसाद : आँसू तथा अन्य कृतियाँ'—पृ० २४
३. "काव्य कला तथा अन्य निबंध"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस समय छायावाद को बड़ी सशंक दृष्टि से देखा जाता था अत छायावादी कवियों को अपनी वकालत स्वयं करनी पड़ी थी—ठी उसी प्रकार जिस प्रकार कल प्रयोगवादियों को करनी पड़ी थी महादेवी ने कहा "छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के संबंध में प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल से विम्ब प्रतिबिम्ब रू में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुख प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी।" अपने 'आधु निक कवि' में उन्होंने छायावाद पर लगाए गए सब से बड़े आरोप पलायनवाद—का भी खण्डन किया।

साधारणत: छायावादी कवि में निम्न प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं:-

(१) सौंदर्य-भावना,
(२) प्रेम-भावना,
(३) करुणा की धारा,
(४) प्रकृति-प्रेम,
(५) आत्माभिव्यंजन एवं
(६) अभिव्यंजना—पद्धति नवीन, के प्रसाधन।

१—सौंदर्य-भावना : मानव—नहीं नहीं जीव मात्र में सौंदर्य चिर पिपासा रही है। मृग तो वीणा-ध्वनि पर अपने को सदैव भूलता आया है। जलधर-सौंदर्य निहारकर मयूर का तो कहन ही क्या? छायावादी काल इसका अपवाद नहीं। उसने अशरीर सौंदर्य-प्रियता को जन्म दिया। सच पूछा जाय तो इसकी नींव सौंदर्य पर आधारित है—उस सौंदर्य पर जो द्विवेदी काल में इतिवृ की धूम मच जाने से अँधेरे कोने में पड़ा सिसक रहा था। कि यह रीतिकालीन स्थूल सौंदर्य नहीं था, आंतरिक था। रीतिकाली कवियों के सौंदर्य चित्रण में स्थूल ऐन्द्रिकता थी, इसमें सूक्ष्मता सौंदर्य भावना भारतेन्दु युग में भी थी किंतु वह भी ऊपरी मात्र थ कवियों का हृदय देश-भक्ति से प्लावित था अत: सौंदर्यांकन में कवि कण अपने हृदय नहीं उँड़ेल सके। द्विवेदी युगीन काव्य में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सौंदर्य का प्रश्न ही नहीं—वह युग स्वयं सौंदर्य के प्रति विद्रोह का युग था। अतः छायावादी काल में कवियों ने सौंदर्य की एक अलग ही लकीर खींच दी, प्रसाद का सौंदर्य कायिक नहीं अपितु चेतना का वरदान है :—

उज्ज्वल वरदान चेतना का,
सौंदर्य जिसे सब कहते हैं।

—कामायनी

उन्होंने लहर का सौंदर्य इन शब्दों में किया—

करुणा की नव अंगड़ाई सी,
मलया निल की परछाँई सी,
× × ×
शीतल, कोमल, चिर कम्पन सी,
दुर्ललित हठीले बचपन सी।

इड़ा का सौंदर्य वर्णन देखिए जो पुराकालीन ललना के चित्र से कितना भिन्न है :—

बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल।
यह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशिखण्ड सदृश था स्पष्ट भाल।
दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल॥
गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान।
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान ज्ञान॥
था एक हाथ में कर्म कलश वसुधा जीवन रस सार लिए :
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलंब दिए॥
त्रिवली थी त्रिगुण तरंगमयी, आलोक वसन लिपटा अराल :
चरणों में थी गति भरी ताल।

उधर श्रद्धा की मुसकान का सौंदर्य भी देख लीजिए :—

उषा की पहिली लेखा कान्त,
माधुरी से भींगी भर मोद।
मद भरी जैसे उठे सलज्ज,
भोर की तारक द्युति की गोद॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुसुम कानन अंचल में मंद,
पवन प्रेरित सौरभ साकार।
रचित परमाणु पराग शरीर,
खड़ा हो ले मधु का आधार॥
और पड़ती हो उस पर शुभ्र,
नवल मधुराका मन की साध।
हँसी का मद विह्वल प्रतिबिंब,
मधुरिमा खेला सदृश अबाध॥

साथ साथ प्रसाद जी के 'आँसू' के आलम्बन का सौंदर्य-च भी देखते चलिए और रीति-कालीन 'आफताब की झझक' से तु कीजिए—

मुख कमल समीप सजे थे,
दो किसलय दल पुर इन के।
जल-बिंदु सदृश ठहरे कब,
उन कानों में दुख किन के॥

कवि की सौंदर्य भावना रीतिकालीन कवि की भाँति नारी ही केन्द्रित नहीं रही, वह मनु पर भी लट्टू था। उसने चित्र दिया :—

अवयव की दृढ़ माँस पेशियाँ,
ऊर्ज्वस्वित था वीर्य अपार,
स्फीत शिराएँ, स्वस्थ रक्त का,
होता था जिनमें संचार।

मनु का यही वह सौंदर्य है जिस पर श्रद्धा अपनी हस्ती मि के लिए तैयार हो गई थीं। कवि प्रसाद तो देश-सौंदर्य पर भी मिटने को तैयार हैं :

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस-गर्भ विभा पर नाच रही तरु शिखा मनोहर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा॥
लघु सुरधनु से पंख पसारे—सीतल मलय समीर सहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुँह किए—समझ नीड़ निज प्यारा॥
बरसाती आँखों के बादल—बनते जहाँ भरे करुणाजल।
लहरें टकराती अनंत की—पाकर जहाँ किनारा॥
हेमकुंभ ले उषा सवेरे—भरती ढुलकाती सुख मेरे।
मदिर ऊँघते जब रहते—जग कर रजनी भर तारा॥

कवि पंत के सौंदर्य—चित्र भी सूक्ष्म ही हैं। वे बाह्य की अपेक्षा आंतरिक उद्घाटन अधिक करते हैं। अपनी 'उच्छ्‌वास' की बालिका का सौंदर्य कवि इन पंक्तियों में करता है :—

सरलपन ही था उसका मन,
निरालापन था आभूषन.
कान से मिले अजान नयन,
सहज था सजा सजीला तन।
सुरीले ढीले अधरों बीच,
अधूरा उसका लचका गान,
× × ×
छपी-सी पी-सी मृदु मुसकान,
छिपी, खिंची सखी-सी साथ,
उसी की उपमा-सी बन, मान,
गिरा का धरती थी धर हाथ!

'प्रसाद' का सौंदर्य निर्वस्त्र नहीं, वह चिलमन का सौंदर्य है—आधा प्रत्यक्ष आधा परोक्ष :[1]

शशि-मुख पर घूँघट डाले,
अंचल में दीप छिपाए।

उधर पंत की 'आँसू' की बालिका का सौंदर्य निहारिए :—

एक वीणा की मृदु झंकार।

१. 'Half reveabd and half concealen'.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहाँ है सुन्दरता का पार ?
तुम्हें किस दर्पण में सुकुमारि ?
दिखाऊँ मैं साकार।
तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा स्नान।
तुम्हारी वाणी में, कल्याणि !
त्रिवेणी की लहरों का गान।
अपरिचित चितवन में था प्रात,
सुधामय साँसों में उपचार,
तुम्हारी छाया में आधार,
सुखद चेष्टाओं में आगार।

× × ×

चाँदनी का स्वभाव में भास,

× × ×

विंदु में थी तुम सिंधु अनंत,
एक स्वर में समस्त संगीत;
एक कलिका में अखिल वसंत,
धरा में थीं तुम स्वर्ग पुनीत।

वालिका का कितना भाव-प्रवण सौंदर्य-चित्रण है। इस वर्णन में सच्चे प्यार की दिव्यता है, कामुकता का कालुष्य नहीं। सौंदर्य-वर्णन में छायावादी कवि अपने पूर्वज से यहाँ बिल्कुल भि[न्न] हो जाता है। 'ग्रंथि' की वालिका के सौंदर्य का तो कहना ही क्या, उसमें तो सौंदर्य की वाढ़ थी :—

वाल रजनी थी अलक थी डोलती,
भ्रमित हो शशि के वदन के बीच में,
अचल, रेखांकित कभी थी कर रही,
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुस्तक में किसी पंक्ति के नीचे रेखा खींच देने का अर्थ है कि वह पंक्ति अत्यंत महत्वपूर्ण (V. Important) है और जब मुख के अलक की रेखा खिंच खिंच जाय तब?—बस कुछ मत पूछिए दोस्त। वास्तव में छायावादी कवि को स्थूल जगत का सौंदर्य आकर्षित नहीं कर सकता, उसे तो सूक्ष्म सौंदय ही अभीप्सित है इसीलिए वह कहता है:—

नवल मधु ऋतु-निकुंज में प्रात,
प्रथम कलिका-सी अस्फुट गात,
नील नभ-अंतःपुर में, तन्वि।
दूज की कला-सदृश नवजात,
मधुरता, मृदुता-सी तुम प्राण।

पंत ने भी नारी में ही नारी मानव में भी सौंदर्य खोजा—

सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर,
मानव तुम सबसे सुन्दरतम।

मानव में ही क्यों उन्होंने तो शिशु-सौंदर्य का भी चित्र खींचा है जो छायावाद का कैशोर्य है :

जरा है आदरणीय ;
सुखद यौवन? विलास-उपवन रमणीय ;
शैशव ही है एक स्नेह की वस्तु, सरल, कमनीय ;

२—प्रेम (शृंगार) भावना—सौंदर्य भावना कवि में प्रेमांकुर उत्पन्न कर देती है। प्रेम-रस-वर्षण ही जीवन को नंदन कानन बना सकता है अन्यथा जीवन तो सिकता का ही पर्याय है। प्रेम की भावना ही जीवन को शक्ति देती आई है। हृदय की अन्य कोई भी वृत्ति इतनी विस्तृत नहीं जितनी यह। साहित्य के शैशव से ही प्रेम-भावना प्रधान रही है—नहीं नहीं समूचा हिन्दी साहित्य प्रेम का ही साहित्य है। एक वह काल था जब देश-प्रेम का ही बोल बाला था फलतः हिन्दी में देश प्रेम की ही भेरी बजाई गई, वीरों की गाथाएँ गाई गईं। वही प्रेम आगे चलकर राम और कृष्ण की ओर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्मुख हो गया। फिर क्या था, साहित्य में भक्ति की नि
जाह्नवी वह निकली, राम एवं कृष्ण-प्रेम संबंधी पद गाए जा निक
आगे चलकर प्रेम कंचुकी से किये जाने लगा, सलौने—सलौनी
आँख मिचौनी से साहित्य भरा जाने लगा। आगे चलकर यही
पुनः देश की ओर सरक आया किंतु कवि अपनी निगाह नारी
ओर से बिलकुल नहीं हटा सका अतः भारतेन्दु काल नारी-प्रेम
देश-प्रेम का संधि-विंदु होकर आया। कवि एक ओर कंचुकी पर फि
था दूसरी ओर 'हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान'—प्रेम के प्रति भी स
था, एक ओर मानिनी से पातिव्रत धर्म भाड़ में झोंकने का आ
करने लगा, दूसरी ओर उसके ओठों से देश प्रेम की निम्न पंक्ति
निकल पड़ीं :

"तबहि लख्यो जहँ रह्यो एक दिन कंचन बरसत।
तहँ चौथाई जन रूखी रोटिहु को तरसत॥
जहाँ कृषी, वाणिज्य शिल्प सेवा सब माहीं।
देसिन के हित कछू तत्त्व कहुँ कैसहु नाहीं॥
कहिय कहाँ लगि नृपति हैं जहँ ऋन-भारन।
तहँ तिनकी धन कथा कौन जे गृही सधारन॥

बड़ा ही अजीब युग था। द्विवेदी युग में आकर देश प्रेम, सम
प्रेम, भाषा-प्रेम आदि पर जा लगा। लेकिन प्रेम कहीं लेखनी
नौंक से न बह निकले—इस युग के कवियों का यही प्रेम था।

छायावादी युग में वह दबा हुआ प्रेम एक बारगी पुनः फूट
किन्तु सहमकर; प्रेम ने अपना काम किया—किंतु लुक छिप क
कवियों ने अपने प्रेम की पिचकारियाँ छोड़ी किंतु दूसरों के हा
देकर। प्रकृति के मानवीकरण द्वारा छायावादी कवियों ने अ
प्रेम-भावना व्यक्त थीं। प्रसाद के अनुसार प्रेम-मार्ग अत्य
कठिन है।* प्रेम-पथिक को पथ की बाधाओं की तनिक भी चि

* मिलाइए—'प्रेम को पंथ कराल महा तरवार की धा
धावनो है।'

—बोधा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं करनी चाहिए। नीचे के काँटों को न निहारकर ऊपर घनी छाँह देखना चाहिए :

पथिक, प्रेम की राह अनोखी,
भूल-भूलकर चलना है,
घनी छाँह है ऊपर, तो
नीचे काँटे हैं बिछे हुए।

पन्त के अनुसार :

करुण है हाय। प्रणय,
नहीं दुखा है जहाँ दुराव,
करुणतर है वह भय,
चाहता है जो सदा दुराव।

विश्व की यातनाओं से दग्ध मानव को प्रेम-तरु की ही छाँह में साँस लेना चाहिए।

घने प्रेम तरु तले।
बैठ छाँह लो भव-आतप से तापित और जले॥

इतना ही क्यों वे तो सृष्टि विकास की मूल शक्ति प्रेम ही मानते हैं और प्रेम की भित्ति श्रद्धा :

यह लीला जिसकी विकस चली,
वह मूल शक्ति थी प्रेम-कला।
उसका संदेश सुनाने को,
संसृति में आई यह अमला॥

प्रसाद जी के लिए ही नहीं पंत के लिए भी प्रेम में महती शक्ति है—गंभीर व्यक्ति का हृदय भी एक बारगी तो आंदोलित हो ही जाता है :

अचल हो उठते हैं चंचल,
चपल बन जाते हैं अविचल,
पिघल पड़ते हैं पावन-दल,
कुलिश भी हो जाता कोमल।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसाद जी के प्रेम में कालुष्य नहीं :—

खिंच जाय अधर पर वह रेखा,
जिसमें अंकित हो मधु-लेखा,
जिसको यह विश्व करे देखा,
वह स्मित का चित्र बना जाऐ।

इसी प्रकार पन्त—प्रेम में वासना का प्रवेश नहीं :—

काम क्रोध मद भगा न जिससे,
पर उपकार लगा नहिं जिससे,
विश्व-प्रेम मन लगा न जिससे,
वह सबने धिक प्रेम बताया।

जिस प्रकार पन्त प्रेम के द्वारा उपकार-भावना जगाने की इच्छा करते हैं उसी प्रकार प्रेम का अनुपम गायक शैली P.B. Shelly किया करता था। उसके लिए "प्रेम का अर्थ सहानुभूति था।"*

रीतिकालीन एवं छायाकालीन प्रेम-चित्रण में उत्तर-दक्षिण ध्रु का अंतर है। रीतियुगीन कवि लौकिकता से कभी कुत्सित ए पार्थिव है। प्रेम के चितेरे छायावादी कवि भी हैं—और खूब किन्तु उनमें वासना का उग्र घोष नहीं। प्रसाद के प्रेम में सर्व आध्यात्मिकता है। उनके लिए लौकिक एवं अलौकिक प्रेम में क अन्तर नहीं। 'आँसू' को बहुत काल तक रहस्यवादी रचना क जानें का यही रहस्य है।

प्रसाद ने एक प्रेम-चित्र खींचा :

परिरंभ कुंभ की मदिरा,
निःश्वास मलय के झोंके।
मुख-चन्द्र-चाँदनी जल से,
मैं उठता था मुँह धोके।

* 'रोमेण्टिक-मूवमेंट इन इँगलिश पोइट्री' (आर्थर साइमं पृ॰ १७१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो धीरे से पन्त जी ने भी अपनी कूँची उठाली :

तुमने अधरों पर धरे अधर,
मैंने कोमल वपु भरा मोद।

प्रसाद के प्रेम में वासना की गंध नहीं होती, मोती, मोह का कालुष्य नहीं होता। इसका सीधा सादा कारण यह है कि उनका प्रेम, कायिक सौंदर्य एवं दृष्टिगत सौंदर्य के आधार पर कहीं टिका है। उनके प्रेम में आत्म समर्पण ही है, विनिमय में किसी वस्तु की लालसा नहीं। आनन्द तो प्रेम की प्यास बनी रहने में ही है, उसकी परितृप्ति में नहीं। यदि चातक की प्यास बुझ जाय तो स्वाँति की लघु बूँद की महत्ता ही क्या? यदि दीपक की लौ शीतल हो जाय तो पतिंगा के प्रेम की दुहाई ही क्या? यदि भक्त स्वयं भगवान बन जाय तो तपस्या का गौरव ही क्या? अतः एक क्षण यदि प्रसादजी कह उठते हैं।

मुझको न मिला रे कभी प्यार।

तो दूसरे ही क्षण वे आत्मोत्सर्ग की ध्वनि छेड़ निकलते हैं :

पागल रे! वह मिलता है कब?
उसको तो देते ही हैं सब।
आँसू के कन कन।

पन्त का प्रेमी कवि भी अपने रीतिकालीन पुरखे से सर्वथा भिन्न है। उसका ध्यान तो सर्वदा 'गुह्यतम छिद्र' में ही लगा रहता था, रात तो रात वह दिन में भी केलि करने घात लगाता रहता था[1] किंतु आज का प्रेम शिष्टता के परिधान से आवृत रहता है। पंत यदि प्रेम करते हैं तो क्या 'केलि' की 'घात' लगायें? नहीं। वे तो कुछ और ही करते हैं :

उसके इस सरलपने से,
मैंने था हृदय सजाया,

१—केलि कै राति अघाने नहीं दिन ही में लला पुनि घात लगाई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नित मधुर मधुर गीतों से,
उसका उर था उक साया।
कह उसे कल्पनाओं की,
कल कल्पलता, अपनाया,
बहु नवल भावनाओं का,
उसमें पराग था पाया।

परंपरागत नायिका संबंधी प्रेम-भावना के साथ साथ छायावादी कवियों में विशेषतः पन्त में शिशु के प्रति भी प्रेम भावना प्राप्त होती है। यहाँ हमें कविवर वर्डस वर्थ (W. Words Worth) के उस अमर ओड (Ode To Intimations of Immortality) की स्मृति हो आती है जिसमें उसने कहा था कि बालक के चारों ओर ही ईश्वर रहता है और जितने हम बड़े होते जाते हैं, ईश्वर हमसे दूर होता जाता है।[1] पंत की पंक्तियाँ निहारिए :

जरा है आदरणीय है;
सुखद यौवन? विलास उपवन रमणीय।
शैशव ही हैं एक स्नेह की वस्तु, सरल कमनीय।

वास्तव में यौवन के प्रेम में विलासिता है, शिशु-प्रेम ही निष्कलक एवं पवित्र है—और छायावाद में भी शुद्ध एवं 'कमनीय' शृंगार-वर्णन ही है, कामुक एवं पार्थिव नहीं श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में "छायावाद में रूप और अरूप (चेतना) का संयोजन है। शृंगार-काव्य में जबकि जड़ सौंदर्य हैं, छायावाद में चैतन्य स्वरूप। सगुण काव्य में भी यही चैतन्य स्वरूप है, किंतु उसका आलंबन है व्यक्ति—लोकोत्तर व्यक्ति—जब कि छायावाद का आलम्बन है प्रकृति—समस्त सृष्टि। छायावाद निसर्ग के चंद्रिकाधौत स्पर्श से शृंगार काव्य का शुक्ल पक्ष बन गया है।[2]

१—Heaven lies about us in our infancy.
२—'युग और साहित्य'—पृ० २२.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३—करुणा की धारा—छायावादी कवि की सौन्दर्य-प्रियता होने के कारण उसे (कवि को) प्रेम हुआ किंतु कुछ काल उपरांत ही उसे निश्चय हो गया कि प्रेम की गली करुणा के मुहल्ले में होकर जाती है। दूसरे देश के इतिहास के दर्द से बोझिल पन्ने ने भी कवि के हृदय में गहरी लकीर खींच दी। भारतीय वीरों ने उत्साह, शौर्य एवं स्फूर्ति प्रदर्शित करने में कोई भी कसर नहीं छोड़ी फिर भी उन्हें नैराश्य की धूल ही प्राप्त हो सकीं। उन्होंने विदेशी छत्र को फेंक कर उन्मुक्त स्वदेशी नभमें साँस लेने के लिए क्रांति की किन्तु साफल्य उनके ऊपर अट्टहास कर उठा। कवि भी तो उसी समाज का जीव है, फलतः उसके गीतों में करुणा अनवरत धारा बहने लगी। व्यक्तिगत परिस्थितियों ने भी उसे जीवन की क्षण भंगुरता का ही पाठ पढ़ाया उसका असफल प्रेम भी एक बारगी चीत्कार कर उठा। बहुत पूर्व गोपी भी जान गई थी कि प्रीति करने में अत्यन्त दुख होता है, इतना ही क्यों? वह तो ढिंढोरा पीटकर अन्य युवकों को सचेत करना चाहती थी।[1] छायावादी प्रसाद एवं पंत को लगभग ऐसा ही अनुभव हुआ। पंत को तो यहाँ तक हुआ कि वे सोच बैठे कि यदि कवि भी वियोगी ही रहा होगा, किसी असीम करुणा के कारण ही उसका कल-कण्ठ फूट पड़ा होगा:

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर नैनों से चुपचाप,
वही होगी कविता अनजान॥

पन्त का प्रेमी जब उनसे दूर भाग गया तो सिवाय आँसू बहाने के उनके पास था ही क्या? मीठी आग उनके हृदय में सुलगने लगी। अपनी दशा को उन्होंने इस प्रकार वाणी दी:

---

१. जो मैं ऐसा जानती, प्रीति किए दुख होइ।
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीति न करियो कोई॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधुर उर के मृदु भावों से,
तुम्हारा कर नित नव शृंगार,
पूजता हूँ मैं तुम्हें कुमारि,
मूँद दुहरे दृग द्वार।
अचल पलकों में मूर्ति सँवार,
पान करता हूँ रूप अपार;
पिघल पड़ते हैं प्राण,
उबल चलती है दृग जलधार।

फिर कवि की क्या दशा हो जाती है ?—

बालकों-सा ही तो मैं हाय !
याद कर रोता हूँ अनजान,
न जाने होकर भी असहाय,
पुनः किससे करता हूँ मान।

उसे विश्व की समस्त श्री भी भेंट की जाती है किंतु प्रेयसी की तुलना में तो वह कुछ भी नहीं है—किसी प्रकार वह अपने उमड़ते हृदय को थपकियाँ देता है :

मूँद पलकों में प्रिया के ध्यान को,
थाम ले अब हृदय ! इस आह्वान को,
त्रिभुवन की भी तो श्री भर सकती नहीं,
प्रेयसी के शून्य पावन स्थान को।

उधर प्रसाद जी की क्या दशा है ? आह !—उनके तो समस्त काव्य में करुणा की अन्तर्धार प्रवाहित उनके स्वयं के हृदय को देख लीजिए—

इस करुणा कलित हृदय में,
अब विकल रागिनी बजती।
इन हाहाकार स्वरों में,
वेदना असीम गरजती॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यही गरजती हुई वेदना उनके शब्द-शब्द में सुनाई पड़ती है :-

अभिलाषाओं की करवट,
फिर सुप्त व्यथा का जगना,
सुख का सपना हो जाना,
भींगी पलकों का लगना।

पन्त को अपने चारों ओर करुणा छितरी हुई दिखाई देती है :-

सिसकते हैं समुद्र से मन,
उमड़ते हैं नभ से लोचन;
विश्ववाणी ही है क्रंदन,
विश्व का काव्य अश्रुकन।
गगन के भी उर में घाव,
देखती ताराएँ भी राह;
बँधा विद्युत छवि में जलवाह,
चंद्र की चितवन में है चाह;
दिखाते जड़ भी तो अपनाव,
अनिल भी भरती ठण्डी आह।

दुख तो दुख कवि पन्त को अत्यंत सुख में भी पीड़ा दीखने लगी :

जग पीड़ित है अति दुख से,
जग पीड़ित रे अति सुख से,

महादेवी जी का तो कहना ही क्या ? उनका मन तो पूर्णतया करुणा—सरिता में अवगाहन कर चुका है। बौद्ध धर्म के 'सर्व क्षणिक' ने उन्हें 'नीर भरी दुख की बदली, बना दिया है, साधना-क्षेत्र में उनके लिए पीड़ा के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं :

तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा,
तुममें ढूँढ़ूँगी पीड़ा।

वे कुछ और भी कहती हैं :

मेरे हँसते अधर नहीं, जग की आँसू की लड़ियाँ देखो,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरे गीले पलक छूओ मत मुर्झाई कलियां देखो।
फिर भी उन्हें यह दशा बड़ी प्रिय है :

मेरे छोटे जीवन में,
देना न तृप्ति कण भर;
रहने दो प्यासीं आंखें,
भरती सरिता के सागर।

पंत को देश-दशा पर भी करुणा हो आती है :

कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन वह स्वर्ण का काल ?

उनकी हूक निकल पड़ती है :

कहाँ नश्वर जीवन में शांति ?
सृष्टि ही का तात्पर्य अशांति।
अस्थिर अस्तित्व जीवन-संग्राम,
स्वप्न है यहाँ विराम।

उधर प्रसाद का कवि भी सिसक उठता है :—

भुनती वसुधा, तपते नग,
दुखिया है सारा अग-जग
कण्टक मिलते हैं प्रति पग,
जलती सिकता का यह मग।

× × ×

जलता है यह जीवन पतंग।

बेचारे प्रसाद का जीवन जलता ही रहा :

मुझको न मिला रे कभी प्यार।

यही दशा उधर निराला की है—

दुख ही जीवन की कथा रही-
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।

इस प्रकार हमारे छायावादी कवियों ने न जाने कितने 'गीत-गान' गुनगुनाए। इस जलते जीवन से थोड़ी देर छुटकारा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने के लिए पंत प्रकृति के अंचल से मुँह ढँकने लगे, बच्चन ने ओठों से प्याला लगा लिया—

हो उठा जब भार जीवन, तब लगाया ओंठ प्याला।

और प्रसाद ?—वे कभी तो अपने 'मधुमय देश' के अतीत में दुबक गए और कभी अपने माँझी से कहने लगे :—

ले चल मुझे भुलावा देकर,
मेरे नविक ! धीरे धीरे।
जिस निर्जन में सागर लहरी,
अम्बर के कानों में गहरी—
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे।
जिस गंभीर मधुर छाया में—
विश्व चित्र-पट चल माया में,
विभुता विभु-सी पड़े दिखाई,
दुख-सुख वाली सत्य बनी रे।

पन्त के लिए भी सुख 'उस पार' चला गया—

यहाँ सुख सरसों, शोक सुमेरु,
अरे, जग है जग का कंकाल।
वृथा रे, ये अरण्य-चीत्कार,
शांति, सुख है उस पार।

इस प्रकार छायावाद में दुखवाद, हालावाद, पलायनवाद न जाने कितने वाद आ घुसे। महादेवी ने तभी तो कहा है—"छायावाद में न जाने कितने वाद हैं।"

४. प्रकृति प्रेम :—छायावाद काल में प्रकृति का इतना व्यापक वर्णन हुआ है कि कुछ व्यक्ति तो इस प्रकृति-प्रेम को ही छायावाद मान बैठे हैं किंतु वस्तुतः वह प्रकृति-वर्णन नहीं अपितु प्रकृति के अवलोकन से मन में जो छाया-चित्र उठे हैं उनका चित्रण है। इस काल में प्रकृति का आश्रय इसलिए और लिया गया कि शृंगार की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावनाओं को सीधे कहने में कवि को झिझक लगती थी अतः प्र के व्याज से उन्होंने अपनी भावनाओं को सहज ही व्यक्त दिया। इतना ही नहीं कठोर धरती की विभीषिका से त्राण पाने लिए भी कुंजों के सुरक्षित पवन में साँस लेकर थकान मिटाने उपकरण किया गया। कवि पंत को तो प्रकृति से इतना मोह गया कि उन्हें द्रुमों की मृदु छाया, तरल तरंगों, कोयल के अन बोल, मधुकर की वीणा, ऊषा-सस्मित किसलय दल छोड़ते ही न बने। ऋषि को डिगाने वाली मेनका भी तो उनके लिए प्रकृ इन उपादानों के समक्ष कुछ भी नहीं थी। उन्हें तो यह भी लगा पक्षियों ने उन्हीं का गान छीन लिया है और कहाँ से मिल स था उन्हें ?

विजन वन में सुकुमारि,
कहाँ पाया यह मेरा गान ?
मुझे लौटा दो विहग-कुमारि।
सजल मेरा सोने सा गान।

अब तक प्रकृति का सीधा-सादा वर्णन होता था—बारह लिख दिए, उद्दीपन चित्रण कर दिया। छायावादी कवि ने अपनी ही भावनाओं का प्रतिबिंब निहारा। उसे प्रकृति अपन जैसी ही लगी—हँसती, रोती, जगती, सोती हुई। महादेवी के में "छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस संबंध में डाल दिए जो प्राचीन काल से बिंब-प्रतिबिम्ब के रूप में चल रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुख में प्रकृति और सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रकृति घट आदि में भरे जल की एक रूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट महाप्राण बन गई अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण पृथ्वी के ओस बिंदुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है। आगे भी लिखती हैं—"मनुष्य को बाह्य सौंदर्य की ओर से ह उस प्रकृति के साथ अपने अविच्छिन्न संबंध की स्मृति दिला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रेय भी छायावाद को ही है। स्मृति दिलाई इसलिए कहती हूँ कि यह सम्बंध शाश्वत है, केवल हम लोग उसे भूल से, गए थे। हम में से प्राय: सभी बचपन में तितलियों के साथ दौड़े हैं, चिड़ियों के साथ गाते रहे हैं, कोई फूल खिला देखकर ऐसे प्रसन्न होते रहे हैं मानो वह हमारे हृदय में ही फूला हो। परंतु बड़े होने पर हमारा जीवन ऐसे कृत्रिम बंधनों में जकड़ जाता है कि उस ओर ध्यान देने की न तो इच्छा होती है न अवकाश मिलता है। वास्तव में प्रकृति में सांत्वना और आनंद देने की अपूर्व शक्ति होती है। तारों से जड़ी चाँदनी रात रोगी को नर्स से अधिक सुख दे सकती है, यदि वह उसकी भाषा समझने में समर्थ हो।" निराला को शेफालिका पूर्ण युवती लगी, अत: उसके व्यापारों का चित्रण कवि ने निम्न शब्दों में किया—

बंद कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से,
यौवन उभार ने,
पल्लव पर्यंक पर सोती शैफाली के,
मूक आह्वान भरे लालसी कपोलों के
व्याकुल विकास पर,
झरते हैं शिशिर से चुम्बन गगन के,

—परिमल

उधर 'जुही की कली' के मानव व्यापार देखिए—

विजन वन वल्लरी पर,
सोती थी सुहाग भरी""स्नेह स्वप्न मग्न,
अमल कोमल""तनु तरुणी""जुही की कली।

उसका प्रियतम मलयानिल न जाने किस देश में चला गया है। उसके विरह की व्यथा छायावादी कवि के अतिरिक्त और जान हो कौन सकता है! कली का प्रियतम पुन: आ जाता है और फिर—

हेर प्यारे को सेज पास,
नम्र मुखी हँसी""खिली।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसाद ने भी प्रलयोपरान्त ऊपर आती हुई धरती को रमणी माना—

सिंधु सेज पर धरा वधू अब,
तनिक संकुचित बैठी सी।
प्रलय-निशा की हलचल स्मृति में,
मानकिए सी, ऐंठी सी।

पंत की संध्या भी किस सुन्दरी से कम है?—

कहो तुम रूपसि कौन?
व्योग से उतर रही चुपचाप
छिपी निज छाया छवि में आप
सुनहला फैला केस कलाम
मधुर-मंथर मृदु मौन?
ग्रीव तिर्यक चम्पक-द्युति गात
नयन मुकुलित नत मुख जलजात
देह छबि छाया में दिन रात
कहाँ रहतीं तुम कौन?

छायावाद के यह प्रकृति-चित्रण सुने सुनाए नहीं, प्रत्यक्ष हुए हैं एवं पूर्ववर्ती कवियों की भाँति स्थूल एवं मांसल न हो कल्पनामय है।

जब प्रकृति चेतन है तो मानव के साथ अपनी संवेदना भी प्रकट करेगी। यही कारण है कि इन कवियों के लिए प्रकृति अन्तर सहचरी होकर आई है, उसके स्पंदन में हाथ बँटाती है। के दुख प्रकृति भी तो दुखी है—

क्यों छलक रहा दुख मेरा,
ऊषा के मृदु पलकों में?
क्यों उलझ रहा दुख मेरा,
संध्या की घन अलकों में?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और भी—

श्रमित तपित अवलोक पथिक को
रहती यों क्यों दीन मलीन ?
ऐ विटपी की व्याकुल प्रेयसि ।
विश्व वेदना में तल्लीन ।

जब प्रकृति से इतनी घनिष्टता बढ़ जाती है तो कवि उसे अत्यंत समीप से देखता है। जब कवि प्रतिदिन तारों को टहलते देखता है तो उसकी जिज्ञासा बढ़ जाती है—

महानील इस परम व्योम में,
अन्तरिक्ष में ज्योतिमनि,
ग्रह नक्षत्र और विद्युत्कण,
किसका करते से संधान ?

—कामायनी

उधर पंत को भी प्रकृति में किसी की सत्ता का मान हुआ जो कभी तो तड़ित के बहाने से उन्हें बुलाता है—

सघन मेघों का भीआकाश,
गरजता है जब तमसाकार,
दीर्घ भरता समीर निःस्वास,
प्रखर झरती जब पावस धार;
न जाने, तपक तड़ित में कौन,
मुझे इङ्गित करता तब मौन !

और कभी सौरभ के व्याज से—

देख वसुधा का यौवन-भार,
गूँज उठता है जब मधुमास,
विधुर उर के-से मृदु उद्गार,
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास;
न जाने सौरभ के मिस कौन,
संदेशा मुझे भेजता मौन !

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस भाँति छायावाद प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में—स्व
ज्योत्सना में, नक्षत्रों में, सघन मेघों में, तड़ित में, मधुर सुरभि
लहरों में, झींगुर की झनकार में, खद्योत में, कलिका में, तुमुल त
में, उड़ते खद्योतों में—अलौकिक शक्ति का आभास पाता है
उसे 'मौन-निमंत्रण' देती हुई प्रतीत होती है।

सारांश में, प्रसाद एवं पन्त के लिए प्रकृति "एक खुला हु
ग्रंथ" होकर आई। दोनों के लिए प्रकृति संवेदनशील होकर आ
दोनों ने ही प्रकृति को चारों ओर से देखा, दोनों ने ही प्रकृति
दोनों ही के लिए प्रकृति में एक अज्ञात सत्ता विद्यमान थी।

५. आत्माभिव्यंजन :—रीतियुगीन कवियों की रचनाएँ वैसे
बड़ी मीठी होती थीं किन्तु उनमें कवि का अपना व्यक्तित्व कुछ
नहीं होता था। नायक एवं नायिका की प्रत्येक अवस्था के वर्ण
में वही चली आती परम्परा का वर्णन था। कवि की अप
भावनाओं एवं आवेशों को बाहर आने का अवसर ही कहाँ था
उनकी रचनाओं के आलम्बन वही राजे, महाराजे, सलौने कृ
एवं गोरी राधा होते थे। सारांश यह है कि उनका व्यक्तित्व कु
भी नहीं रह गया था। छायावाद का तो रूढ़ियों को उखाड़ने
लिए ही नयनोन्मीलन हुआ था अतः सर्वप्रथम छायावादी कवि
ने अपने हृदय के आवेशों, भावनाओं एवं स्पंदनों को वाणी
कवि के लिए आत्मभिव्यंजना का मूल्य सर्वाधिक था। अतः उ
उन्मुक्त हो अपने हर्ष-विषाद का प्रकटीकरण किया। महादेवी
का तो समूचा काव्य ही आत्माभिव्यंजन है। बच्चन जी भी
जोर का प्रहार करते हैं :—

वृद्ध जग को क्यों अखरती है भला मेरी जवानी ?

छायावादी कवि बाहर न देखकर अपनी ओर ही निहा
लगा। यह इसी का प्रतिफल है कि इन कवियों की आशा-निरा
हर्ष विषाद, हास्य-अश्रु गीतों में ही फूट पड़े हैं। संभव है प्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काव्यों में स्वानभूति प्रक्षेपण (Projection) का कवि को अधिक अवकाश न मिलता। गीत के विषय में महादेवी वर्मा ने लिखा—"गीत यदि दूसरे का इतिहास न कह कर वैयक्तिक सुख-दुख ध्वनित कर सके तो उसकी मार्मिकता विस्मय की वस्तु बन जाती है—इसमें संदेह नहीं।" और इसमें भी संदेह नहीं कि इन कवियों के आत्माभिव्यंजक गीत बड़े ही मार्मिक बन पड़े हैं। प्रसाद जी का 'आँसू' ऐसी ही रचना है जिसमें उनका ही व्यक्तित्व आँसू बन बन कर एक छोर से दूसरे छोर तक बहा है। कवि ने इन पंक्तियों में अपने हृदय-गगन का ही वर्णन किया है :

झंझा झकोर गर्जन है,
बिजली है, नीरद-माला।
पाकर इस शून्य हृदय को,
सबने आ डेरा डाला॥

× × ×

रो रो कर सिसक सिसक कर,
कहता मैं करुण कहानी।
तुम सुमन नोचते सुनते,
करते जानी अनजानी॥

अपने प्रिय से कवि यूही पूँछ बैठता है:—

आँख बचाकर न किरकिरा कर दो इस जीवन का मेला।
कहाँ मिलोगे ? किसी विजन में न हो भीड़ का जब रेला॥
कहते हो 'कुछ दुःख नहीं, हाँ ठीक, हँसी से पूछो तुम।
प्रश्न करो टेढ़ी चितवन से, किस किस को किसने झेला॥

—झरना

निम्नलिखित पंक्तियों को कृपया रेखांकित कर लीजिए जिसमें आत्माभिव्यंजना उतनी ही सबल है जितनी पीछे कही गई बच्चन जी की पंक्ति में :

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूखे ही तुम रहो, बूँद रस के झरें।
हम-तुम जब हैं एक, लोग बकते फिरें॥

—कानन-कुसु

प्रसाद का अहंभावी कवि इन पंक्तियों में यह नहीं सहन क सकता कि उसका प्रिय लोकभय के कारण उनके समीप ही न आवे। जब वे दोनों राजी हैं तो काजी क्या कर सकेगा ?

हिन्दी के पूर्व युगों में यह बात कहाँ ?

पन्त ने भी अपनी सुलगती आग, शब्दों के रूप में खूब बिखे है। 'ग्रंथि', 'आँसू' 'उच्छ्वास'—यह कवि की अपनी ही अभि व्यंजनाएँ हैं। कवि को उस बालिका की रह रह याद आती जिसके साथ उसने अनेक व्यापार किए :—

उसके उस सरल पने से,
मैंने था हृदय सजाया,
नित मधुर मधुर गीतों से,
उस का उर था उकसाया।

कह उसे कल्पनाओं की,
कल कल्पलता अपनाया,
बहु नवल भावनाओं का,
उसमें पराग था पाया॥

मैं मंद हास सा उसके,
मृदु अधरों पर मंडराया,
औ, उसकी सुखद सुरभि से,
प्रतिदिन समीप खिंच आया।

—उच्छ्वा

अब तो उसकी स्मृति मात्र ही रह गई है, अब उसका सा त्कार कहाँ ? कवि विकल हो अश्रुधार बहाता रहता है—

विधुर उर के मृदु भावों से,
तुम्हारा कर नित नव शृंगार,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूजता हूँ मैं तुम्हें कुमारि।
मूँद दुहरे दृग द्वार।
अचल पलकों में मूर्ति संवार,
पान करता हूँ रूप अपार;
पिघल पड़ते हैं प्राण,
उबल चलती है दृग जलधार।
और फिर ? आह क्यों पूछते हो ?—
बालकों-सा ही तो मैं हाय !
याद कर रोता हूँ अनजान;
न जाने होकर भी असहाय,
पुनः किससे करता हूँ मान।

—आँसू

और भी—

मधुरिमा के मधुमास।
मेरा मधुकर का सा जीवन,
कठिन कर्म है कोमल है मन,
विपुल मृदुल सुमनों से सुरभित,
विकसित है विस्तृत जग-उपवन।
यही हैं मेरे तन, मन, प्राण,
यही हैं ध्यान, यही अभिमान,
धूल की ढेरी में अनजान,
छिपे हैं मेरे मधुमय गान।

छायावादी कवि की कविता का विषय उसका अपना हृदय रहा है। वाह्य प्रकृति यदि उसकी रचनाओं में आई भी है तो उसी प्रकार जिस प्रकार "मिट्टी से भरे पात्र में जैसे रज कण ..."अपने भीतर पानी के लिए जगह बना देते हैं—" अर्थात् कवि की निजी भावना एवं अनुभूति में सरबोर होकर। यह आत्माभिव्यंजना छायावाद के भाव-पक्ष का अत्यग विशिष्ट अंग रहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६. अभिव्यंजना पद्धति के नवीन प्रसाधान :—आचार्य शुक्ल ने छायावाद शब्द का 'प्रयोग' 'दो अर्थों में' समझने के लिए कहा है—एक तो रहस्यवाद के अर्थ में दूसरा "काव्य शैली या पद्धति-विशेष के व्यापक अर्थ में।"¹ प्रसाद जी भी छायावाद को काव्य की एक अभिव्यक्ति विशेष ही मानते हैं—"छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ हैं। अपने भीतर से मोती की तरह अन्तर स्पर्श करके भाव समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति छाया कान्तिमय होती है।" इस प्रकार प्रसाद जी छायावादी शैली के ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीक विधान आदि परमावश्यक गुण मानते हैं। इस भाँति छायावाद में भाव एवं विचारों के प्रति तो विद्रोह हुआ ही उनकी अभिव्यंजना-प्रणाली में भी नवीन क्रांति आ गई। छोटी से छोटी बात सी बड़ी सी बड़ी वक्रता के साथ कही गई। प्रसाद एवं पंत अँगरेजी की काव्य-शालाओं की ओर काफी देर झाँकते रहे अतः वे उसकी लाक्षणिकता पर अपने मन न्योछावर कर चुके थे अतः प्राचीन भाषा में उन्होंने लाक्षणिक एवं व्यंजनात्मक शक्ति का प्रचुर विकास किया। भारतीय अलंकारों को इन्होंने राष्ट्रपति तो बनाए रक्खा किंतु प्रधान मंत्रित्व आँग्ल अलंकारों—'विशेषण विपर्यय (Transferred Epithet), ध्वनि चित्रण (Onomatopoeia), मानवीकरण (Personification) आदि—को ही दि[या]। और कौन नहीं जानता कि राष्ट्र-नीति विषयक समस्त उत्तरदायित्व प्रधान मंत्री पर ही होता है राष्ट्रपति पर नहीं। दृष्टान्त को पोर्टफोलियो Portfolio, समासोक्ति एवं अन्योक्ति को सौंप दिया गया अलंकारों का वाच्य रूप में स्वीकार न करके लक्षणा रूप में लिया। कहीं कहीं तो बाहरी सादृश्य या साधर्म्य अत्यन्त अल्प न रहने पर भी अभ्यंतर प्रभाव साम्य लेकर ही अप्रस्तुतों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्निवेश कर दिया गया। ऐसे अप्रस्तुत अधिकतर उपलक्षण के रूप में या प्रतीकवत् (Symbolic) होते हैं। प्रतीकवाद (Symbolism) का प्रयोग सन् १८८५ में ही फ्रांसीसी रहस्यवादी कवि प्रचुर मात्रा में कर चुके थे जो प्रस्तुत के स्थान पर अप्रस्तुत को लेकर चलते थे। छायावाद में आकर भी शब्द प्रतीक (Symbol) के रूप में स्वीकार किए जाने लगे—प्रेमी के स्थान पर मधुप, प्रिय के स्थान पर कुसुम, वेदना के लिए गर्जन, शीतलता के लिए चाँदनी, माधुर्य के लिए उषा, शैशव के लिए प्रभाव, यौवन के लिए दोपहर, वृद्धावस्था के लिए साँझ, सुख की जगह बसन्त, दुख की जगह पतझर आदि। मानव के नयन से ढुलकने वाला अश्रु एवं किसलय दल पर पड़ी हुई ओस की बूँद अब एक ही बात समझी जाने लगी। प्रसाद एवं पन्त दोनों ने प्रतीकवाद को अपने काव्य में सँजोया। 'प्रसाद' का प्रतीक देखिए—

झंझा झकोर गर्जन है,
बिजली है, नीरदमाला।
पाकर इस शून्य हृदय को,
सबने आ डेरा डाला॥

इसमें झंझा, झकोर, गर्जन हृदय में उठने वाले तीव्र भाव क्षोभ, आकुलता एवं वेदना की तड़प के लिए हैं बिजली हृदय में रह रहकर उठने वाला दर्द एवं नीरदमाला गहन उदासी का प्रतीत हैं। सून्य (आकाश) हृदय के लिए प्रयुक्त हुआ है। 'आँसू' में ही अन्यत्र निहारिए—

पतझड़ था, झाड़ खड़े थे,
सूखे थे फुलवारी में।
किसलय दल कुसुम बिछाकर,
आए तुम इस क्यारी में॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसमें पतझड़–शुष्कता, उदासी, 'किसलय-दल कुसुम' सरसता, प्रसन्नता एवं क्यारी हृदय के प्रतीक वनकर आए हैं। 'कामयनी' की निम्न पंक्ति में कालिंदी कामना का प्रतीक है—

यौवन मधुवन की कालिन्दी।

'लहर' की निम्न पंक्ति भी द्रष्टव्य है—

काँटों ने भी पहना मोती।

यहाँ काँटा दुख पहुँचाने वाले कठोर व्यक्ति का प्रतीक एवं मोती पहनना अश्रु पूर्ण होने का।

पन्त में यह प्रतीकवादी पद्धति प्रसाद जी से अधिक है। उनके प्रसिद्ध कविता-संग्रह 'पल्लव' में लाक्षिणकता पग पग पर मिलती है। कतिपय उदाहरण देखिए—

चाँदनी का स्वभाव में वास।
विचारों में बच्चों की साँस॥

इसमें शीतलता का प्रतीक 'चांदनी' एवं भोलेपन का प्रतीक 'बच्चों की साँस' होकर आई है—

करुण भौंहों में था आकाश,
हास में शैशव का संसार।
तुम्हारी आँखों में कर वास,
प्रेम ने पाया था आकार॥

इन पंक्तियों में करुण भौंहों की उच्चता के ही कारण कवि ने उन्हें आकाश कह दिया। हास मधुर एवं भोला था अतः उसे 'शैशव का संसार' कहना उचित ही है। निम्न वस्तुओं में असुन्दर वस्तुओं के लिए 'धूल की ढेरी' तथा सुन्दर वस्तुओं के लिए 'मधुमय गान' प्रयुक्त हुआ है—

धूल की ढेरी में अनजान।
छिपे हैं मेरे मधुमय गान॥

लाक्षणिकता के लिए प्रसाद जी की निम्न पंक्तियाँ निहारिए—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस करुणा कलित हृदय में,
अब विकल रागिनी बजती।
इन हाहाकार स्वरों में,
वेदना असीम गरजती ॥

इसमें रागिनी शब्द लक्षक है। हृदय कोई सितार तो है नहीं जिसमें तार लगे हों एवं उँगलियाँ फिराने से ही जिसमें से कोई रागिनी निस्सरित हो उठे। इस प्रकार जब हम वाच्यार्थ लेते हैं तो निराश होना पड़ता है। फिर हमें इसका अर्थ शब्द की लक्षणा शक्ति से ही लेना पड़ता है। रागिनी स्वर का प्रतीक है इस प्रकार इसका अर्थ 'दुख का उत्पन्न होना' हुआ। इसी प्रकार 'गरजना' शब्द का लक्षणार्थ 'अत्यधिक होना' होगा। वेदना कोई वन्य पशु नहीं जो गरज सके—यह सोचकर हमें वाच्यार्थ से कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। पंत की दो पंक्तियाँ निहारिए :—

देख वसुधा का यौवन भार,
गूँज उठता है जब मधुमास।

यहाँ वाच्यार्थ मधुमास का–स्वयं मधुमास का–गूँजना होगा। किंतु यह अर्थ तो नितांत असंगत है अतः हमें लक्षणा का सहारा लेना होगा और तब अर्थ निकलेगा कि मधुमास में सर्वत्र प्रसन्नता ही प्रसन्नता छा जाती है और भौंरे गूँजने लगते हैं।

इसी प्रकार विशेषण विपर्यय एवं मानवीकरण में छायावादी कवियों ने विशेष रुचि दिखलाई। अन्य अध्याय में इनका विशद विवेचन किया गया है अतः यहाँ एक-एक उदाहरण ही पर्याप्त है। प्रथम प्रसाद जी का चिर परिचित ऊषा का नागरी रूप द्रष्टव्य है :—

बीती विभावरी जाग री !
अम्बर पनघट में डुबो रही,
ताराघट ऊषा नागरी ॥

ऊषा नागरी को, इन पंक्तियों में, कवि ने ताराघटों को डुबोते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिखाया है। पन्त की 'चाँदनी' का, जो आकाश से उतरी मानवीकरण देखिए :—

वह स्वर्ण भोर की ठठरी,
जग के ज्योतित आँगन पर,
तापसी विश्व की बाला,
पाने नव जीवन का वर।

पन्त की, विशेषण विपर्यय के लिए, पंक्तियाँ निहारिए :—

शाँत, स्निग्ध, ज्योत्स्ना, उज्ज्वल।
अपलक, अनन्त, नीरव, भूतल!

ज्योत्सना शान्त नहीं है अपितु यामिनी में धरती का प्रत्येक प्राणी शान्त है। इसी प्रकार भूतल नीरव नहीं है अपितु भूतल निवासी नीरव हैं।

भाषा एवं छन्दों में भी छायवाद में सर्वथा नवीन प्रयोग हुए प्राचीन कवि-मुल्लाओं की दौड़ केवल कवित्त-सवैयों की ही मसजिद तक थी। छायावादी कवि उस मसजिद से भी आगे—और बहुत आगे—गए। इन कवियों में निराला का स्थान सर्वोपरि है, इसके पश्चात् हमारे पंत जी हैं। यह स्वीकार करना पड़ता है कि स्वर छन्दों में जितनी मधुरिमा पंत में है उतनी प्रसाद जी में नहीं। प्रसाद जी ने कामायनी में प्राचीन छन्दों का भी प्रयोग किया—यथा तोटंक, लावनी, वीर, रोला आदि। भाषा के लिए भी छायावाद क्रांतिकाल था। ब्रज भाषा के स्थान पर कवि के अधरों से खड़ी बोली निकालने लगी थी पन्त ने तो प्रारंभ से ही ऐसा किया, प्रसाद जी बाद में सरके। और तो और आचार्य द्विवेदी जी द्वारा भरे जेठ की दोपहरी में पसीना बहाकर निर्मित किए गए व्याकरण के वज्रोपम महल से प्रसाद एवं पंत समय असमय पत्थर उखाड़-उखाड़ कर भागने लगे। गढ़ का सजग प्रहरी अपना आचार्य दण्ड उठाए ही रह गया—क्रोधित सा, झल्लाया सा, परास्त सा, अनमना सा!!

—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहाँ तक शब्द चयन का सम्बंध है एक एक शब्द काट छांट कर इतना सुघड़ बना दिया जाता था कि उन शब्दों द्वारा निर्मित इमारत अनायास ही ताजमहल बन जाती थी। द्विवेदी-युगीन भाषा के झोंपड़ों के मुहल्ले वालों को इन कवियों ने कितने ही संगमरमर के महल दिखाए।

इस प्रकार प्रसाद एवं पन्त छायावाद की नई मशाल लेकर हिन्दी-मार्ग पर चले। मार्ग के इधर-उधर खड़े प्राचीनता के अन्य भक्तों को छोकरों के यह कारनामे अच्छे नहीं लगे। प्राचीन-वादियों ने हमारे राजकुमारों को समझाया, डराया, धमकाया भी—हँसी तो उड़ाई ही, किंतु प्रसाद के प्रेम एवं निराला के पौरुष ने पन्त जैसे कोमल व्यक्ति को भी अपने मार्ग से च्युत होने से बहुत काल तक बचाए रक्खा। इतना ही नहीं, इनका यह साहस शास्त्रीय बन्दों को भी अपनी ओर खींच लाया। आगे चलकर यदि इन्होंने छायावादी राजमार्ग छोड़ा भी स्वेच्छा से, किसी के कहने से नहीं, किसी के डर से नहीं, और धमकाने से तो कभी नहीं।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५—प्रसाद-पन्त एवं रहस्यवाद

हिरण्ययेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नापावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥

—बृहदा० ५—१५

"अर्थात् हिरण्मय पात्र से (ज्योतिर्मय पात्र से) सत्य का ढँका हुआ है। हे पूषन्! मुझ सत्यधर्मा के लिए उस पर्दे को [हटा] दो। अपने मुख को अनाच्छादित कर दो। मैं तुम्हें [देखना] चाहता हूँ।"

रहस्य का अर्थ है आच्छादित-अव्यक्त-गुप्त, एवं [जिसमें] आच्छादित-अव्यक्त-गुप्त का उल्लेख हो वही है रहस्यवाद। तो मानव मात्र का हृदय भांति भांति की जिज्ञासाओं से [भरा] रहता है, वह जिस किसी वस्तु को ढँका हुआ देखता है [उसके] भीतर झांकने का प्रयास करता है, किंतु भारतीय मनीषी [का तो] कहना ही क्या? उसकी प्रकृति तो मानव जाति के धुंधले [काल से] ही अध्यात्मपरक रही है। वह चिरकाल से अपने चारों [ओर] जगत के विभिन्न व्यापारों को ठीक ठीक समय पर होते [देखता] आ रहा है और तभी से वह इस रहस्य को जानने का [प्रयास] करता आया है। बीच बीच में कभी कभी उसका ध्यान इस [ओर] से हटता आया है किन्तु फिर फिर वह अपने हृदय में उ[ठे] प्रश्नों के उत्तर खोजता आया है। अपनी समस्याओं का [उत्तर] उसने कभी तो बुद्धि से दिया कभी हृदय से। बुद्धि से उत्तर दे[ना] 'दर्शन' है एवं हृदय से काव्य में उत्तर देने का प्रयास करता [है रहस्य]वाद। हिन्दी में यह परम्परा कबीर जायसी से लेकर आ[ज तक] चलती आ रही है। किन्तु क्या कबीर का रहस्यवाद वही [है]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसाद का ? अथवा जायसी एवं पन्त के रहस्यवाद एक ही हैं ? उत्तर में कहना पड़ता है कि नहीं। हाँ, आधुनिक काव्यधारा प्राचीन परंपराओं से प्रभावित अवश्य हुई है किंतु उसने उन्हें (काव्य-परम्पराओं को) ज्यों का त्यों (In toto) स्वीकार करने में अपनी तौहीन समझी है अतः आज का काव्य के काव्य से प्रत्यक्षतः भिन्न है। आधुनिक रहस्यवाद पर—प्रसाद, पंत, निराला महादेवी आदि के रहस्यवाद पर प्राचीन कवियों के रहस्यवादी विचारों एवं दर्शन का प्रभाव तो पड़ा है किंतु फिर भी वर्तमान युगीन रहस्यवाद कबीर जायसी युगीन रहस्यवाद से सर्वथा भिन्न है। प्राचीन कवियों की प्रेम गाथाओं के रहस्यवाद की लगभग एक ही परिपाटी है—प्रेम की पीड़ा, जोगी होकर घर से निकलना, मुसीबतों को पार करके प्रेमी तक पहुँचना आदि। बस। किंतु आज यह परिपाटी नहीं। आज प्रसाद का रहस्यवाद निराला के रहस्यवाद से सर्वथा भिन्न है निराला की दूसरी ओर रहस्यवादी अनुभूति महादेवी की अनुभूति से सर्वथा पृथक है। इस पार्थक्य के कई कारण हैं !

वर्तमान युग की रहस्यवादी भावाभिव्यक्ति छायावाद के साथ साथ ही प्रारम्भ हो निकली है। अधिकतर छायावादी कवि ही वर्तमान काल में रहस्यवादी रहे हैं यही कारण है कि रहस्यवाद एवं छायावाद का अन्तर विवाद का विषय बन गया है। संभवतः यही कारण है कि आचार्य शुक्ल रहस्यवाद एवं छायावाद के बीच 'या' लगाकर दोनों का भेद मिटा देते थे। जिस प्रकार द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया स्वरूप छायावाद का आविर्भाव हुआ उसी प्रकार रहस्यवाद का—पर कबीर-जायसी युगीन रहस्यवाद किसी इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया नहीं था। द्विवेदी युगीन कवियों का काव्यालंबन उनका 'निकटवर्ती पार्थिव संसार' ही रह गया था। इसी 'पार्थिव संसार' का विद्रोह छायावाद रहस्यवाद है। वाह्य घटनाओं को व्यक्त करने वाली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाणी-वहिर्मुखी वाणी अव आंतरिक घटनाओं को व्यक्त
वाली वाणी हो गई फलतः कविगण अपने चारों ओर की व
को छोड़कर अपने आंतरिक सुख-दुख, आशा-निराशा, एवं स
असीम के गीत गाने लगे। अन्तर्मुख प्रवृत्ति की लाक्षणिक
व्यक्ति ही छायावाद कहलाने लगी जिसमें रहस्यवादी भाव
का प्राचुर्य हो चला। इसका यह अर्थ कदापि न लगाना च
कि आधुनिक युग के कवियों ने केवल भावावेश अथवा कल्पन
वाहन पर आरूढ़ होकर ही रहस्य-ग्रंथि को खोलना प्रारम्भ
प्रसाद जी ने भारतीय अद्वैतवाद बौद्ध दर्शन उपनिषदों का
अध्ययन किया। इसी प्रकार पंत ने पूर्व एवं पश्चिम के दा
ग्रंथों का प्रचुर मनन करके कतिपय नवीन मौलिक सिद्धांत
प्रतिपादन किया। महादेवी वर्मा ने भी बौद्ध दर्शन का खूब अ
किया फिर भी आधुनिक रहस्यवादी यह कवि कबीर की
नहीं कहे जा सकते। इन कवियों की प्रवृत्ति इतनी धार्मिक
ईश्वरोन्मुखी नहीं जो इन्हें कबीर की भांति रहस्यवादी
सकती। आधुनिक कवि सच पूछा जाय तो तफ़रीह में ही र
वादी वन गए। द्विवेदी युग में कवियों को घूमने का उन्मुक्त आ
नहीं था। वेचारे दो चार कोस ही चलते थे? तभी आचा
उन्हें खूँटे की ओर खींच लेते। हाँ छायावाद युग में इन
को अपनी कल्पना को दूर दूर तक भेजने के लिए काफी अ
मिल गया। डा० नगेन्द्र का कथन उचित ही है कि 'यह
रहस्यवाद प्रतिक्रिया का ही फल था और हमारे भावुक
किसी धार्मिक प्रेरणा से इस ओर इतने आकृष्ट नहीं हुए थे
कि अपनी भावुकता और कल्पना के व्यायाम के लिए विस्त
पा जाने के कारण। इसी कारण आधुनिक छायावाद को
आध्यात्मिक दृष्टि से देखना उचित न होगा क्योंकि एक तो
युग ही धार्मिकता का नहीं है दूसरे हमारे प्रतिनिधि कवि
जीवन भी अधिकांश में पश्चात्य प्रभावों से निर्मित है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काव्य वस्तु के रूप में उन्होंने इस काव्य जिज्ञासा और उससे सम्बन्ध रखने वाले भिन्न भिन्न प्रश्नों को अपनाया है। हाँ, अपनी विकसित चिंतन शक्ति और विस्तृत दार्शनिक अध्ययन के द्वारा उसको पचाने का सफल प्रयत्न अवश्य किया है।' इस प्रकार आधुनिक रहस्यवादियों को फस्र्ट हैण्ड नॉलिज नहीं है। कबीर की भांति कोई भी आधुनिक रहस्यवादी कवि ताल ठोंककर यह नहीं कह सकता—

कहा सुनी की है नहीं, देखा देखी बात।

जो कुछ रहस्यात्मकता है वह सब अध्ययन का ही प्रतिफल है अरविंद स्वामी दयानंद विवेकानंद एवं वर्डसवर्थ, शैले, कीट्स का ही प्रभाव है। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी हिंदी के आधुनिक काल के रहस्यवादियों को प्रभावित किया। जब उनकी गीतांजलि पर नोबिल प्राइज (Nobel prize) प्राप्त हुआ तो निसर्गत: हिंदी कवियों ने उनकी ओर निहारा। उनकी गीतांजलि में जिसमें उपनिषद् के ब्रह्म के प्रति भक्तिमय उद्‌गारों का प्राधान्य था, आधुनिक रहस्यवाद को ऋणी बना दिया। इन कवियों का अपने कक्ष में बैठे ही बैठे 'अज्ञात प्रियतम' से बिना मिले ही वियोग हो गया। अतः हँसी खुशी के साथ उसके विरह में आँसू बहा निकले। हम उनके जीवन पर भी दृष्टिपात करते हैं और देखते हैं कि वे सब हमारी भांति ही सांसारिक जीव हैं कबीर की भांति उन्होंने न तो कभी संसार को ही त्यागा है न कभी विरक्ति को गले लगाया है न कभी साधना से ही हाथ मिलाया है। वे उन भले मानुसों के समान हैं जो प्रगतिवादियों की सूची में नाम लिखाने के लिए 'पारकर कलम' (Parker pen से दीनों, दुखियों, मजदूरों एवं किसानों के स्वेद-बिंदुओं को गिना करते हैं।

आचार्य शुक्ल का रहस्यवाद पर धावा बोलने का प्रमुख कारण यही हैं कि यह लोग 'अज्ञात' और 'अव्यक्त' के लिए आठ-आठ आँसू बहाते हैं। इन मानो में उनकी दृष्टि सदैव भौतिकवादी रही

Ganesh Vani Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है अर्थात् उनके अनुसार काव्य का सम्बन्ध सदैव व्यक्त एवं गो जगत से हो सकता है—अव्यक्त एवं अगोचर से नहीं। "हृदय अव्यक्त और अगोचर से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। प्रे अभिलाषा, जो कुछ भी प्रकट किया जायगा वह गोचर और व्यक्त के प्रति होगा। प्रतिबिम्बवाद, कल्पनावाद आदि वादों का सहा लेकर इन भावों को अव्यक्त और अगोचर के प्रति कहना अ काल्पनिक रूप-विधान को ब्रह्म या पारमार्थिक सत्ता की अनुभू बताना, काव्य क्षेत्र में एक अनावश्यक आडम्बर खड़ा करना है इसी को जरा और साफ करते हुए वे आगे कहते हैं—' उपासना ज होगी तव 'व्यक्त' और 'सगुण' की ही होगी; 'अव्यक्त' और 'निर्गु की नहीं। 'ईश्वर' शब्द ही सगुण और विशेष का द्योतक है, निर्गु और निर्विशेष का नहीं।" रहस्य भावना को तो आचार्य शु ठीक मानते हैं किन्तु जहाँ रहस्यवाद की वात उठती है वहीं उसे साम्प्रदायिक कह निकलते हैं—"भारतीय दृष्टि के अनु अज्ञात और अव्यक्त के प्रति केवल जिज्ञासा ही हो सकती है अ लाष या लालसा नहीं।"[1] आगे चलकर शुक्ल जी 'जिज्ञासा' 'लालसा' का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—"जिज्ञासा के जानने की इच्छा है। उसका ज्ञेय वस्तु के प्रति राग, द्वेष, घृणा इत्यादि से कोई लगाव नहीं होता। उसका सम्बन्ध शुद्ध के साथ होता है। इसके विपरीत लालसा या अभिलाष रीति का एक अंग है! अव्यक्त ब्रह्म की जिज्ञासा और व्यक्त सगुण वर या भावना के सान्निध्य का अभिलाष, भारतीय पद्धति अव्यक्त, अभौतिक और अज्ञात का अभिलाष—यह बिल्कुल वि कल्पना है और मजहबी रुकावटों के कारण पैगम्बरी मत म वाले देशों में की गई है।"[2] इस प्रकार रहस्यवाद को शुक्ल विशुद्ध अभारतीय मानते हैं। प्रसाद आदि ने इस का उद्गम उ षदों में बताया तो शुक्ल जी उसका भी उत्तर देते हुए लिखते है

१—काव्य में रहस्यवाद पृ. ४७।
२—वही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संहिताओं और उपनिषदों को कभी कभी किसी ने काव्य नहीं कहा। अब सीधा सवाल यह रह गया कि क्या बाल्मीक से लेकर पंडित राज जगन्नाथ तक कोई एक भी कवि ऐसा बताया जा सकता है जिसने अज्ञेय और अव्यक्त को अज्ञेय और अव्यक्त ही रखकर प्रियतम बनाया।"[1] शुक्ल जी को "हृतन्त्री की झंकार, नीरव संदेश, अभिसार, अनंत प्रतीक्षा, प्रियतम का दबे पाँव आना, आँख मिचौनी आदि "[2] वैसे ही कृत्रिम लगते थे जिस प्रकार दरबारी कवियों का नायिका भेद। किन्तु उन्हें रहस्यभावना, जैसा कि अभी लिखा जा चुका है, बड़ी, प्रिय थी—"स्वाभाविक रहस्य-भावना बड़ी रमणीय और मधुर भावना है, इसमें संदेह नहीं। रसभूमि में इसका एक विशेष स्थान हम स्वीकार करते हैं। उसे हम अनेक मधुर और रमणीय मनोवृत्तियों में एक मनोवृत्ति या अंतर्दशा (Mood) मानते हैं जिसका अनुभव ऊंचे कवि और अनुभूतियों के बीच कभी कभी प्रकरण प्राप्त होने पर किया करते हैं। पर किसी 'वाद' के साथ सम्बंध करके उसे हम काव्य का एक सिद्धांत मार्ग (Creed) स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं।"[3]

हाँ, तो हम पीछे छोड़ आए हैं कि आधुनिक कवियों का रहस्य वाद प्राचीन कवियों के रहस्यवाद से सर्वथा भिन्न है। इसे हम न तो सूफी रहस्यवाद ही कह सकते हैं और न अद्वैत रहस्यवाद। यद्यपि आधुनिक रहस्यवादी कवि वेदांत उपनिषद् एवं सूफी रहस्य-वाद से प्रभावित अवश्य हुआ किंतु व किसी विशेष दर्शन से बंधा हुआ नहीं है। उसने अपनी मनोवृत्ति के अनुकूल विभिन्न दार्शनिक सिद्धांतों को अपनाया है। इसी कारण वर्तमान युगीन रहस्यवाद भावानुभूति प्रधान हो गया है जिसमें संवेदनीयता का प्राचुर्य है जबकि प्राचीन रहस्यवाद में चिंतन का प्राधान्य था। इतना ही

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. ७८६

२—वही पृ. ७८५

३—'काव्य में रहस्यवाद'—पृ० ११५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं आज के कवि ने तो कहीं कहीं अपनी धरती की वेदना व्यथाओं का वर्णन इस ढंग से किया है कि वे रहस्यवादी रचना जान पड़ती हैं—प्रसाद का आँसू मेरे इस कथन का साक्षी है।

जहाँ तक रहस्यवाद की परिभाषा का प्रश्न है—प्रत्येक वि ने अपनी अपनी मति के अनुसार की है। शुक्ल जी के शब्दों 'चिंतन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है वही भावना के क्षेत्र में रह वाद' अर्थात् चिंतन के ताप से निकली हुई जिस वस्तु को अद्वैतावाद कहते हैं हृदय रस से सिक्त उसी वस्तु को रहस्यवा

डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार 'रहस्यवाद जीवात्मा की अन्तर्हित प्रवृति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौ शक्ति से अपना शांत और निश्चल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अ नहीं रह जाता। इस परिभाषा का विश्लेषण इस प्रकार किया सकता है—

(१) रहस्यवाद जीवात्मा की अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है
(२) यह अन्तर्हित प्रवृति दिव्य और अलौकिक शक्ति से स जोड़ना चाहती है।
(३) यह संबंध शांत और निश्चित होना चाहिए।
(४) जीवात्मा एवं अलौकिक शक्ति का यह सम्बंध बढ़ता जाता है, और।
(५) अन्त में दोनों एक ही हो जाते हैं।[२]

२—मिलाइए—

'तू' 'तू' करता 'तू' गया-मुझ में रही न 'मैं'।

एवं

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहिं समाना, यह तथा कथौ गयानी
आदि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाबू जयशंकर प्रसाद रहस्यवाद के विषय में लिखते हैं :—
"अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौंदर्य द्वारा अहं (आत्मा) का इदम् (जगत्) से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न। हाँ, विरह भी युग की वेदना के अनुकूल मिलन का साधन बनकर इसमें सम्मिलित हुआ।" इसका विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है :—

(१) रहस्यवाद आत्मा का जगत से समन्वय करने का प्रयत्न है।

(२) यह प्रयत्न सुन्दर होना चाहिए।

(३) यह प्रयत्न तीन प्रकार से होता है—अनुभूति द्वारा, समरसता द्वारा एवं प्राकृतिक सौंदर्य द्वारा।

(४) प्रयत्न के इन तीन साधनों में चौथा साधन और भी जुड़ गया है और वह है—विरह-वेदना। विरह-वेदना सूफी काव्य की आत्मा है अतः प्रसाद के अनुसार रहस्यवाद को सूफी भावना के अनुसार ले सकते हैं।

बा० गुलाबराय के शब्दों में "रहस्यवाद उस भावप्रधान मनोदशा की शाब्दिक अभिव्यक्ति को कहते हैं जो व्यक्ति और विश्व के मूल में स्थित चरम-सत्ता के अव्यक्त या व्यक्त रूप के साथ रागात्मक संबंध स्थापित करने पर या करने की इच्छा से प्राप्त होती है।" इसका विश्लेषण इस प्रकार है[1]—

(१) रहस्यवाद एक विशेष मनोदशा या मनः स्थिति है।

(२) इस मनोदशा का सम्बंध चरम अव्यक्त सत्ता के अव्यक्त या व्यक्त रूप से है।

(३) वह चरम सत्ता नाम रूपात्मक विश्व और व्यक्ति का मूल स्रोत है अथवा दृश्यमान जगत (जड़-चेतन) के मूल में स्थित है।

(४) रहस्यवादी मनोदशा में रहस्यदर्शी उस चरम-सत्ता से

१—'रहस्यवाद और हिन्दी कविता'—पृ. १

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपना भावनात्मक सम्बन्ध स्थापित किया हुआ अनुभव करता है जैसे विवाहिता पत्नी पति के साथ अथवा वह संबंध स्थापित करने की अभिलाषा करता है जैसे अनुरक्ता स्त्री अपनी रीझ के किसी पुरुष के साथ।

(५) यह संबंध सदैव रागात्मक होता है, बौद्धिक नहीं इसमें मनुष्य की सदसद् विवेक बुद्धि क्रियाशील नहीं होती, अपि रागात्मक वृत्तियाँ चरम सत्ता के प्रति उद्बुद्ध होती हैं। रहस्यवादी मनोदशा इसीलिए भाव प्रधान कही गई है।

आचार्य नंददुलारे द्वारा कहे गए एक "अभ्युदयशील आलोचक" रहस्यवाद के विषय में इस प्रकार कहते हैं— "रहस्यवाद हृदय की वह दिव्य अनुभूति है जिसके भावावेश में प्राणी अपने ससीम और पार्थिव अस्तित्व से उस असीम और स्वर्गिक 'महा अस्तित्व' के साथ एकात्मकता का अनुभव करने लगता है।" इस प्रकार आप रहस्यवाद को 'हृदय की दिव्य अनुभूति' मानते हैं। वे आगे भी लिखते हैं—'ईश्वर तथा इस विश्व का सम्बन्ध, इस क्रियाशीलता का रहस्य, उसकी उत्पत्ति और उसका विकास आदि काल से मनुष्य को मुग्ध तथा क्षुब्ध किया है। इस क्षुब्धता में अशांति का आवेश है अतः शांति प्रिय नर-समाज इस चिर रहस्यमय गुत्था के सुलझाने का प्रयास कर रहा है, हमारी ससीम चेतना, असीम चेतना की निरंतर खोज करती रहती है। इसी खोज की मधुर अभिव्यक्ति काव्य में रहस्यवाद का रूप धारण करती है।'[1]

यह भारी-भरकम व्याख्या आचार्य शुक्ल की परिभाषा का विश्लेषण है। शायद विद्वान् आलोचक को शंका है कि इस परिभाषा का अर्थ समझ में नहीं आ सकेगा अतः वह आगे के वाक्य में और भी खुल जाते हैं—"इसको यों भी कहा जा सकता है।

१. 'छायावाद और रहस्यवाद' (द्वि० सं.) पृ० ५५—५७.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चिंतनमय दार्शनिक जगत का अद्वैतवाद भावनामय काव्य जगत का रहस्यवाद है।"

रहस्यवाद के नील गगन में विचरने वाली मीरा की ही भाँति अपने 'साँवरिया' की खोज में लगी हुई सुश्री महादेवी इस वाद की व्याख्या इस प्रकार करती हैं—"उसने (अर्थात् रहस्यवाद ने) पराविद्या की अपार्थिवता ली, वेदांत के अद्वैत की छायामात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको सांकेतिक दाम्पत्य भाव-सूत्र में बाँधकर एक निराले स्नेह-संबंध की सृष्टि कर डाली जो मनुष्य के हृदय को पूर्ण अवलंब दे सका, पार्थिक प्रेम से ऊपर उठा सका, हृदय को मस्तिष्कमय और मस्तिष्क को हृदयमय बना सका। इसमें संदेह नहीं कि इस वाद ने रूढ़ि बन बहुतों को भ्रम में डाल दिया है। परन्तु जिन इने गिने व्यक्तियों ने इसे वास्तव में समझा उन्हें इस नीहार-लोक में भी गंतव्य मार्ग दिखाई दे सका।"[1]

एक अन्य सज्जन कहते हैं—"ज्ञानगम्य और भावगम्य परिस्थितियों का समाहार स्थूल रूप से सत् और असत् में पूरा पूरा विभाजित किया जो सकता है। सत् का स्थायित्व ज्ञान की निश्चयात्मकता और भाव की दृढ़ता पर टिकता है परन्तु असत् के निरूपित करने के लिए ज्ञान अक्षम है। वह अधिक से अधिक संदेह का आँचल पकड़कर कुछ दूर तक बढ़ सकता है। केवल भावना ही निश्चय के साथ उसे सँभाल लेती है। असत् को सत् करने के इसी प्रयास को हम रहस्यवाद कह सकते हैं।"

श्री सीताराम जी चतुर्वेदी छायावाद एवं रहस्यवाद का अंतर करते हुए कहते हैं—"रहस्यवाद और छायावाद दोनों में सबसे बड़ा अन्तर यही है कि रहस्यवाद में साधक या ज्ञाता किसी तत्व की स्वयं खोज करके उस तत्व के संबंध में अपने अनुभव का बखान करता है किंतु छायावाद में न तो साधना होती है (और)

१. 'सांध्यगीत' की भूमिका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न अनुभव होता है वरन साधक के अनुभव की छाया
शैली पर उसी प्रकार की काल्पनिक काव्योत्मक अभिव्यक्ति
जाती है।"[१२३] इस परिभाषा से यह ध्वनि निकलती है कि रह
वाद 'अनुभव' की वस्तु है एवं छायावाद 'अभिव्यक्ति' की। दू
शब्दों में रहस्यवाद का सौंदर्य भावपक्ष में है उसका कलाप
कैसा ही हो एवं छायावाद सौंदर्य उसके कलापक्ष में है, भा
पक्ष विशेष महत्त्व नहीं। किसी सीमा तक यह बात सत्य
ठहरती है। और तो और आचार्य शुक्ल छायावाद को एक शै
मात्र समझते थे जिसमें लाक्षणिकता, वक्रता, ध्वन्यात्मकता आ
हों। छायावादी कवि, जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है, श
को खोज खोज कर लाते थे जिससे उनकी अभिव्यक्ति एवं
युगीन अभिव्यक्ति के बीच मोटी सी लकीर खिंच जाती थी।
देखकर एकबार तो महादेवी वर्मा को भी कुछ-कुछ इस प्र
कहना पड़ा था—'इस भावहीन शब्द-सौंदर्य में क्या रक्खा है'
सारांश यह है कि छायावादी कवि अभिव्यक्ति में अपना सम
कौशल उँड़ेल देता था।

अब रहा रहस्यवाद जिसमें कवि उपरोक्त परिभाषा के
सार "साधक या ज्ञाता किसी तत्व की स्वयं खोज करके उस त
के संबंध में अपने अनुभव बखान करता है।" स्पष्ट है कि इ
उस तत्त्व, उस "दिव्य अलौकिक शक्ति" के विषय में कहा जाता
जिसके लिए साधक अपना जीवन ही समर्पित कर देता है
रहस्यवादी जब उस अलौकिक शक्ति का साक्षात्कार करता है
उसकी दशा अत्यन्त विलक्षण हो जाती है, वह कहे तो कहे
कैसे ?—गूँगे के गुड़ की भाँति वह भीतर उसका आनंद
रहता है। उसकी स्थिति पूर्णानन्द की होती है—

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति।

—छांदोग्यपनिषद्

१—समीक्षा शास्त्र।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतीय दर्शनों के अनुसार ही नहीं, क़ुरान के अनुसार भी अल्लाह अनन्त सौंदर्यशाली है।[१] फिर उस 'अनश्वर' सौंदर्य का नश्वर स्वर' में वर्णन कैसे किया जा सकता है?[२] कबीर कह उठे :—

कहन सुनन की है नहीं, आँखिन देखी बात!

उन्होंने और भी कहा—

एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तौ गारि।
है जैसा तैसा रहा, कहै कबीर विचारि।

वास्तव में रहस्यानुभूति का तत्व इतना व्यक्तिगत है कि संसार की व्यावहारिक भाषा में उसकी अभिव्यक्ति असंभव है। बेचारे कबीर आंखों देखी बात कैसे कहते? फिर भी आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक पद्धति की उँगली पकड़ी गई, उस "महामिलन" की मनोदशा को व्यक्त करने के लिए 'सैना-बैना' का उपयोग किया गया—वह अभिव्यक्ति निश्चय ही कठिन हुई। सूफी-साहित्य भवन तो प्रतीकों की ही ईंटों से बना है। श्री चन्द्रबली पाण्डे के शब्दों में "प्रतीक ही सूफी साहित्य के राजा हैं। उनकी अनुमति के बिना सूफियों के क्षेत्र में पदार्पण करना एक सामान्य अपराध है। प्रतीकों के महत्व को समझ लेने पर तसव्वुफ एक सरल चीज हो जाती है।"[३] यही कारण है कि प्रतीकों का सहारा लेकर कबीर ने जो उलट बाँसियाँ लिखीं वे इतनी क्लिष्ट हो गईं। हाँ, प्रतीकों को समझ लेने पर कबीर-साहित्य भी 'एक सरल चीज हो जाती है।' प्रसाद जी ने आत्म-विस्मृति के

१—'Allah is infinite beauty.'—The Glorius Quran S. 57—4.

२—'नश्वर स्वर में कैसे गाऊँ; आज अनश्वर गीत?'
—'रामकुमार वर्मा'।

३—'तसव्वुफ अथवा सूफीमत'—पृ० ६७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षणों में जो आँसू बहाए वे रहस्मय हो गए। इस प्रकार आध्यात्मिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति यदि कठिन हुई तो कोई अचरज नहीं। किंतु इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि जो अभिव्यक्ति कठिन हो उसी में रहस्यवाद मान लिया जाय। इस प्रकार तो न जाने कितना काव्य रहस्यवादी आँगन में दावत खाता मिलेगा। कुछ ऐसे से कवि जान बूझकर अपनी बात इस कठिन ढंग से कहते हैं कि पाठक को ऐसा लग निकलता है कि यह कवि की रहस्यमयी ... है, ऐसों के प्रति ही तो आचार्य शुक्ल ने डाँट कर लिखा था "जिस तथ्य का हमें ज्ञान नहीं जिसकी अनुभूति से वास्तव में कभी हमारे हृदय में स्पंदन नहीं हुआ उसकी व्यंजना का आडम्बर रच कर दूसरों का समय नष्ट करने का हमें कोई अधिकार नहीं" निर्मोछिए छोंकरों को उस विराट के विषय में लिखते देख शुक्ल जी को क्रोध आना उचित ही है। इन कवियों की रचना में वह गुण कहाँ जिसे महाकवि मिल्टन (J. Milton) ने अनुभूति की सचाई (Sincerity) (उसी को) मौलाना हाली ने असलियत[1] एवं डा० रामविलास शर्मा ने "ईमानदारी" बताया है। उनमें कल्पना मात्र है जिसके सहारे वे बेसिर पैर की बातें मारते हैं। संभवतः ऐसे ही झूठे और अ-ईमानदार कवियों को देखकर आचार्य शुक्ल समूचे रहस्यवाद के बाईं ओर चले गए थे। एक शब्द में रहस्यवाद में अनुभूति की सच्चाई परमावश्यक है, चाहे उसकी अभिव्यक्ति 'अटपटी बानी' ही में क्यों न हो?

उस विराट की रहस्यात्मका समझने के लिए भिन्न भिन्न साधन हैं। उन्हीं के अनुसार रहस्यवाद के प्रकार मान लिए हैं। मुख्यतः रहस्यवाद निम्न कक्षाओं में बाँटा जा सकता है :—

(१) दार्शनिक रहस्यवाद :—इस कोटि में कबीर, दादू, निराला, प्रसाद आदि आते हैं। दार्शनिक रहस्यवादी दर्शन एवं कवि...

१. 'मुकद्दमा शैर-ओ-शायरी' (तृ० संस्करण) पृ० ६६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग होता है अर्थात् दर्शन के सूखे तर्कों को वह हृदयस्थ रस में निमग्न करके ही कागज पर उतरने देता है। दूसरे इसमें आश्चर्यमयी जिज्ञासा एवं अभिलाषामयी भावुकता अधिक रहती है। हमारे प्रसाद एवं पंत में जिज्ञासा वृत्ति अत्यधिक है।

(२) *उपासना सम्बंधी रहस्यवाद*—इस प्रकार के रहस्यवाद में जितना वल सान्निध्य-सुख पर दिया जाता है उतना अद्वैत पर नहीं। सूर एवं तुलसी इस श्रेणी में आते हैं। आचार्य शुक्ल तुलसी में कोई रहस्यवाद नहीं मानते फिर व्यक्त ईश्वर (अवतार) पूर्ण ज्ञेय नहीं होता। एक बार तो वे भी कह ही उठते हैं :

केशव कहि न जाइ का कहिए ?

कृष्ण भक्तों में यह रहस्य-भावना सखी-भावना और दाम्पत्य-भावना का रूप धारण कर लेती है।

(३ *प्रेम और सौंदर्य सम्बंधी रहस्यवाद*—इस कोटि में कबीर, जायसी एवं मीरा आते हैं। कबीर का तो कहना ही क्या :

नयनन की करि कोठरी, पुतरी पलंग बिछाय।
पलकन की चिर डारि कें, पिय को लीन्ह बिठाय॥

प्रसाद के गीतों में भी प्रणय का इतना रहस्यात्मक तत्व है कि उनमें से बहुत से इस कक्षा में बिठाए जा सकते हैं।

(४) *प्रकृति सम्बंधी रहस्यवाद*—इस प्रकार के रहस्यवाद में प्रकृति के माध्यम से 'महतोमहायान' की अनुभूति की जाती है। वस्तुतः छायावाद ही कुछ दूर चलकर इस प्रकार के रहस्यवाद में परिणित हो जाता है फिर भी बा० गुलाबराय के अनुसार छाया-वाद एवं प्रकृति संबंधी रहस्यवाद में अन्तर है। इस अन्तर को स्पष्ट करने के लिए वे लिखते हैं—"प्रकृति के सम्बंध में छायावाद और प्राकृतिक रहस्यवाद दोनों का ही आध्यात्मिक दृष्टिकोण है किन्तु दोनों में थोड़ा अन्तर है। छायावाद में व्यक्ति की भावना अधिक रहती है। वह उसको व्यक्ति का रूप देना चाहता है किंतु प्राकृतिक रहस्यवाद प्रकृति को समिष्ट रूप में लेकर उसके दर्पण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वारा अपने प्रियतम की छाया देखता है। प्राकृतिक रहस्यवाद प्रकृति के अवगुंठन में छिपी हुई सत्ता को झाँक कर देखना चाहता है। उसमें एक विशेष विराट भावना रहती है और छायावाद में सौंदर्य की भावना का प्राधान्य रहता है। दोनों में एक प्रकार की अन्तरदृष्टि रहती है। छायावाद में अन्तरदृष्टि रहते हुए भी आरोप की भावना रहती है। प्रकृति स्वयं ही व्यक्ति बनाई जाती है और उसमें मानवी भाव देखे से जाते हैं। प्राकृतिक रहस्यवाद में उसके द्वारा व्यक्त किए हुए परम पुरुष के दर्शन की चेष्टा रहती है। छायावाद में कल्पना का प्राधान्य होता है और प्राकृतिक रहस्यवाद में भावना और अनुभूति का।"[1]

सोपानों की दृष्टि से रहस्यवाद की कई स्थितियाँ होती हैं। कुमारी अण्डरहिल ने रहस्यवादी साधना के विकास की पाँच अवस्थाएँ मानी हैं :

१. जागरण अवस्था (State of Awakening of the self for Absolute)
२. परिष्करण अवस्था (State of Purification of the self)
३. आत्मप्रकाश की अवस्था (Illumination of the self)
४. विघ्नावस्था (The Dark Night of the Soul), एवं
५. मिलनावस्था (Unitive State).

डा० त्रिगुणायत ने इन्हीं अवस्थाओं की संख्या चौदह तक पहुँचादी है :—

१. सत्यानुभूति के लिए तीव्र औत्सुक्य,
२. गुरु की खोज, गुरु की प्राप्ति, गुरुपदेश,
३. आध्यात्मिक जागरण की अवस्था,
४. विवेक और वैराग्य की अवस्था,
५. आत्म परिष्कार की अवस्था,

१. सिद्धान्त और अध्ययन—(भाग २) पृ० १२५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६. भावातिरेक की अवस्था,
७. आंशिक अनुभूति की अवस्था,
८. विघ्न और उनके युद्ध की अवस्था,
९. विरहावस्था,
१०. आत्म-समर्पण की अवस्था,
११. मिलन की पूर्वावस्था,
१२. मिलन की अवस्था,
१३. पूर्ण आत्म समर्पण, एवं
१४. तादात्म्य की अवस्था।

कोई कोई निम्न 'निष्कर्षों' पर पहुँचे हैं :

१. प्रभु के प्रति जिज्ञासा, कुतूहल अथवा विस्मय की भावना।
२. प्रभु का महत्त्व और उसकी अनिर्वचनीयता।
३. प्रभु के दर्शन का प्रयत्न।
४. प्रभु के प्रति विभिन्न संबंधों की उद्भावना।
५, प्रभु से एकारिता।

रहस्यवाद की इन समस्त अवस्थाओं को स्थूल रूप से तीन अवस्थाओं में विभक्त किया जा सकता है :

१. ईश्वर के प्रति जिज्ञासा एवं लालसा की अवस्था।
२. वियोग (विघ्न) की अवस्था। एवं,
३. मिलन की अवस्था।

१. *ईश्वर के प्रति जिज्ञासा एवं लालसा*—मनुष्य स्वभाव से जिज्ञासा है। सच पूछा जाय तो नवीन वस्तुओं के जानने की यह जिज्ञासा ही मनुष्यों को इतर जीवों से ऊँचा बैठाती है। आज के भौतिकवादी जगत में दिन प्रतिदिन नव-नवीन आविष्कारों का कारण यह लालसा वृत्ति ही है। उपनिषदों में इस प्रकार की—भौतिक-जिज्ञासा को अपरा विद्या माना गया है, नहीं नहीं अविद्या तक कहा गया है। सही अर्थों में सूक्ष्म तत्वों की ओर जिज्ञासा ही विद्या है। सीधी भाषा में जीवन की उत्पत्ति, उसका प्रवाह, जगत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के व्यापार आदि के विषय में मनन करना ही रहस्यवाद का सोपान है। आत्मा-परमात्मा संबंधी वाद विवाद भारत में न कब से चले आ रहे हैं। यदि ईश्वर के विषय में किसी की भी जिज्ञासा नहीं रह जाय तो अध्यात्म-दर्शन वहीं का वहीं जाय।

प्रारंभ में ही जब मनुष्य ने देखा कि सूर्य इतना दीप्तिमान पवन न जाने कहाँ चला जा रहा है बिना कहे, बिना उसके मन में कौतूहल जाग उठा, प्रश्न कर बैठा वह—

क्व प्रेप्सन दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः क्व प्रेप्सन पवते मातरि
मत प्रेप्स्यन्ती रभियन्न्यावृतः स्कंभं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव

अथर्व वेद

यह सूर्य किसकी अभिलाषा में दीप्तिमान है ? यह पवन पहुँचने की इच्छा से निरंतर कहता है ? यह सब जहाँ को इच्छा से जा रहे हैं उस आश्रय को बताओ, वह कौनसा है ? उसने और भी जिज्ञासा प्रदर्शित की :

क्व प्रेप्सन्ती युवती विरूपे अहोराते द्रवतः संविदाने।
यत्र प्रेप्स्यन्तीरभियन्त्यायः स्कंम्भत ब्रूहि कतमःस्विद

अथर्व०

अर्थात् विपरीत रूप वाले, गौर और श्याम दिन-रात पहुँचने की अभिलाषा करके जा रहे हैं। यह सरिताएँ जहाँ की अभिलाषा से चली जा रही हैं उस परम आश्रय को वह कौन है ?

हमारे प्रसाद एवं पंत में जिज्ञासावृत्ति खूब प्राप्त होती कामायनी के मनु अथर्व वेद के पुरुष की ही भाँति 'सोम, चंचल पवमान, आदि को निहारकर आकण्ठ आश्चर्य में निमग्न हो जाते हैं। उनकी जिज्ञासा कविवर प्रसाद ने शब्दों में व्यक्त की है :

विश्व देव, सविता या पूषा,
सोम, मरुत, चंचल पवमान।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वरुण आदि सब घूम रहे हैं,
किसके शासन में अम्लान ?

× × ×

महानील इस परम व्योम में,
अंतरिक्ष में ज्योतिर्मान।
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्कण,
किसका करते थे संधान।
छिप जाते हैं और निकलते,
आकर्षण में खिंचे हुए,
तृण वीरुध लहलहे हो रहे,
किसके रस में सिंचे हुए।
सिर नीचा कर किसकी सत्ता,
सब करते स्वीकार यहाँ,
सदा मौन हो प्रवचन करते,
जिसका, वह अस्तित्व कहाँ ?

अमरों का पतन सोच सोच कर मनु की दशा अत्यन्त शोचनीय हो रही है। उनका मन विकलता की चोट से घबराया हुआ है। अनायास उनके हृदय में ब्रह्म-जिज्ञासा वृत्ति का उदय होता है। उन्हें लगता है जैसे सागर भी उसी के विषय में कह रहा है जिसके विषय में उनके स्वयं के हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न हुई है। उन्हें निश्चय हो जाता है कि कोई परम तत्व है अवश्य किंतु वह कैसा है—यह वे कैसे बता सकते हैं—

हे अनंत रमणीय ! कौन तुम,
यह मैं कैसे कह सकता।
कैसे हो ? क्या हो ! इसका तो,
भार विचार न सह सकता ॥
हे विराट ! हे विश्वदेव ! तुम,
कुछ हो ऐसा होता भान।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंद गँभीर धीर स्वर संयुत,
यही कर रहा सागर गान॥

महादेवी वर्मा कभी तो अपने अन्तरवासी के विषय में प्र
करती हैं :

कौन तुम मेरे हृदय में ?
कौन मेरी कसक में नित मधुरता भरता अलक्षित!
कौन प्यासे लोचनों में घुमड़ घिर झरता अपरिचित!

तो कभी अन्यान्य विस्मय एवं कुतूहलकारी स्वरूपों को वि
कर प्रश्न कर बैठती हैं :—

शून्य नभ में उमड़ जब दुख भार सी,
नैश तम में सघन छा जाती घटा।
बिखर जाती जुगनुओं की पाँति भी,
जब सुनहले आँसुओं के तार सी।
तब चमक जो लोचनों को मूँदता,
तड़ित की मुस्कान में वह कौन है ?

पन्त को और भी अधिक जिज्ञासा है कि यह समस्त चर
अचर किसके बल पर हैं :

मैं चिर उत्कण्ठातुर,
जगती के अखिल चराचर,
यौं मौन-मुग्ध किसके बल,

पन्त को विश्व के कण कण में एक अव्यक्त शक्ति का
होता है—

एक ही तो असीम उल्लास,
विश्व में पाता विविधाभास,
तरल जलनिधि में हरित विलास,
शान्त अम्बर में नील विकास।
वही उर उर में प्रेमोच्छ्वास,
काव्य में रस, कुसुमों में वास।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संभवतः यही शक्ति है, यही लाल की लाली है, जो पंत को पथ सुझाती है किंतु कवि मनु की भाति यह नहीं कह सकता कि वह क्या है—हां, मनु की भाँति 'कुछ हो ऐसा होता भान' तो कह सकता है—

न जाने कौन अहे द्युतिमान,
जान मुझको अबोध अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूँक देते छिद्रों में गान—
अहे सुख दुख के सहचर कौन
नहीं कह सकता तुम हो मौन ?

अज्ञात शक्ति को पंतजी जगज्जननी माँ मानकर कई रचनाएँ की हैं। 'वीणा' की कुछ पंक्तियाँ लीजिए—

जब मैं थी अज्ञात प्रभात
माँ! तब मैं तेरी इच्छा थी
तेरे मानस की जलजात!
अब तेरी छाया सुखमय
अंधकार में नीरवता बन
म. उपजाती है विस्मय।

'मौन निमंत्रण' अत्यन्त ही उत्कृष्ट कोटि का रहस्यात्मक गीत है जिसमें जिज्ञासा पूर्ण न जाने कितनी पंक्तियाँ भरी पड़ी है। कवि को लगता है जैसे कोई लहरों से उसे बुला रहा है। वह उचित ही प्रश्न कर बैठता है।

क्षुब्ध जल-शिखरों के जब बात
सिंधु में मथकर फेनाकार
बुलबुलों का व्याकुल संसार
बना, बिथुरा देती अज्ञात;
उठा तब लहरों से कर कौन
न जाने मुझे बुलाता मौन!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब समस्त संसार शांति से स्वप्नों के संसार में विचरता
उस समय कवि को न जाने कौन 'निमंत्रण' देता है :—

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु सा-नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान;
न जाने नक्षत्रों से कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन।

इस प्रकार पन्त को प्रकृति के विभिन्न दृश्यों से अव्यक्त संकेत प्राप्त होते हैं जिसके विषय में उनकी जिज्ञासा ह अनिवार्य है। यह "कौन' प्रश्न ही कवि (साधक) के हृदय "कुतूहल का राज" स्थापित कर देता है।

२ *वियोग (विघ्न) की अवस्था* :—प्रथम कवि को उस वि के जानने की 'जिज्ञासा' होती है और फिर उसे पाने की 'लाल जहाँ तक उस अव्यक्त की जिज्ञासा का प्रश्न है, शुक्ल रहस्यवादियों के साथ हैं किंतु ज्यों ही कवि उसके पाने 'लालसा' भी कर बैठते हैं वहीं शुक्लजी डण्डा उठा लेते अपने प्रसिद्ध निबंध 'काव्य में रहस्यवाद'१ में वे लिखते भारतीय दृष्टि के अनुसार अज्ञात और अव्यक्त के प्रति जिज्ञासा ही हो सकती है, अभिलाषा या लालसा नहीं।" बात को, इसी निबंध में, वे जरा और स्पष्ट करते हैं—"अ ब्रह्म की जिज्ञासा और व्यक्त, सगुण ईश्वर या भगवान के स क अभिलाषा—यही भारतीय पद्धति है।" जब कोई उस रमणीय" की प्राप्ति के लिए बढ़ेगा तो उसे राह में कठिनाइ सामना तो करना ही पड़ेगा. 'क्षुरस्य धारा' पर चलना ही माया, इन्द्रियाँ, 'चंचलो हि मन' उसे डगर पर बढ़ने ही नह फलतः कवि विरह के गीत गा उठता है। हिन्दी के विरह

१—पृ० ४७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहस्यवादी गीतों में मीरा का अत्यंत विशिष्ट स्थान है। आधुनिक युग में ऐसे गीत महादेवी ने गाए हैं। बौद्ध दर्शन के दुःखवाद का प्रभाव उन पर आपाद मस्तक है। उन्हें प्रारंभ से ही पीड़ा के साम्राज्य में विचरना पड़ा है।

इन ललचाई पलकों पर
पहरा था जब क्रीड़ा का
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का।

कामायनी की रचना शैव सामरस्यवाद से प्रभावित होकर की गई है। प्रसाद जी स्वयं शैव थे एवं जीवन में सदैव आनंदित रहे। आनंदवाद के अडिग उपासक होने के कारण वे दुःखवादी नहीं हैं अतः उनके रहस्यवादी गीतों में दुःखवाद का स्वर नहीं सुनाई पड़ता। जहाँ तक पन्तजी का प्रश्न है वे किसी एक दर्शन विशेष से प्रभावित नहीं हैं। वे प्राकृतिक रहस्यवादी की ही श्रेणी में आते हैं अतः उनका अधिकतर रहस्यवाद जिज्ञासा-वृत्ति तक ही सीमित है। जहाँ कहीं विरह है उसका आलंबन लौकिक है अलौकिक नहीं। दार्शनिक रहस्यवादी तो प्रसादजी भी हैं किन्तु इनके रहस्यत्मक गीतों में इतना प्रणय तत्व है कि उन्हें आसानी से प्रेम-रहस्यावादी माना जा सकता है। विरहोक्तियाँ प्राचीन रहस्यवादी कवियों में राशि राशि मिलती हैं। कबीर की केवल दो पंक्तियाँ देखिए—

कै विरहिन कूँ मीच दै, कै आपा दिखलाइ।
आठ पहर का दाझड़ा, मो पै सह्या न जाइ॥

विरहावस्था की पराकाष्ठा है इन पंक्तियों में।

निराला की विरह-पंक्तियाँ निहारिये—

प्राण धन की स्मरण करते।
नयन झरते, नयन झरते॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसादजी के 'आँसू' में लौकिक विरह को इस प्रकार व्य[illegible]
दी है कि वह आध्यात्मिक विरह-गीत ज्ञात होता है।

शीतल समीर आता है,
कर पावन परस तुम्हारा।
मैं सिहर उठा करता हूँ,
बरसा आँसू की धारा॥

वैसे कवि उसके वियोग में दुखी अवश्य है और उससे [illegible]
चाहती भी है :—

मेरी आँखों की पुतली में,
तू बन कर प्राण समाजा रे।
जिसके कन कन में स्पंदन हो,
मन में मलयानिल चंदन हो,
करुणा का नव स्पंदन हो,
वह जीवन-गीत सुना-जा रे!

पन्त में, महादेवी की भाँति, आह, अश्रु, उच्छ्वास बहु[illegible]
किन्तु उन पर आध्यात्मिक विरह का लेबिल नहीं लगाया [illegible]
सकता है। हाँ, माँ सम्बोधन से लिखी हुई पंक्तियाँ अ[illegible]
रहस्यवादी हैं। निम्न पंक्तियों में कवि की विकलता देखिए।

मा! वह दिन कब आएगा जब
मैं तेरी छवि देखूँगा?

२. *मिलन की अवस्था* :—प्रभु का साक्षात्कार न जाने कि[illegible]
कठिनाइयों के उपरान्त हो पाता है—यदि कभी हो भी पा[illegible]
तो। वह चरम तत्व इंद्रियों से परे है :—

न तत्र चक्षुर्गच्छति; न वाग्गच्छति न मनो।
(केन १-३)

बुद्धि बेचारी तो अपनी असमर्थता प्रारंभ से ही बता[illegible]
है। उपनिषदानुसार यह आत्मा (ईश्वर) न तो वेदा[illegible]
से उपलब्ध हो सकता है, न मेधा द्वारा और न (शास्त्रादि[illegible]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहुत श्रवण करने से। साधक जिस आत्मा का वरण करता है, प्रार्थना करता है, उसके द्वारा यह प्राप्त होता है। उसके प्रति आत्मा स्वस्वरूप की अभिव्यक्ति कर देता है—

नायमात्मा प्रवचेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
येमेवैष वृणुते तेन लभ्य
स्तरस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥
[मुण्डक ३–२–३]

उपनिषद् बार-बार कहते हैं कि प्रभु-मिलन उसी की कृपा पर अवलंबित है। तुलसी के शब्दों में इसी बात को हम इन शब्दों में कह सकते हैं।

जानहि सोइ जेहि देउनाई

प्रसादजी का 'प्रियतम' केशपाशांधकार में अपना मुँह छिपाकर चुपचाप उनसे आँख मिचौनी खेलता है—

निज अलकों के अंधकार में तुम कैसे छिप आओगे ?
इतना सजग कुतूहल ! ठहरो यह न कभी न पाओगे।
आह, चूम लूँ जिन चरणों को चाँप-चाँप कर उन्हें नहीं।
दुख दो इतना, अरे अरुणिमा ऊषा-सी वह उधर वही।

कवि समझता है कि संभवतः 'वह' यह नहीं चाहता कि साधक उसे अपने आप देख कर इतनी शीघ्र पहचान ले। वह तो चुपचाप पीछे से आकर उसकी आँख मूँदकर पूछना चाहता है[१]— 'बताओ मैं कौन हूँ ?'—

देख न लूँ, इतनी ही तो है इच्छा ? लो सिर झुका हुआ।
कोमल किरन उँगलियों से ढँक दोगे यह दृग खुला हुआ।
फिर कह दोगे पहचानो तो मैं हूँ कौन बताओ तो ?

१. शुक्लजी को "प्रियतम का दबे पाँव आना" ही तो अखरता था।

हि. सा. का इति. पृ. ७८५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किन्तु उन्हीं अधरों से पहले उनकी हँसी दबाओ तो।
सिहर भरे निज शिथिल मृदुल अंचल को अधरों से पकड़ो।
बेला बीत चली है चंचल बाहुलता से आ जकड़ो।

और फिर :—

शशि मुख पर घूँघट डाले,
अंचल में दीप छिपाए।
जीवन की गोधूली में,
कौतूहल से तुम आए।

यद्यपि इन पंक्तियों का आलंबन, जैसा कि अन्यत्र बताया गया है, इस धरती का ही कोई लाल है, फिर भी आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख है।

जब कवि का अपने अव्यक्त प्रियतम से मिलन हो जाता है फिर तो कहना ही क्या ? अध्यात्म संयोगजनित आनन्दोल्लास की निर्झरिणी फूट पड़ती है—

मिल गए प्रियतम हमारे मिल गए,
यह अलस जीवन सफल अब हो गया।

कवि इस महामिलन से इतना प्रसन्न हो उठता है कि उसे एक बार 'मिल गए' कहने से संतोष नहीं होता अतः वह दो बार कह उठता है—

मिल गए प्रियतम हमारे मिल गए।

जब ईश्वर से साक्षात्कार हो जाता है तो फिर दुख किस बात का ! परेशानी तो तभी तक है जब तक 'वह' दूर है। उसके दर्शन में तो "अनन्त कल्लोल भरा" हुआ है,[१] जनम जनम के क्लेश भस्म हो जाते हैं।

१—चाँदनी सदृश खुल जाय कहीं,
अवगुण्ठन आज संवरता-सा।
जिसमें अनंत कल्लोल भरा,
लहरों में मस्त बिचरता-सा॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशा पहानि :
क्षीणैः क्लेशैर्जन्म मृत्यु प्रहाणिः।
—श्वेताश्वतर १-११।

मोह और शोक तो खैर सताते ही नहीं—
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।
—ईशावास्य ७।

मृत्यु भय भी दूर हो जाता है—
तमेव ज्ञात्वा मृत्यु पाशांश्छिनत्ति।
—श्वेताश्वतर ४-१५।

एवं ऐसी शांति प्राप्त होती है जो दूसरों के लिए स्वप्न हैं :—
तेषां शान्तिः शाश्वती ने तरेषाम्।
—कंठ० २-२-१३।

वह परमानन्द उपलब्ध होता है कि वह 'छुरे की धार' पर चलने के समस्त कष्टों को भूल जाता है—
रसंह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।
—तैत्तिरीय ७-१।

और अंत में साधक अमर हो जाता है :—
ईशं तं ज्ञात्वामृता भवन्ति। श्वेता० ३-७।

प्रसाद जी का भी जब 'प्रियतम' से साक्षात्कार होता है तो उनकी आत्मा भाव विभोर हो उठती है, उसे सर्वत्र आनन्द ही आनन्द दिखाई पड़ता है—

कौन कहता है जगत है दुःखमय
यह सरस संसार सुख का सिंधु है,
इस हमारे और प्रिय के मिलन से,
स्वर्ग आकर मेदिनी से मिल रहा,
कोकिलों का स्वर विपंची नाद भी
चंद्रिका, मल-यज पवन मकरंद भी
मधुप माधविका कुसुम के कुंज में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिल रहे सब साज मिलकर बज रहे
आज इस हृदयाब्धि में बस क्या कहूँ
तुंग तरंग कैसी उठ रही।

'लहर' में भी कवि ऐसा ही कह रहा है—

उठ उठ री लघु-लघु लोल लहर।
करुणा की नव अँगड़ाई-सी,
मलयानिल की परछाईं सी,
इस सूखे तट पर छिटक छिहर।

ईश्वर—स्पर्श से उसके सूखे हृदय में अनिर्वचनीय उमंग, शांति, उत्साह एवं आनन्द की लहर दौड़ निकलती है। अब प्रश्न यह है कि कवि इस आनंदोल्लास को व्यक्त किस प्रकार करे? जगती की भाषा उसका साथ भी तो नहीं देती, फिर भी वह येन-केन प्रकारेण स्वानुभूति अन्यान्य को बताने का प्रयास करता है—और यही कारण है कि सैना बैना द्वारा कही गई यह रहस्यवादी अभिव्यक्तियाँ बहुधा दुर्बोध होती हैं।

उधर 'कामायनी' के मनु को भी जब 'नटराज' के दर्शन होते हैं तो उनके भी आनन्द की सीमा नहीं रहती। अपने महाकाव्य में प्रसाद जी ने बड़े विस्तार के साथ इसका वर्णन किया है। कुछ पंक्तियाँ निहारिए—

उस शक्ति शरीरी का प्रकाश,
सब शाप पाप का कर विनाश—
नर्तन में निरत प्रकृति गल कर
उस कांति सिंधु में घुल मिल कर;
अपना स्वरूप धरती सुन्दर,
कमनीय बना था भीषण तर;
हीरक गिरि पर विद्युत विलास,
उल्लसित महाहिम धवल हास।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनु का 'विकल मन' इस दृश्य से शान्त हो जाता है, उन्हें अनहद नाद सुनाई पड़ निकलता है—

स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो,
इच्छा, क्रिया, ज्ञान मिल लय थे।
दिव्य अनाहत पर निनाद में।
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।

पन्त जी रहस्यवाद से अधिक छायावाद के कवि हैं। पूर्ण रहस्यवादी की भाँति वे परोक्षसत्ता के मिलन-सुख से वंचित रहे हैं। प्रकृति के रम्य चित्रों में उन्होंने अज्ञात के प्रति अपनी जिज्ञासा ही प्रकट की है, अतः उनकी रचनाओं में रहस्य भावना ही प्राप्त होती है। हाँ, ऐसा लगता है कि निम्न पंक्तियों में कवि को अपने प्रियतम 'मिले', किन्तु क्या यह सत्य है :—

मिले तुम राकापति में आज
पहन मेरे दृग-जल का हार
बना हूँ मैं चकोर इस बार
बहाता हूँ अविरल जल धार
नहीं फिर भी तो आती लाज..........
निठुर यह भी कैसा अभिमान।
याद है क्या न प्रात की बात।
खिले थे जब तुम बन कर फूल,
भ्रमर बन प्राण लगाने धूल
पास आया मैं चुपके शूल
चुभाए तुमने मेरे गात..........
निठुर यह भी कैसा अभिमान।

नहीं—कवि 'उन्हें' जान कर भी 'वह' नहीं बन पाया है। यही बात निम्न पंक्तियों से ध्वनित है—

हाँ सखि आओ, बाँह खोल हम,
लग कर गले जुड़ालें प्राण।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में,
हो जावें द्रुत अन्धनि ।

प्रिय-मिलन की उत्कण्ठा ही गोचर होती है—प्रिय-मिलन से उत्पन्न साधक-साध्य ऐक्य नहीं ।

हमने, इस प्रकार, देखा कि प्रसाद जी सच्चे अर्थों में रहस्यवादी हैं । उनका दार्शनिक अध्ययन अत्यन्त गम्भीर है । उनकी रहस्यवादी साधना पद्धति आनन्दोल्लास की साधना-पद्धति है । इसी आनन्दवाद के कारण उनके रहस्यवाद में आह-अश्रु उच्छ्वास नहीं । 'कामायनी' उनके दार्शनिक रहस्यवाद की सफल अभिव्यक्ति है । इसमें दर्शन एवं भावना का ऐसा मंजुल योग है जो अन्यत्र दुर्लभ है । उनका दार्शनिक रहस्यवाद सूखा नहीं हो पाया है ; उसमें भावात्मक एवं प्रेम रहस्यवाद की भी फुहारें हैं । पन्त जी, दूसरी ओर, किसी एक दर्शन विशेष में स्नात नहीं हैं, इतना ही नहीं डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में वे "दर्शन में सबसे कच्चे" १ हैं इसीलिए शुक्ल जी ने "पन्त की रहस्यभावना को स्वाभाविक कहा है, उसे साम्प्रदायिक वाद से प्रायः मुक्त बतलाया है ।" २

१—'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना'—पृ० १६०
२—वही—पृ० १६८

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६—प्रसाद-पंत एवं प्रगतिवाद

"ऐश्वर्य और सौंदर्य के छद्मवेश में छिपे हुए इतिहास को नग्न कर प्रगतिशील युग ने उसके राजनीति-शुष्क कलेवर का पोस्ट मार्टम शुरू कर दिया।"

—पं० शांतिप्रिय द्विवेदी, 'सामयिकी'
(द्वि० संस्करण) पृ० १८३।

वर्तमान शताब्दी के प्रभात से ही हिन्दी साहित्य में इतने मोड़ आए हैं कि उँगली वरबस ही दाँतों के नीचे चली जाती है। द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया स्वरूप छायावाद नामक नवीन शिशु ने नयनोन्मीलन किया, इसी के साथ रहस्यवाद हिन्दी प्रांगण में थिरकने लगा। इस युगल ने यौवन की रेखा पर क़दम रक्खा ही था कि हालावाद मुस्कराने लगा। यह भी बेचारा कैसे जीवित रहता, थोड़ी ही वय में यह भी पंचत्व को प्राप्त हो गया और हिन्दी रंग मंच पर यथार्थवाद, प्रगतिवाद, झण्डावाद, रोटीवाद, प्रयोगवाद आदि नए-नए चेहरे दिखाई पड़ने लगे।

प्रश्न यह है कि प्रगति का अर्थ क्या साहित्य में वही है जो जगत के कोश में स्वीकृत है ? संस्कृत के अनुसार प्र०+गम्+क्तिन 'प्रगति' होता है जिसका अर्थ ("पूर्ण या उत्कृष्ट रूप से किसी भाव को, किसी विचार को गतिमान करना है।"[१]) यदि इस परिभाषा को ज्यों का त्यों स्वीकार (for granted) कर लिया जाय तो दूसरा प्रश्न हमारे समक्ष स्वयमेव उठ खड़ा होता है, वह यह कि क्या इस प्रगतिवाद से पूर्व हिन्दी साहित्य में कोई 'भाव' अथवा

१—'प्रगतिवाद की रूप रेखा'—पृ० २४०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'विचार' गतिमान नहीं किया गया ? क्या जब से हिन्दी में इस वाद का उद्भव हुआ है उससे पूर्व हमारा समूचा साहित्य अप्रगतिशील था, स्थिर था, अतः निष्कृष्ठ था ? क्या सूर, तुलसी, विहारी प्रभृति ने किसी भी विचार को हमारी ओर नहीं धकेला ? संभव है—प्रगतिवादी इस तथ्य को न मानें, संभव है तुलसी को भी मार्क्सवादी चौखटे में कसें किंतु क्या कोई उनसे नहीं कह सकता कि मार्क्सवावा का सिद्धांत प्रत्येक देश एवं प्रत्येक काल के साहित्य पर एकसा तो लागू नहीं हो सकता ? इस द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अभाव में ही हम किसी की महानता के सामने प्रश्नवाचक चिह्न नहीं लगा सकते। इसके विपरीत मार्क्स की प्रशस्ति गाने वाले खोंमचा वालों को महान नहीं कह सकते। यदि मार्क्स के बन्दों ने किसी भाव को किसी ओर वढ़ाया है तो तुलसी ने भी, किंतु सबका एक ही दिशा में वढ़ना, तो प्रगति नहीं है। यदि कोई राही पूर्व को जाता है और कोई पश्चिम को तो आप यह तो नहीं कह सकते कि पूर्व वाला ही प्रगति कर रहा है अथवा पश्चिम वाला ही "पेड़ दूसरी तरह से बढ़ता है, नदी दूसरी तरह से" किंतु गत्यात्मकता तो दोनों ही में है।[1]

हाँ, तो जिस साहित्य में मार्क्सवादी प्रगति हो वही प्रगतिशील साहित्य है किंतु प्रेमचन्द ने तो एक स्थान पर लिखा है कि 'प्रगतिशील साहित्य'—यह शब्द ही ग़लत है क्योंकि श्रेष्ठ साहित्य सदा प्रगतिशील होता है। उन्होंने एक बार उस साहित्य का भी स्पष्टीकरण किया था जो 'साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं'—"जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौंदर्य-प्रेम न जागृत हो, जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे वह आज

१—'आलोचना' (अक्तूबर १९५३) पृ० १६८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारे लिए, बेकार है, वह साहित्य कहाने का अधिकारी नहीं।"[1] वे जरा और स्पष्ट होते हैं—"हमारे लिए कविता के वे भाव निरर्थक हैं जिनसे संसार की नश्वरता का आधिपत्य हमारे हृदय पर और दृढ़ हो जाय, जिनसे हमारे हृदयों में नैराश्य छा जाय" हमें उस कला की आवश्यकता है जिसमें कर्म का संदेश हो।"[2] अंत में तो वे बिल्कुल की साफ़ कह देते हैं—"जो दलित हैं, पीड़ित हैं, वंचित हैं—चाहे व्यक्ति हो चाहे समूह—उसकी हिमायत और वकालत करना उसका (अर्थात् कलाकार का) कर्तव्य है।"[3] प्रकट है कि प्रगतिवादी साहित्य हम उसी को कह सकते हैं, और कहते हैं, जिसमें दलितों, पीड़ितों एवं वंचितों की हिमायत और वकालत होती है और जो उस हिमायत द्वारा "समाज को आगे बढ़ाता है मनुष्य के विकास में सहायक होता है।"[4]

प्रगतिवाद वैसे तो छायावाद के बाद का ही अफ़साना है, (जिस प्रकार छायावाद द्विवेदी, युग के बाद की कहानी है) किंतु इसने छायावाद के यौवन में ही अपनी आँखें खोल दी थी (जिस प्रकार छायावाद मध्य द्विवेदी युग में सर उठा निकला था।) डा. नगेन्द्र के शब्दों में "प्रगतिवाद छायावाद की भस्म से, नहीं पैदा हुआ वह तो उसके छायावाद) के यौवन का गला घोंटकर ही उठ खड़ा हुआ है।"[5]

प्रगतिवाद ने जीवित छायावाद पर ही कफन डाल दिया। छायावाद की गीता 'कामायनी' और प्रगतिवाद की बाइबिल 'युगवाणी' का हिन्दी जगत ने लगभग साथ साथ ही पाठ किया।

१—प्रगतिशील लेखक संघ की पहली बैठक में सभापति पद से दिए गए भाषण से।
२—वही।
३—वही।
४—डा. रामविलास।
५—'विचार और अनुभूति'—पृ० ७०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छायावाद, जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, स्थूल के प्रति सूक्ष्म की प्रतिक्रिया थी। सूक्ष्म भी इतना बढ़ गया था कि कविता का जीवन से कोई संबंध ही नहीं रह गया था। प्रो० हडसन (Prof. Hudson) की काव्य-संबंधिनी व्याख्या कि "कविता जीवन से बनती है, जीवन की ही वस्तु है और जीवन के लिए ही जीवित रहती है"[१] व्यर्थ समझी जाने लगी। कवियों को अपने पैरों तले की धरती का भी बोध नहीं रहा। वे सात समंदर पार की ही सोचते रहे, आकाश-कुसुमों को तोड़ने की ही योजनाएँ बनाते रहें, प्रस्तुत की सदैव उपेक्षा करते रहे, फलतः कविता, 'सुधांशु' के शब्दों में, "हवाई जहाज"[२] बन गई। किंतु यह हवाई जहाज कब तक उड़ता रहता, कभी न कभी तो उसे पेट्रोल लेने उतरना ही पड़ता, यह 'स्काई लार्क' कब तक अन्तरिक्ष में ही पंख फड़फड़ाता रहता, कभी तो उसे अपने नीड़ की स्मृति कचोटती ही। अन्त में हिन्दी का यह हवाई जहाज, यह स्काई लार्क सन् १९३६ में पूर्णतया धरती पर उतर आया—कैसे नहीं उतरता—

पंछी कितना उड़े अकाश।
दाना है धरती के पास॥

और तभी उस पंछी ने अपने घर की सुधि ली, अपने होरी की सुधि ली, अपने समाज की सुधि ली। इसीलिए प्रगतिवाद का अर्थ "साहित्य का सामाजिक समाजीकरण"[३] भी किया गया। आकाश में उड़ने वालों को पंत ने फटकार बताई—

ताक रहे हो गगन ?
मृत्यु-नीलिमा-गहन गगन ?

× × × ×

१—"Poetry is made out of life, belongs to life, exists for life !"

२—'साहित्य में अभिव्यंजनवाद' में।

३—'हंस'—अप्रैल-मई १९४३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखो भू को !
जीव प्रसू को ।

ऐसे ही फटकारों ने "यथार्थ के नाम पर ऊँची उड़ानों को ज़मीन पर रेंगने के लिए विवश कर दिया ।"[1]

यह कहा जाता है कि प्रगतिवाद मार्क्सवाद का साहित्यिक अनुवाद है, उसी के पदचिह्नों का अन्धभक्त है। सीधे शब्दों में राजनीति में जिसे हम साम्यवाद (Communism) कहते हैं, वो ही साहित्य में प्रगतिवाद (Progressivissm)। स्पष्ट शब्दों में "प्रगतिवाद ने काव्य में राजनीति की स्थापना की।"[2] अतः अत्यंत संक्षेप में यदि यहाँ पर मार्क्सवाद के कतिपय सिद्धान्तों का विवेचन कर लिया जाय तो प्रगतिवाद समझने में अत्यंत सहायता मिलेगी।

मार्क्सवादी का अपना एक दर्शन है जिसे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) कहते हैं। इसके अनुसार विश्व में पदार्थ (Matter) ही सब कुछ है, चेतना (Consciousness) तो उसी की उपज है। मार्क्सवाद इसी भौतिकवाद (Materialism) का ही विशिष्ट रूप है: मार्क्स ने इतिहास की भौतिक व्याख्या की और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सदैव से विश्व में दो शिविर (Camps) रहे हैं—एक के पास उत्पादन के समस्त साधन रहे हैं और दूसरा वर्ग ऐसा रहा है जिसके पास सिवाय निर्धनता के कोई ऐसी वस्तु नहीं रही जिसे वह अपनी कह सके। यह सर्वहारा वर्ग (Proletariat) सदैव से प्रभुओं (Haves) के जुए के नीचे जुतता आया है। इसका अर्थ यह नहीं कि यह सर्वहारा वर्ग अपनी स्थिति पर खामोश रहा है—नहीं उसने सदैव उस जुए को उतार फेंकने का प्रयास किया है किंतु

१—नलिन-विलोचन शर्मा—'आलोचना' अङ्क ६, पृ. १४३।
२—प्रगतिशील लेखक-संघ की घोषणा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धनिक वर्ग उसे भाग्यवाद, ईश्वर, धर्म आदि की अफीम दे देकर शांत करता रहा है'। इसे ही मार्क्स (Kasl Marx ने वर्ग संघर्ष (Class struggle) की संज्ञा दी। यह वर्ग-संघर्ष धनी (Hoves) एवं गरीब (Haves-not) में चिर काल से चला आ रहा है :—

है परंपरा लग रही यहाँ,
ठहरा जिसमें जितना बल है।

साम्यवाद का आधार व्यक्ति और उसकी आवश्यकताएँ हैं। वह तो यह चाहता है कि प्रत्येक से उसकी शक्ति के अनुसार कार्य लेना चाहिए एवं उसकी आवश्यकतानुसार उसे वस्तुएँ देनी चाहिए।[2] इसका अर्थ यह है कि यदि किसी व्यक्ति को प्रतिदिन आधा सेर अन्न की आवश्यकता है और वह एक सेर अपने पास रखता है तो वह आधा सेर निश्चय ही दूसरे का भाग है। इसी आधा-आधा सेर से एक दिन उसके पास इतना संचय हो जाता है कि वह न जाने कितने व्यक्तियों का श्रम खरीद लेता है और स्वयं फली का डेढ़ टूँक किए बिना ही अपने अन्तरिक्ष में विलास देवी से आँख मिचौनी खेलता रहता है। वह नगरों में जा जाकर बड़े बड़े मिल खोल देता है जिनमें निर्धनों को मजबूरन अपने पेट में कुछ डालने के लिए काम खोजना पड़ता है। उद्योगपति कम से कम पैसे में अधिक से अधिक काम लेना चाहता है फलतः श्रमिकों की जीवन-यवनिका समय से पूर्व ही गिर जाती है—किंतु उस

१—एक मनुज संचित करता है,
अर्थ पाप के बल से।
और भोगता उसे दूसरा,
भाग्यवाद के छल से॥
—दिनकर

२—From each according to his capacity, to each according needs.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूँजीपति को क्या ? उसे तो अन्य युवक चन्द पैसों में ही प्राप्त हो जाते हैं। साम्यवाद चाहता है कि सब मजदूर मिलकर इन मुट्ठी भर जोकों के प्रति क्यों नहीं विद्रोह कर बैठते। अतः वह आह्वान करता है—"दुनिया के मजदूरों। एक हो जाओ।"[1] वह उन्हें ढाढ़स देता है। उनसे कहता है कि यदि वे हार गए तो उनकी गरीबी ही छिन पायगी और यदि जीत गए तो बस आनन्द ही आनन्द है। इस प्रकार वह क्रांति का पोषक है। इसी के अनुसार प्रगतिवाद भी साहित्य में क्रांतिकारी होकर आया—भाव पक्ष में भी और कला पक्ष में भी। सन् १९१७ में रूस में क्रांति हुई अतः प्रगतिवादी कवि रूस का शतमुख हो यशोगान करता है—अस्तु।

ऊपर की कुछ पंक्तियों में साम्यवाद की कतिपय विशेषताओं का केवल इसलिए दिग्दर्शन कराया गया है कि पाठक को प्रगतिवाद के अभिन्न पड़ोसी से भी कुछ परिचय हो जाय।

जैसा अभी कहा है (प्रगतिवाद का प्रमुख स्वर क्रांति का है, भ्रांति का नहीं—और शांति का तो बिलकुल नहीं। सर्वप्रथम क्रांति इन्होंने परम्परा से चली आई हुई सड़ी गली रूढ़ियों के प्रति की। उनकी अप्रकृत रूढ़ियों के प्रति तनिक भी तो आस्था नहीं थी। प्रसाद जी अतीत के अडिग भक्त थे, रूढ़ियों के अथक पुजारी थे फिर भी वे उससे सदैव के लिए नहीं बंध गए थे। उन्हें टैनिसन (Lord Tennyson) की उन अमर पंक्तियों में दृढ़ श्रद्धा थी जिनके अनुसार प्राचीन वस्तुओं के स्थान पर नवीन वस्तुएँ आ जाती हैं—और यह शुभ भी है अन्यथा 'शिवं' भी संसार का अशिव कर देता है।[2] प्रसाद जी ने मानो यही बात निम्न पंक्तियों में दुहराई है—

१—Workers of the world, unite !
२. Old order changeth, yielding place to new.
Lest good custom should corrupt the world. Lord Tennyson

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरातनता का यह निर्मोक,
सहन करती न प्रकृति पल एक।
नित्य नूतनता का आनंद,
किए हैं परिवर्तन में टेक॥

(कामायनी पृ० ५५)

कवि ने देखा कि जब प्रकृति तक पुरातनता की केंचुली उतार फेंकती है तो जगत की रूढ़ियों का निर्मोक भी क्यों बना रहने दिया जाय ? कविवर पंत को भी प्राचीनता के स्थान पर नवीनता की स्थापना वांछनीय है :—

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र,
हे स्रस्तध्वस्त हे शुष्क शीर्ण।
हिम-ताप-पीत मधुपात भीत,
तुम वीतराग, जड़, पुराचीन।

पुरातनता को कवि निर्जीव, जड़ एवं प्रगति का बाधक मानता है अतः वह कोकिल को अपनी वाणी से मधु बरसाने के स्थान पर पावक-कण बरसाने की प्रार्थना करता है :

गा, कोकिल, बरसा पावक कण।
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन,
ध्वंस भ्रंस जग के जड़ बंधन।
पावक पग धर आवे नूतन,
हो पल्लवित नवल मानवपन।

'नवीन' जी भी ऐसी 'तान' सुनना चाहते हैं जिससे 'जग में त्राहि त्राहि मच जाए :—

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ।
जिससे उथल-पुथल मच जाए।
एक हिलोर इधर से आए।
एक हिलोर उधर से आए।
प्राणों के लाले पड़ जाएँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्राहि त्राहि रव नभ में छाए।
नाश और सत्यानाशों का।
धुंआ धार जग में छा जाए।

ऐसा ही मोहनलाल महतो 'वियोगी' एवं भागती चरण वर्मा चाहते हैं। साम्यवादी की ही भाँति प्रगतिवादी ईश्वर और धर्म को ढोंग समझता है। जब सर्व हारावर्ग में क्रांति का अंकुर उत्पन्न होता है तभी पूंजीपति वर्ग उसे धर्म, भाग्य एवं ईश्वर की अफ़ीम देकर सुला देता है। साधु-महात्माओं को उनके समीप भेजकर यह संदेश कहला देता है कि यह तो पूर्व कर्मों का प्रतिफल है कि एक धनी है और दूसरा निर्धन. यह तो पूर्व जन्मों का फल है कि एक कुत्ते को दूध पिलाता है और दूसरा अपने शिशु को पानी। प्रगतिवादी कवि का हृदय हूक उठता है समाज का यह वैषम्य देखकर, वह ईश्वर और धर्म को क्यों माने ? कवि अंचल तो यहाँ तक कह देते हैं।

आज भी जन जन जिसे कर बद्ध होकर याद करते,
नाम ले जिनका गुनाहों के लिए फरियाद करते,
किंतु मैं उसका घृणा की धूल से सत्कार करता।

महाकवि प्रसाद भी घन्टों की ईश्वाराधना से एक क्षण दुखी व्यक्ति पर दया को अधिक फल प्रद बताते हैं :—

प्रार्थना और तपस्या क्यों,
पुजारी किसकी है यह भक्ति ?
डरा है तू निज पापों से,
इसी से करता निज अपमान।
दुखी पर करुणा क्षण भर हो,
प्रार्थना पहरों के बदले।
मुझे विश्वास है कि वह सत्य,
करेगा आकर तब सम्मान।

कविवर निराला भी उन धर्मावतारों की मजाक उड़ाते हैं जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानव के दैन्य पर तनिक भी ध्यान न देकर बन्दरों को पुए खिलाकर स्वर्ग-कक्ष का पासपोर्ट प्राप्त कर लेना समझ बैठते हैं :

झोली से पुए निकाल लिए,
बढ़ते कपियों के हाथ दिए।
देखा भी नहीं उधर फिर कर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर।❀

इतना ही नहीं अपनी प्रसिद्ध रचना 'अधिवास' में वे अपनी 'चरम स्थिति' तक को भाड़ में झोंक कर दुखी को गले लगाने आ जाते हैं—धर्म, स्वर्ग, ईश्वर उस समय उनके लिए कुछ भी नहीं :

कहाँ ?
मेरा अधिवास कहाँ ?
क्या कहा ? रुकती है गति जहाँ।
भला इस गति का शेष संभव है क्या।
करुण स्वर का जब तक मुझ में रहता है आवेश ?
मैंने मैं शैली अपनाई।
देखा दुखी एक निज भाई।
दुख की छाया पड़ी हृदय में मेरे।
झट उमड़ वेदना आई।
उसके निकट गया मैं धाय।
लगाया उसे गले से हाय।

निराला जी उस दीन को गले से लगा लेते हैं। इस प्रकार उनका अधिवास छूट जाता है किंतु उन्हें इसकी चिंता नहीं :—

छूटता है यद्यपि अधिवास,
किंतु फिर भी न मुझे कुछ त्रास॥

❀ चुगा चींटी और मछली भूमि जल में।
अर्थ की ध्रुव साधना कर धर्म-छल में।
वे अहिंसा, धर्म औ नय के पुजारी।
सोखते थे दीन की श्रम-शक्ति सारी।—'पार्वती' पृ० ४६६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ हमें बरबस स्वामी विवेकानंद का स्मरण हो आता है जिनके अनुसार "हमें आत्मज्ञान की इतनी आवश्यकता नहीं जितनी अद्वैत के काय रूप में लाने की। पहले रोटी पीछे धर्म। जबकि तुम्हारे देशवासी भूखों मर रहे थे तब तुम उन्हें धर्म खिला रहे थे। भूख की अग्नि को धर्म कभी नहीं शांत कर सकता।....मैं तुम्हें याद दिलाता हूँ, कि सबसे पहले तुम्हें अपने देश के असंख्य पतित भाइयों,का उद्धार करना होगा।"[1]

जहाँ तक पन्त जी का प्रश्न है के शोषितों के प्रति अपनी सहानुभूति तो प्रदर्शित करते हैं किंतु ईश्वर को पूर्णतया भूल नहीं पाते—

लगता अपूर्ण मानव जीवन,
मैं इच्छा से उन्मन उन्मन।
जग जीवन में उल्लास मुझे,
नव आशा, नव अभिलाष मुझे।
ईश्वर पर चिर विश्वास मुझे।

पंत उसी भगवान की रामनामी ओढ़े हैं जिन्होंने श्री मद्-भगवद् गीता के १०वें अध्याय के २१वें श्लोक से अपनी विशेषताऐं गिनाई हैं जिनके अनुसार वे ,देवों में इन्द्र' देवानामस्मि वासवः (१०-२२), 'धन के स्वामी कुबेर' (वित्तेशो यक्ष रक्षसाम् १०-२३) 'मनुष्यों में राजा' (नराणां च नराधिपम् १०-२७) 'शस्त्राधारियों में राम' (रामः शस्त्रभृताभहम् १०-३१), 'ऋतुओं में वसंत' (ऋतूनां कुसुमाकरः १०-३५), वृक्षों में पीपल (अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां) और न जाने क्या क्या हैं ! प्रगतिवादी ने यह पढ़ा, सोचा, समझा। कराह उठा वह ! वाह रे ईश्वर तू राजा तो है किन्तु झाड़ू लगाने वाला मिसरा नहीं ! तू पीपल तो है किन्तु क्या तुझे उस बबूल की चिन्ता नहीं ? तू कुबेर तो है किन्तु क्या तूने कभी उस पत्तल चाटने

१. वेदान्त धर्म।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाले के घावों को देखा है—नहीं देखा है तो फिर तेरा स्वागत कैसा ? तेरी प्रार्थना कैसी ? तेरी भक्ति क्यों ? मिसरा भी तो आदमी है, बबूल भी तो वृक्ष हैं—बस प्रगतिवादी की कलम की नौंक इन्हीं की ओर मुड़ गई—मुड़ ही गई। प्रगतिवादियों ने शोषकों के प्रति आक्रोश प्रकट करके ईश्वर को मन्दिर में चुपचाप बैठे रहने की कह कर (आज्ञा देकर !) शोषितों की हिमायत की और ठीक ही की ! शोषित बेचारों की दशा तो व्यर्थ पशु से भी बदतर हो गई। यदि पशु खराब भी हो तब भी उसे बेचने के लिए, पैसा वसूल करने के लिए उसका मालिक (Master) उसे और भी अधिक खिलाता पिलाता है किन्तु हाय रे मानव ! तेरी दशा तो पशु से भी गई बीती हो गई। उनका जीवन दैन्य की साकार मूर्ति बन गया। जीवन प्रभात से संध्या तक यूँ ही संदेश विहीन चला जाता। वह अपने-अपने कंधों पर अपना जीवन-भार उसी प्रकार ढोते रहते हैं जिस प्रकार गोदान के मिर्जा के शिकार को वह वनवासी। प्रगतिवादी कलाकार से यह वैषम्य नहीं देखा गया। वह समाज में साम्य लाने के लिए हुँकार उठा। सामंत वर्गीय समाज को यह अच्छा नहीं लगा। और तो और डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी तो उनसे इसी कारण रूठे हैं। वे कहते हैं कि प्रगतिवादियों के सिद्धान्त और उद्देश्य तो बहुत सुन्दर हैं किन्तु ये लोग कम्युनिस्ट पार्टी के साथ जुड़े हैं—यही जरा खटकता है।[१] किसी हद तक—किसी ही हद तक यह बात ठीक भी है क्योंकि

१—मिलाइए—"हमारे कतिपय प्रगतिशील विचारक प्रगतिवाद को वर्ग युद्ध की भावनाओं से सम्बद्ध साहित्य तक ही सीमित रखना चाहते हैं, उन्हें इस युग की अन्य सभी प्रकार की प्रगति की धाराएँ प्रतिक्रियावादी, पलायनवादी, सुधार-जागरणवादी तथा युग्म चेतना से पीड़ित दिखाई देती हैं। ये आलोचक अपने सांस्कृतिक विश्वासों में मार्क्सवादी ही नहीं अपने राजनीतिक विचारों में कम्युनिस्ट भी है।"—पंत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहुत से आलोचक "रूढ़िगत मार्क्सवादी तो कम्युनिस्ट पार्टी के दस्तावेज पर लिखने को (ही) कला कहते हैं।"[1] किन्तु कुछ 'रूढ़िगत' मार्क्सवादियों को चुन कर समूचे प्रगतिवाद के मुँह पर झाड़ू मारने की हिमाकत करना कहाँ तक उचित है? यदि गाँव को उजड़ता एवं कुरूप नगरों को बसता देख कर 'नवीन' कराह उठे तो इसमें 'खटकने' की कौन सी बात आ गई? इन नगरों में ही तो इन्सान झूँठी पत्तल चाटता है जिन्हें देख कर कवि दुनियाँ में आग लगाने की सोच बैठता है। ऐसे ही नगरों में तो मेहनत-कश मजदूर मर खिप जाते हैं। गाँव की समस्त श्री यहाँ के पूँजी-पतियों के ही तो पेट में चली जाती है। ऐसा ही तो चित्र भगवती बाबू ने अपनी 'भैंसागाड़ी' में खींचा है। कवि नरेन्द्र के शब्दों में "ऐसा लगता है कि जब गाँव की विभीषिका को सहन न कर सकने के कारण गऊ के जाए बैल मर-खिप गए तब भैंसे ही रह गए ग्राम-व्यवस्था के छकड़े को खींचने के लिए—"चरमर चरमर चूँ चरर-मरर, जा रही चली भैंसागाड़ी।" वह भैंसा गाड़ी अनाज ढोकर शहर की मण्डी को जाती है और आती है तो लाती है मुर्दनी का बोझ ढोकर।" प्रगतिवादी ने ऐसे ही बोझ ढोने वाले की व्यथा को वाणी दी—वस्तुतः प्रगतिवादी तो उस "जनता एवं व्यथा के चित्रकार हैं जो अपनी हृदय ज्वाला को, लाचार गरीबी और निस्सहाय वेदना को कभी कह नहीं सके हैं, जिनके आलो-ड़ित भाव आजीवन ओंठ पर ही आकर, मिट गए हैं, जिनकी निर्जीव निःश्वासें चिता की लपटों के साथ ही बाहर निकली हैं और जिनकी बेबस वेदना निराश आँखों के कोनों में ही सूख गई है।"[2] प्रसाद ने कहा।

१—डा० राँगेय राघव 'आलोचना' (अक्तूबर १९५२ पृ १६३) में।
२—'निबंधिनी' पृ० ४५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फिर उन निराश नयनों की.
जिनके आँसू सूखे हैं।
उस प्रलय दशा को देखा,
जो चिर वंचित भूखे हैं ॥

प्रसाद जी नहीं चाहते कि मानव अपने भाई का दैन्य देखकर मुँह फेर ले, अतः वे कह उठते हैं।

इतर प्राणियों की पीड़ा लख,
अपना मुँह मोड़ोगे ?

वे तो यह चाहते हैं कि—

दीन दुखियों को देख आतुर अधीर अति,
करुणा के साथ उनके भी कभी रोते चलो।

बस प्रगतिवादी एवं यथार्थवादी में यहीं विभाजक रेखा खिंच जाती है। यथार्थवादी यथार्थ चित्रण मात्र कर देता है—बस! प्रगतिवादी एक डग और आगे बढ़ता है और उस दीन के दैन्य को सहानुभूति के साथ ('बौद्धिक' ही सही ' दूर करने का प्रयत्न करता है।

इधर पंत ने भी दुखियों के बड़े यथार्थ चित्र खींचो। 'युगवाणी' एवं 'ग्राम्या' में आकाशी कवि ने धरती की नब्ज टटोली। अहं के लघु दायरे से जगत की ओर निहारना प्रारम्भ किया। यद्यपि एक बारगी वे छायावाद से नाता नहीं तोड़ सके फिर भी कम से कम ग्रामवासियों को वे "बौद्धिक सहानुभूति" तो दे ही सके। "कविता में सबसे पहले पंत ने छायावाद से नाता तोड़ा परन्तु नाता पुराना था, एक बारगी इतनी आसानी से टूट कैसे जाता? पंत जी से लोगों को शिकायत है कि वह पहले की ही तरह स्वप्न सौंदर्य पर कविता क्यों नहीं लिखते ? मुझे ऐसा लगता है कि वह स्वप्न सौंदर्य से काफी दूर चले जाना चाहते हैं परन्तु वह उन्हें अपनी ओर घसीट लाता है। फिर भी 'ग्राम्या' में उन्होंने एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न उस व्यक्ति का है जो स्वभाव से दुनियाँ की भीड़ भाड़ से दूर रहने वाला था। हिन्दी के अन्य कवि तो गाँव की धूल में ही पले हैं। उनके लिए नए ढंग की कविता एक स्वाभाविक वस्तु हो जाती है। पंत जी के भीतर अब भी एक संघर्ष है जो समाप्त नहीं हुआ।" १ कुछ भी हो—'बौद्धिक सहानुभूति' ही सही—पन्त जी ने कुछ चित्र बड़े जीते-जागते खींचे जिनमें उन्होंने दीनों के प्रति सहानुभूति उड़ेली। एक चित्र निहारिए :-

युग युग का वह भारवह, आकटि नत-मस्तक,
निखिल सभ्य संसार पीठ का उसके स्फोटक।
दग्ध मूढ़, जड़भूत, हठी, वृष बाँधव कर्षक,
ध्रुव ममत्व की मूर्ति, रूढ़ियों का चिर-रक्षक।
कर जर्जर ऋण-ग्रस्त, स्वल्प पैतृक स्मृति भू-धन,
निखिल दैन्य, दुर्भाग्य, दुरित, दुख का जो कारण।
वह कुबेर निधि उसे, स्वेद सिंचित जिसके कण,
हर्ष-शोक की स्मृति के बीते जहाँ वर्ष—क्षण।

इस बदलते हुए विश्व में 'रूढ़ियों का चिर रक्षक' किसान तो आज भी जैसा का तैसा ही है :—

विश्व विवर्तन शील अपरवर्तित वह निश्चय,
वही खेत, गृह द्वार, वही वृष, हँसिया औ हल।
—'युगवाणी'

'ग्राम्या' की भी कुछ पंक्तियाँ निहारिए—

अंधकार की गुहा सरीखी उन आँखों से डरता है मन,
ग्रस लेती दर्शक को वह दुर्जन दया की भूखी चितवन।

ग्रामों में जीवन रह ही कहाँ गया है :—

आता मौन प्रभात अकेला, संध्या भरी उदासी,
यहाँ घूमती दोपहरी में स्वप्नों की छाया सी।

निम्न पंक्तियों में तो बुड्ढे की तसवीर ज्यों की त्यों खिंची मिलती है।

१—रामविलास शर्मा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बैठ. टेक धरती पर माथा, वह सलाम करता है झुककर।
उस धरती से पाँव उठा लेने को जी करता है क्षण भर॥
काली नारकीय छाया वह छोड़ गया मेरे भीतर।

पत्नी को विना इलाज के ही जगत छोड़ते हुए देख कर कवि से नहीं रहा जाता। वह कह ही उठता है :—

विना दवा दर्पण के गृहिनी,
स्वरग चली, आँखें आती भर।

ग्राम की निरीहता की कुछ अन्य पंक्तियाँ भी निहारिए—

जहाँ दैन्य जर्जर असंख्य जन
पशु जघन्य क्षण करते यापन।
कीड़ों से रेंगते मनुज शिशु
जहाँ अकाल वृद्ध है यौवन॥

× × × ×

यह तो मानव लोक नहीं रे,
यह है नरक अपरिचित,
यह भारत का ग्राम, सभ्यता,
संस्कृति से निर्मंसित

× × × ×

मानव दुर्गति की गाथा से,
ओत प्रोत मर्मांतक।
सदियों के अत्याचारों की,
सूची यह रोमांचक।

कवि ने अब ग्रामवासियों को अपने काव्य का आलम्बन बनाया। रस-निष्पत्ति अब राम-कृष्ण से ही नहीं होरी से भी होने लगी। पन्त का कवि 'धूलि, सुरभि, मधुरस, हिमकण, छोड़ कर।

सिगरेट के खाली डिब्बे पन्नी चमकीली।
फीतों के टुकड़े, तस्वीरें नीली पीली॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को आज जीवन का अधिक सत्य मानने लगा। जिस कवि ने "द्रुमों की मृदु छाया" के समक्ष बाला की ओर निहारने से इनकार कर दिया था वह ही आज कह उठा—

कहाँ मनुज को अवसर देखे मधुर प्रकृति मुख ?

वास्तव में ग्रामों में यौवन आने से पूर्व ही वृद्धत्व अट्टहास कर निकलता है। इससे अधिक हमारे पंत कह ही क्या सकते हैं।

इन कीड़ों का भी मनुज बीज,
यह सोच हृदय आता पसीज।

कुछ-कुछ ऐसा ही 'अंचल' जी ने कहा है :—

वह नस्ल जिसे कहते मानव,
कीड़ों से आज गई बीती।
बुझ जाती तो आश्चर्य न था,
हैरत है पर कैसे जीती।

किंतु सबसे अधिक प्रगतिशील (या प्रगतिवादी ?) निराला जी रहे। उनके 'भिक्षुक' का चित्र तो हिन्दी-भवन में सदैव टँगा रहेगा :—

वह आता।
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिल कर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को, भूक मिटाने को।
मुँह फटी-पुरी झोली को फैलाता।

उन्होंने 'इलाहाबाद के पथ पर' पत्थर तोड़ती हुई मजदूरिन के गो मस्तक पर पसीने की बूंदों को गिना। इधर डा० रामानन्द तिवारी के भी नयन दुखियों को देखकर भर उठे :—

स्वर्ण रत्नों से विभूषित जगमगातीं,
अप्सराओं सी सुसज्जित गीत गातीं,
× × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब कि दीनों की दुखी कितनी विचारी,
चीण माताएँ वहन कर कार्य भारी,
निपट साधन हीन पशुओं तुल्य देती,
जन्म शिशु को चीथड़ों में ढाँप लेतीं।[1]

इन 'निपट साधन हीन पशुओं तुल्य' दैन्य की प्रतिमाओं को निहारकर किसका मन नहीं हूक उठेगा ? उनकी हृद्व्यथा कैसे मापी जा सकती है ? जूलियस सीज़र के घाव निहारकर उसके परम मित्र एण्टनी ने (Antony) कहा था, "यदि सीजर के प्रत्येक घाव में एक एक जीभ रख दी जाय तभी उसकी व्यथा जानी जा सकती है।"[2] आज के मानव के हृदय में सीज़र के घावों से भी अधिक घाव हैं।

इस प्रकार प्रगतिवादी कवियों ने दीन-दुखियों, शापित-तापित शोषितों, हाय के साकार रूपों के प्रति काफी सहानुभूति प्रदर्शित की। प्रसाद एवं पन्त से भी अपने युग की पुकार अनसुनी नहीं रह सकी। प्रसाद ने 'कामायनी' आदि में एवं पन्त ने 'युगवाणी' 'ग्राम्या' में दुखियों की काफी हिमायत की, 'बौद्धिक सहानुभूति' दिखाई। इस 'बौद्धिक सहानुभूति' पर प्रकाश डालते हुए डाक्टर शर्मा लिखते हैं—"पंत जी ने दर्शन और अर्थशास्त्र के अनेक सूत्रों को पद्यबद्ध किया है—और सदा उनके मूल रूप की रक्षा भी नहीं कर पाए हैं—लेकिन उनका असली रूप सौंदर्यवादी का है, उसे वह छोड़ नहीं पाए। सौंदर्यवादी का रूप सदा सुन्दर नहीं होता, वह व्यक्तिगत और कृत्रिमता के दायरे में बंद रहता है लेकिन पन्त जी जब कोशिश करके लोक-जीवन के नजदीक आते हैं तब भी मानों जुल्फें संभालते हुए, पतलून की क्रीज का ध्यान रखते हुए। प्रगतिशील विचार धारा से उनकी "बौद्धिक सहानुभूति" का यही रहस्यवाद है।"[1]

१—'पार्वती'
२—'जूलियस सीज़र' (३, २, २२७-८)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवियों ने—प्रगतिवादी कवियों ने—शोषितों के प्रति सहानुभूति ही प्रदर्शित नहीं कि अपितु शोषकों को भी पानी-पीकर कोसा। महाकवि प्रसाद ने 'कामायनी' में सारस्वत नगर के वर्णन में आज के बुद्धिवादी भौतिक युग की ही तसवीर खींची है। आज भौतिकवाद की उन्नति अपने शीर्ष-विंदु पर पहुँच चुकी है। पूंजीपति ने आज ऐसे यंत्रों का आविष्कार कर लिया है जिसके कारण उसे जन-साधारण की शक्ति की आवश्यकता नहीं—हाँ; यदि जन-साधारण चाहें तो उन भीमकाय मशीनों के अन्दर अपना सर दे सकते हैं। मजदूर के श्रम का मूल्य आज कुछ नहीं रह गया है। प्रकृति पर विजय प्राप्त करने से जो लाभ हुए हैं वे सब पूंजीपति की ही सेफ में चले गए हैं। मजदूर वर्ग एवं किसानों को लाभ के स्थान पर उलटी हानि पहुँची है, उनकी शक्ति जाती रही है एवं जीवन जर्जर हो गया है :

> प्रकृति शक्ति तुमने यंत्रों से सबकी छीनी।
> शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी॥

पूँजीपति नित-नूतन अस्त्र शस्त्रों का आविष्कार करता रहता है एवं 'स्वर्ण कलश शोभित भवनों" में तोंद पर हाथ फेरता रहता है। प्रेमचंद ने ऐसे मोटों को ही तो निहारकर कहा था कि सौ को पतला बना कर कहीं एक मोटा बन पाता है। आचार्य शुक्ल जैसे गंभीर महापुरुष का भी हृदय जीवन का यह वैषम्य देखकर ही तो हूक उठा था। उन्होंने एक ओर ऐसे मोटों का देखा जिन्हें गर्दन तक हिलाने के लिए अपनी समस्त शक्ति लगानी पड़ती थी, दूसरी ओर उन्होंने उन ठठरियों को देखा जो कंकालमात्र थीं। एक दुनियाँ में दो दुनियाँ देखकर ही तो उन्होंने कहा था—"मोटे आदमियों! यदि तुम जरा से पतले हो जाते तो न जाने कितनी ठठरियों पर माँस चढ़ जाता।" कविवर वर्ड्सवर्थ ने भी तो सिर धुन कर कहा था—इन्सान ने "इन्सान को क्या बना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिया ?"[१] और आज तो वर्ग-संघर्ष पहले से भी अधिक है—इस बात को प्रसाद जी भी जानते थे—

वर्णों की खाई वन फैली,
कभी नहीं जो जुड़ने की।
(कामायनी-स्वप्न सर्ग)

सरकारें भी पूँजीपतियों के ही लिए बनी हैं। नियम रचे जाते हैं, विधान बनाए जाते हैं, कानूनों का निर्माण किया जाता है—पूँजीपतियों के लिए नहीं अपितु मानव रूप में उन कीटों के लिए :

वशी नियामक रहे, न ऐसा मैंने माना।
× × ×
मैं चिर बंधन हीन.......
× × ×
मैं शासक, मैं चिर स्वतंत्र........
× × ×
तनिक न मैं स्वच्छंद स्वर्ण सा सदा गलूँ मैं ?

शायद इसीलिए जर्मनी का प्रसिद्ध ऍनार्किस्ट बुकैनिन प्रत्येक प्रकार के शासन-यंत्र का विरोधी था। उसके अनुसार सरकारें गरीबों को और भी गरीब बनाकर उसके व्यक्तित्व को पंगु बना देती हैं। पूँजीपति को अपने को अतिमानव (Super man) समझता है। वह कानूनों से स्वयं को सर्वथा 'बंधन-हीन' मान लेता है, नियमों की रचना प्रजा-पालन अथवा प्रजा-रक्षा के लिए नहीं अपितु स्वलाभ के लिए की जाती है—

"आज कहाँ वह शासन था जो रक्षा का था भार लिए ?"

प्रसाद जी की श्रद्धा ने जब देखा कि पूँजीवादी वर्ग जीने ही नहीं दे रहा है तो वह 'जिओ और जीने दो' (Live and let live) के सिद्धांत की दुहाई देने लगी :—

---

१. What man has made of man ?
'Written in Early Spring'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्यों इतना आतंक ठहर जा ओ गर्वीले।
जीने दे सबको फिर तू भी सुख से जीले।

धन के केन्द्रीकरण पर भी प्रसाद जी को आपत्ति थी :—

अपने में सब कुछ भार कैसे व्यक्ति विकास करेगा ?
यह एकान्त स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा।
औरों को हँसते देखो मनु, हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत करलो, सबको सुखी बनाओ।।

उन्होंने मानव को कली माना है। कली का कर्त्तव्य है कि वह अपना सौरभ मुक्त हाथों से बिखेर दे, अपने में ही बन्द न रक्खे :—

ये मुद्रित कलियाँ दल में,
सब सौरभ बन्दी कर लें।
सरस न हो मकरंद बिंदु से,
खुल कर तो ये मर लें।

पंत के भी हृदय में इन जोंकों के प्रति अत्यंत आक्रोश है। वे 'धनपति' का अधिक दिनों तक धरती पर रहना नहीं देखना चाहते। क्यों ?—

वे नृशंस हैं, वे जन के श्रम बल से पोषित,
दुहरे धनी जोंक जग के, भू जिनसे शोषित।
नहीं जिन्हें करनी श्रम से जीविका उपार्जित,
नैतिकता से भी रहते जो अतः परिचित।

× × ×

दर्पी-हठी, निरंकुश, निर्भय, कलुषित, कुत्सित,
गत संस्कृति के गरल, लोक-जीवन जिनसे मृत।
जग-जीवन का दुरुपयोग है उनका जीवन,
अब न प्रयोजन उनका, अंतिम हैं उनके क्षण।।

कवि ठीक ही तो सोच लेता है कि अब पूँजीपतियों के अंतिम क्षण हैं। अतीत के राजतंत्र भी तो समाप्त हो गए हैं :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुखियों के, कुलपति, सामंत, महंतों के वैभव क्षण,
बिला गये बहु राज-तंत्र, सागर में ज्यों बुद् बुद् कण।

पंत को विश्वास हो चला है कि अब पूँजीपतियों के दिन लद गए हैं, वे नदी तीर पर चिरकाल से खड़े हुए अश्वत्थ के समान हैं जो किसी भी समय तनिक से धक्के से औंधें मुँह गिर सकते हैं। इसीलिए जो कोई भी उस अश्वत्थ में धक्का लगाने में कवि की सहायता करता है, वही कवि को अपना लगता है। इसीलिए भारतीय पंत गाँधी के सन्मुख श्रद्धावनत होता है:—

तव संस्कृति के दूत। देवताओं का करने कार्य,
आत्मा के उद्धार के लिए आए तुम अनिवार्य।

किंतु जब पेट के लिए रोटी नहीं तो आत्मा का क्या महत्त्व? अतः वह मार्क्स को भी प्रणाम करता है:—

धन्य मार्क्स! चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर,
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।

और मार्क्स के साथ ही वह मार्क्सवाद का भी अभिनंदन करता है क्योंकि तभी तो समाज का त्राण कुछ अच्छा होगा:

साम्यवाद के साथ स्वर्णयुग करता मधुर पदार्पण,
मुक्त निखित मानवता करती मानव का अभिवादन।

'युगवाणी' में उन्होंने स्वर्ण युग का चित्र भी खींचा है जब:—

श्रेणि-वर्ग में मानव नहीं विभाजित,
धन-बल से हो जहाँ न जन-श्रम शोषण,
पूरित-भव जीवन के निखिल प्रयोजन।

और जब पूंजीवाद के मचान पर बैठा हुआ साम्राज्य धड़ाम से नीचे आ पड़ेगा और जब।

जन-युग की स्वर्णिम किरणों से,
होगी भू आलोकित।

प्रसाद भी इसी 'वर्गों की खाई' को देखकर अत्यन्त दुखी हुए थे। समाज में—और जीवन में भी—वे सामरस्य लाने के लिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0:In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कितने व्यग्र थे इसे कामायनी का प्रत्येक पाठक जानता है। हाँ, इस सामरस्य के लिए उन्होंने न तो पन्त जी की भाँति मार्क्स का नारा लगाया और न नरेन्द्र शर्मा का साथ दिया जब उन्होंने कहा—

लाल रूस है ढाल साथियो। सब मज़दूर किसानों को,
वहाँ राज है पंचायत का, वहाँ नहीं है बेकारी।
लाल रूस का दुश्मन साथी। दुश्मन सब इन्सानों का,
दुश्मन है सब मजदूरों का, दुश्मन सभी किसानों का।

शोषित वर्ग में नर ही नहीं, प्रगतिवादी के लिए अब तक नारी भी शोषित रही है। सामंत वर्ग में धनिकों ने नारी को ऐसा आम समझा जिसे चूसकर वे सोचे समझे फेंका जा सकता था। 'कामायनी' के 'संघर्ष' सर्ग में किस प्रकार अहर्निश विलासिता कृत करती रहती है। प्रसाद जी को यह वस्तु असहनीय है। जब मनु इड़ा का शोषण करना चाहते हैं तो उन्हें इसका कितना बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है—इसकी कहने की आवश्यकता नहीं। पंत जी चीत्कार कर उठे :—

मुक्त करो नारी का मानव। मुक्त करो नारी को।

पंत को नारी अर्थ-संघर्ष में पिसते हुए पुरुष के मनोरंजन का साधन—एक खिलौना मात्र लगी है और इसी के खिलाफ उन्होंने आवाज बुलंद की है। उन्हें यह नहीं रुचता कि नारी का 'गुह्य अंग' मात्र ही उसके आकर्षण का कारण बना रहे। उनके स्वयं के शब्दों में "सामंत युग के स्त्री पुरुष संबंधी सदाचार का दृष्टिकोण अब अत्यंत संकुचित लगता है। उसका नैतिक मानदण्ड स्त्री की शरीर यष्टि रहा है। उस सदाचार के एक अंचल छोर को हमारे मध्ययुग की सती और हमारी बाल-विधवा अब भी छाती से चिपकाए हुई है और दूसरे छोर को उस युग की देन वैश्या। न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति' के अनुसार उस युग के आर्थिक विधान में भी स्त्री के लिए कोई स्थान नहीं, और वह पुरुष की सम्पति समझी जाती रही है। स्त्री स्वतंत्र्य संबंधी हमारी भावना का विकास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्तमान युग की आर्थिक परिस्थितियों के साथ ही हो रहा है। स्त्रियों का निर्वाचन अधिकार संबन्धी आंदोलन बूर्ज्वा संस्कृति एवं पूँजीवादी युग की आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम है। सामंत-युग भी नारी नर की छायामात्र रही है।

सदाचार की सीमा उसके तन से है निर्धारित,
पूत यौनि वह: मूल्य चर्म पर केवल उसका अंकित।
वह समाज की नहीं इकाई—शून्य समान अनिश्चित
उसका जीवन मान, मान पर नर के है अवलंबित।
योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित,
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित।"१

प्रगतिवादियों पर फ्राइड के मनोविकारों के एक बार खुल कर खेलने का भी प्रभाव पड़ा। उसके अनुसार मनोविकारों के दमन का प्रभव अत्यन्त अस्वास्थ्यकर है। प्रसाद यहीं बस बिदक जाते हैं। उन्होंने 'यौवन के माधवी कुंज' में कोयल के बोल सुने हैं। उन्होंने यौवन की तड़पन को दबाने का प्रयास नहीं किया। 'है खेल आँख का मन का' कह कर उन्होंने उस पर वरद हस्त रखा है। ऐन्द्रिय प्रेम को भी उन्होंने स्वीकार किया है—और खूब किया है :—

और एक फिर व्याकुल चुम्बन, रक्त खौलता जिसमें

किन्तु उनके लिए 'भौतिकता' ही सब कुछ नहीं (कुछ तो खैर है) अपितु इससे भी आगे की वस्तु 'रहस्य' सब कुछ है। वे भौतिकता पर पूर्ण विराम Full stop) नहीं लगा देते :—

यह क्या श्रद्धे ! बस तू ले चल,
उन चरणों तक दे निज संबल।
सब पाप-पुण्य जिसमें जल जल,
पावन बन जाते हैं निर्मल।

१—आधुनिक कवि (पंत), पर्यालोचन पृ० २६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिटते असत्य से ज्ञान लेश,
समरस अखण्ड आनन्द वेश।

सारांश में प्रगतिवाद का भाव-पक्ष अब व्यक्तिगत सीमा तक ही नहीं रहा। अब उन्हें काव्य के 'सुन्दर' से विशेष मोह नहीं रहा—

सुन्दरता का मूल्य वहाँ क्या,
जहाँ उदर है क्षुब्ध नग्न तन ?

इसीलिए जिन पंत ने ताजमहल की प्रशंसा में लिखा था कि इसमें "मानो शिल्प कला ही गला कर ढाल दी गई है" १ वे ही उसे आगे चल कर "मृत्यु का अमर अपार्थिव पूजन" तक कहने में नहीं हिचके। और इसीलिए—

आज सत्य, शिव, सुन्दर करता,
नहीं हृदय आकर्षित।
सभ्य शिष्ट औ, संस्कृत लगते,
मन को केवल कुत्सित।
.........आज असुन्दर लगते सुन्दर।

दूसरी ओर उन्हें धरती की माटी से अत्यन्त मोह हो गया—

इस धरती के रोम रोम में,
भरी सहज सुन्दरता।
कूड़ा करकट, सब कुछ भू पर,
लगता सार्थक, सुन्दर।

और इस प्रकार छायावाद का अन्तर्मुख बहिर्मुख हो गया अहं का 'सर्व' में लोप हो गया, 'व्यष्टि' 'समष्टि' में पर्यवसित हो गई :—

सर्व मुक्ति हो मुक्ति तत्त्व अब।
सामूहिकता ही निजत्व अब॥

भावों में ही नहीं भावाभिव्यक्ति के माध्यम में भी आमूल परिवर्तन ला दिया गया। किसी भी शब्द को काव्य के अनुपयुक्त कह कर निराश नहीं किया गया। पहले एक-एक शब्द को खराद पर चढ़ाया जाता था, उसे आभूषण बना कर आकर्षण-बिन्दु बना

१—'पल्लव की भूमिका पृ० ३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिया जाता था, अब, प्रगतिवाद में, यह बात नहीं रही। अब तो जो कुछ भी, जिस ढंग से भी कहा जाय, वही ठीक समझा जाने लगा। कविवर पन्त ने तो छत पर चढ़ कर कह दिया :—

खुल गए छन्द के बन्ध,
प्रास के रजत पास,
अब गीत मुक्त,
औ' युगवाणी बहती अयास !
बन गए कलात्मक भाव
जगत के रूप-नाम,
जीवन संघर्षण देता सुख,
लगता ललाम ।
सुन्दर, शिव सत्य
कला के कल्पित माप-मान
बन गए स्थूल । —'युगवाणी' (नव दृष्टि)

अब तो कवि को केवल इतना ही अभीप्सित है कि उसके 'विचार' (भाव नहीं) जन-साधारण तक किसी प्रकार पहुँच जाँय —बस :

ज्योतित कर जन मन के जीवन का अंधकार,
तुम खोल सको मानव—उर के निःशब्द द्वार,
वाणी मेरी चाहिए, तुम्हें क्या अलंकार ?

एक शब्द में उन्होंने बात को महत्त्व दिया, बात कहने के ढंग को नहीं।[१] डा० नगेन्द्र भावाभिव्यक्ति के इस अन्तर को पंत जी द्वारा सन्ध्या के दो चित्रणों से सिद्ध करते हैं जो इन्होंने दो स्थानों पर किए हैं—गुँजन' में एवं 'युगवाणी' में। प्रथम गुँजन का चित्र देखिए—

अब हुआ सांध्य-स्वर्णाभ लीन,
सब वर्ण-वस्तु से विश्व हीन।

१—'Hat is the thing, not the page.
—A. G. Gardiner (On Catching the Train)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गंगा के चल जल में निर्मल,
कुम्हला किरणों के रक्तोत्पल
है मूँद चुका अपने मृदु दल।
लहरों पर स्वर्ण-रेख सुन्दर,
पड़ गई नील ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर शिशिर से डर।
तरु-शिखरों से वह स्वर्ण-विहग,
उड़ गया खोल निज पंख सुभग।
किस गुहा नीड़ में रे किस मग,
मृदु-मृदु स्वप्नों से भर अंचल,
नव नील-नील कोमल-कोमल
छाया तरु-वन में तम श्यामल

दूसरा चित्र 'युगवाणी' का है।

अभी गिरा रवि, ताम्र कलश-सा,
गंगा के उस पार,
क्लान्त पांथ निज जिह्वा विलोल
जल में रक्ताभ प्रसार
भूरे जलदों से धूमिल नभ, विहग-छदों से बिखरे।
धेनु-त्वचा-से सिहर रहे, जल में रोओं से छितरे।
दूर, क्षितिज में चित्रित-सी उस तरु माला के ऊपर,
उड़ती काली विहग-पाँति रेखा सी लहरा सुन्दर।

प्रथम चित्र में "रूप और रंग का विलास है—स्वप्न है, दूसरे में तथ्य का चित्रण। पहले पद का 'किरणों का रक्तोत्पल' दूसरे में 'ताम्र कलश' बन गया है। 'गुंजन' का सोना और स्वप्न 'युगवाणी' में विहग-छंद, धेनुत्वचा इत्यादि में परिणत हो गया है।" सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि 'रसात्मक-शब्द' को त्याग कर प्रगतिवादी कवि 'गीत-गद्य'–[1] पर उतर आया है। पंत की ही दो पंक्तियाँ और देखिए :—

१—"युगवाणी" मुख पृष्ठ पर लिखे हुए दो शब्द।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिगरेट के खाली डिब्बे पन्नी चमकीली।
फीतों के टुकड़े, तस्वीरें नीली-पीली ॥

हम दैनिक व्यवहार में ऐसा ही तो बोलते हैं। भाषा का यह अन्तर पंत में ही नहीं प्रसाद जी भी में है। कामायनी की छायावादी अभिव्यक्ति एवं प्रगतिवादी अभिव्यक्ति में ध्रुवों का अन्तर है 'आशा' सर्ग की प्रथम पंक्तियाँ देखिये—

उषा सुनहले तीर बरसती
जय लक्ष्मी सी उदित हुई,
उधर पराजित काल रात्रि भी
जल में अन्तर्हित हुई।
× × ×
नव कोमल आलोक बिखरता
हिम संसृति पर भर अनुराग,
सित सरोज पर क्रीड़ा करता
जैसे मधुमय पिंग पराग।

उधर 'संघर्ष' सर्ग का प्रारंभ निहारिए जिसमें कवि ने प्रगतिवादिता का (पुट) (touch) दिया है :—

श्रद्धा का था स्वप्न किन्तु वह सत्य बना था,
इड़ा संकुचित उधर प्रजा में क्षोभ घना था।
भौतिक विप्लव देख विकल वे थे घबराये,
राजशरण में त्राण प्राप्त करने को आये।
किंतु मिला अपमान और व्यवहार बुरा था,
मनस्ताप से सब के भीतर शेष भरा था।

'आशा' सर्ग की पंक्तियों को कवि ने अपने सीधे-सच्चे रूप में अपने पाठकों तक नहीं आने दिया। उन्होंने रूपक, उपमा, अनुप्रासादि अलंकारों से चमका दिया है। पंक्तियाँ सचमुच बड़ी झमक के साथ आई हैं किंतु 'संघर्ष' की पंक्तियों में यह बात कहाँ ? वे तो कवि-हृदय से जिस रूप में उत्पन्न हुई वैसी ही हमारे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समीप चली आई हैं—उनमें उपमा की रुनझुन कहाँ, रूपक की झनकार कहाँ? सच तो यह है कि प्रगतिशील कवि के लिए भाषा को सरल और सुबोध बनाना आवश्यक (भी) है।"[1] उसे चमत्कार-प्रदर्शन एवं कलात्मक अभिव्यँजना से क्या? उसके विचार तो किसी प्रकार "जन-मन" तक पहुँच जाने चाहिए। यहाँ हमें कविवर वर्ड्सवर्थ की याद आ जाती है जिसने सन् १८०० ई० में अपने 'लिरकज बैलैड्स की "भूमिका" (Preface To The Lyrical Ballads) में लिखा था कि "काव्य एवं जन-साधारण की भाषा में न तो कोई अन्तर है और न होना चाहिए।"[2] वह तो कहकर ही रह गया था, जहाँ कहीं भी उसने अपने कथन का कार्य में अनुवाद भी किया था, वही उसे मुँह की खानी पड़ी। प्रयोग तो हमारे यहाँ के प्रगतिवादी कवियों ने अब किया है।

प्रसाद एवं पंत प्रगतिवादी पंक्ति में खड़े अवश्य हुए हैं किंतु मूलतः वे यौवन एवं प्रेम के ही कवि हैं। प्रसाद प्रगतिवादियों की बुद्धि के साथ हृदय को भी लेकर चले हैं तथा पंत यदि इस वाद में आपाद मस्तक डूब जाते तो फिर उन्हें अरविंद की ओर क्यों देखना पड़ता? दोनों कवियों को आत्मवाद एवं साम्यवाद, आध्यात्मिक एवं भौतिक समत्व ही अभीष्ट है। दोनों का विश्वास है कि मानवता का कल्याण एक से संभव नहीं। दोनों ही श्रद्धा एवं इड़ा, साम्यवाद एवं गाँधीवाद के मधुर मिलन से ही भूतल पर स्वर्ग आ जाने की संभावना करते हैं। सारांश यह है कि दोनों में से कोई भी साम्प्रदायिक प्रगतिवादी नहीं।

१—डा० रामविलास शर्मा.

२—"Neither there is nor there can be any difference between the languge of Common man and that of Metrical composition.

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'प्रसाद' एवं पंत का गीत-काव्य

"That which is not worth saying is sung."
—Beaumarchais, 'Barber of seville'

"अर्थात जो बात कहने योग्य नहीं होती, वह गाई जाती है।"

गीत—यह छोटा सा गोल मटोल शब्द अपने में न जाने कितना प्राचीन इतिहास सँजोए हुए है। जब मानव ने धरती पर चलना सीखा उसी दिन से उसने अपने हृदय में हास्य एवं रुदन की गंगा-यमुना को उमड़ पड़ने के लिए विकल देखा। उसने यह भी देखा कि हृदय समुद्र में न जाने कितनी भाव-वीचियाँ हैं जो बाहर आने के लिए विकल हैं। उसे ऐसा भासित होने लगा जैसे उसके हृदय के समुद्र में आग लग गई है अथवा हृदय की आग पर पानी पड़ गया है। तड़प उठा वह, प्रसन्न हो उठा वह—और जो कुछ उस तड़पन में, इस प्रसन्नता में, उसके मुंह से निकला गीत कहलाया—"साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।"[1] गीति-काव्य की सरिता आदि काल से अठखेलियाँ करती अजस्र गति से बहती चली आ रही हैं। 'सामवेद' गीतों का ही तो आगार है। 'गीता' का अर्थ ही है जो गाया गया हो। वैदिक साहित्य में ही नहीं, बौद्ध-साहित्य में भी गीतों का प्राचुर्य है। संस्कृत में जयदेव का तो नाम ही गीत को अपने साथ ले आता है। विद्यापति एवं चण्डीदास के उन मीठे गीतों का तो कहना ही क्या जो सूखे काष्ठ में भी अंकुर उत्पन्न कर सकते हैं,

१ महादेवी वर्मा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पत्थर से भी सुरसरि निकाल सकते हैं। हिन्दी में सर्व प्रथम कबीर ने 'राम की बहुरिया' बनकर न जाने कितने गीत गुनगुनाए। सूर तुलसी का तो कहना ही क्या ? उसी काल से आज तक यह परंपरा ज्यों की त्यों चली आ रही है—नहीं नहीं अब तो न जाने कितनी गुनी बढ़ गई है। सच पूछा जाय तो गीतों के लिए जितना उर्वर आज का युग है उतना पूर्व का कोई नहीं।

अँगरेजी में गीत को लिरिक (Lyric) कहते हैं यह शब्द लायर (Lyre) से बना है। लायर हमारे वीणा की भांति एक वाद्य-यंत्र होता है। संभवतः उस समय वे गीत ही लिरिक्स (Lyrics) कहलाते होंगे जो वीणा पर भली भाँति गाए जा सकते हों।[1] हिन्दी में भी सूर, कबीर, तुलसी के गीत वीणा पर कितने साधुओं द्वारा आज भी हमारी बिसरी यादों को हरा कर देते हैं पंत एवं निराला ने तो अपने बहुत से गीतों की ध्वनें स्वयं बाँधी हैं। कुछ भी हो आज भी गीत में गेयता होना तो अनिवार्य है ही।

ऐन्ट्विस्टिल (Entwistle) ने अपनी विख्यात पुस्तक 'काव्य का अध्ययन' (Study of Poetry) में गीत के बहुत से गुण बताए हैं। प्रमुख यह हैं[2] :—

---

[1] Lyrical poetry, in the original meaning of the term, was poetry composed to be sung to the accompaniment of the lyre or harp.'

[2] 1—It is musical, metrically or verbally or both.
2—It is subjective in character.
3—It is the expression of a single emotion and so achieves unity.
4—It is spontaneous.
5—Compared with other types of poetry it is short.
6—It is enjoys an endless variety of form.
7—It is embellished with consummate (though concealed) Art.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१—संगीतात्मकता, गीति अथवा मौखिक अथवा दोनों प्रकार की।
२—निजी रागात्मकता अथवा आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति।
३—एक ही भाव की अभिव्यक्ति अतः भाव की एकता।
४—अंतः प्रेरणा।
५—अपेक्षाकृत संक्षिप्तता।
६—विभिन्न प्रकार।
७—कला (यद्यपि प्रच्छन्न) की पूर्णता।

गीत की इन्हीं विशेषताओं के आधार पर प्रसाद जी एवं पंत जी के गीतों पर विचार करेंगे।

१—संगीतात्मकता—गीत का प्रथम गुण उसकी गेयता है। वैसे तो कविता ही 'संगीतमय विचार'[1] है फिर उसका तो कहना ही क्या जो गाने के ही लिए बनी है। हम कविवर आस्टिन के मत से सर्वथा सहमत हैं कि "जिस पद्य में संगीत एवं अर्थ बोधगम्यता न हो उसमें अन्य चाहे कितने भी गुण हों, कविता नहीं कह सकते।"[2] जिसमें संगीत न हो उसका प्रभाव स्थायी पड़े—इसमें संदेह है। दूसरे बिना संगीत के गीत की सजीवता समाप्त हो जाती है। शैक्सपियर के अनुसार 'संगीत प्रेम का भोजन है'[3] अतः जिस गीत में प्रेम की चाँदनी छिटकी हो और संगीत न हो यह तो बड़ी क्लिष्ट कल्पना है। इस दृष्टि से पंत कुछ ऊँचे उठते हैं किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि प्रसाद का स्थान नीचा है। बात यह है कि पंत ने एक एक शब्द को खराद पर चढ़कर प्रयोग किया है। उनके कान संगीत के बड़े शौकीन हैं, वे स्वयं वीणा-सितार का ज्ञान रखते

---

१. 'Musical thought'—S. T. coleridge
२. "No verse, which is unmusical or obscure, can be regarded as poetry—whatever other qualities it may possess."
३. 'Music be the food of love.'
—Twelfth Night (1-1-1)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। अतः उनके गीतों में गेयता अधिक है। उन्होंने राग-रागनियों में बांधकर अपने बहुत से गीतों की रचना की है। कविवर निराला ने भी आगे चलकर कुछ गीतों की रचना इसी प्रकार की थी। पन्त का निम्न गीत लीजिए—

बाँध दिए क्यों प्राण
प्राणों से !
तुमने चिर अनजान
प्राणों से !
गोप न रह न सकेगी
अब यह मर्म कथा,
प्राणों की न रुकेगी,
बढ़ती विरह व्यथा,
विवश फूटते गान
प्राणों से !
यह विदेह प्राणों का बन्धन,
अन्तर्ज्वाला में तपता तन,
मुग्ध हृदय सौंदर्य ज्योति को
दग्ध कामना करता अर्पण !
नहीं चाहता जो कुछ भी आदान
प्राणों से !
बाँध दिए क्यों प्राण
प्राणों से !

इसकी स्वरबद्धता के विषय में क्या कहना। जिस किसी ने इसे लतामंगेशकर के कोकिल-कण्ठ से सुना है वह इस गीत की स्वच्छन्दता एवं गेयता पर निस्तब्ध रह जाता है। कितनी मधुरता है इसमें एवम् कितनी मंजुल ध्वनि है इसकी-यह केवल उसी मधुकण्ठी से सुनकर जाना जा सकता है।[1] 'मौन-निमंत्रण' भी

१—यह गीत ऑल इण्डिया रेडियो के प्रसार गीतों के कार्य-क्रम में बहुधा आया करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी प्रकार अत्यंत उच्च कोटि का गीत है। स्वाद के लिए निम्न पंक्तियाँ चाखिए :—

देख वसुधा का यौवन-भार
गूँज उठता है जब मधुमास,
विधुर उर के-से मृदु उद्‌गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास,
न जाने सौरभ के मिस कौन
संदेशा मुझे भेजता मौन !

'आँसू' की निम्न पंक्तियों की गेयता का अनुभव कीजिए:—

कभी कुहरे-सी धूमिल घोर,
दीखती भावी चारों ओर।
तड़ित सा सुमुखि ! तुम्हार ध्यान,
प्रभा के पलक मार, उर चीर,
गूढ़ गर्जन कर जब गंभीर,
मुझे करता है अधिक अधीर,
जुगनुओं से उड़ मेरे प्राण
खोजते हैं तब तुम्हें निदान !

कविवर 'प्रसाद' के निम्न गीत की गेयता तो चिर प्रसिद्ध है—

बीती विभावरी जागरी।
अम्बर-पनघट पर डुबो रही
ताराघट ऊषा नागरी !
खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा।
किसलय का अंचल डोल रहा।
लो यह लतिका भी भर लाई।
मधु मुकुल नवल रस गागरी।

इसके अतिरिक्त उनके न जाने कितने गीत हैं जिनका संगीत अत्यंत ही सुखद है। उनके नाटकों का प्रत्येक गीत गाने के लिए ही बना है। अब तो उनके कतिपय नाटकों के अन्त में उन गीतों की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्वनियाँ भी (मुनीम जी द्वारा) लिख दी गई हैं। 'स्कंदगुप्त' का एक गीत देखिए :—

आह वेदना मिली विदाई।
मैंने भ्रमवश जीवन संचित,
मधुकरियों की भीख लुटाई।
चढ़कर मेरे जीवन-रथ में,
प्रलय चल रहा अपने पथ में।
मैंने निज दुर्लभ पद पल पर,
उससे हारी होड़ लगाई।

'चन्द्रगुप्त' के निम्न गीत (खम्माच-तीन ताल) के विषय में तो कहना ही क्या ?—

तुम कनक किरन के अंतराल में,
लुक छिप कर चलते हो क्यों ?
नत मस्तक गर्व वहन करते,
यौवन के घन, रसकन ढरते।
हे लाज भरे सौंदर्य ! बता दो,
मौन बने रहते हो क्यों ?

'लाज भरे सौंदर्य' से तो समस्त सौंदर्य फूटा पड़ रहा है।

२. *निजी रागात्मकता*—ऐन्ट्रिवस्टिल ने गीत का द्वितीय तत्त्व निजी रागात्मकता Subjectivity) बताया है। जिस समय हृदय का समुद्र हर्ष अथवा दुख के अतिरेक से तरंगित हो उठता है, उस समय उसके वेग को रोकने की शक्ति कवि में नहीं हो सकती। कवि अपनी वेकली के ही दीपक जलाता है। जब उसके हृदय में कोई ऐसा वलवती भाव उठ खड़ा होता है जो उसे चैन नहीं लेने देता तो वह अपने भाव को बाँटने के लिए अपने साथी की खोज में पलकें उठाता है। अमर गीतिकार शैले (P. B. Shelley) जब नेपल्स के समीप बैठा था, उसके हृदय में भावनाओं का ज्वार उठ खड़ा हुआ। वह भाव इतना वेगमय हो गया कि वह उसे किसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्य के कानों में डालने के लिए व्यग्र हो उठा—उससे गीत लिख ही तो गया,[1] जिसमें वह हूक उठा किसी साथी के सान्निध्य के लिए क्यों?—इसीलिए कि कोई उसकी आत्मानुभूति में हिस्सा बँटा सकता।[2]

वैसे गीत में पराए की भावना को भी वाणी मिल सकती है किंतु उसमें वह बात नहीं आ पाती जो किसी लिरिक में आना चाहिए। हाँ जो नैपोलियन हैं और जिनके कोष में 'असंभव' शब्द के लिए स्थान ही नहीं है, ऐसे महान कवियों के विषय में तो कहना ही क्या? हिन्दी साहित्य-गगन के सूर्य एवं चंद्र इसके ज्वलंत उदाहरण हैं जिन्होंने सूरसागर एवं गीतावली में कृष्ण एवं राम का इतिवृत्त लिखा, किंतु उन्हें भी वीभत्स, भयानक, रौद्र जैसे अकोमल रसों का बहुधा वहिष्कार ही करना पड़ा है। तुलसी ने गीतावली में इसीलिए तलवारों की झनकारों को नहीं आने दिया है। सच तो यह है कि "गीत यदि दूसरे का इतिहास न कह कर वैयक्तिक सुख-दुःख ध्वनित कर सके तो उसकी मार्मिकता विस्मय की वस्तु बन जाती है, इसमें संदेह नहीं" यदि वाह्य व्यापारों का वर्णन करना भी है तब भी उन्हें अन्तर की भट्टी में पिघलाना पड़ता है—"गीति काव्य में कवि अपनी अंतरात्मा में प्रवेश करता है और वाह्य जगत को अपने अंतःकरण में ले जाकर उसे अपने भावों से रंजित करता है।"[3] सच तो यह है कि गीत में उसके "कवि की भावना को (ही) पूर्ण अभिव्यक्ति होती है, उसमें..........विजातीय द्रव्य के लिए स्थान नहीं रहता।.......वह कवि की सच्ची आत्माभिव्यंजना होती।"[4] यदि इतिवृत्त के लिए स्थान है भी तो बहुत कम—"मिट्टी के भारे पात्र में जैसे रजकण ही अपने भीतर पानी के लिए जगह

---

१. Stanza Written in Dejection Near Naples.
२. Would that Somebrdy Share in my emotion.
३. श्यामसुन्दर दास
४. नंददुलारे बाजपेयी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बना देते हैं वैसे ही यथार्थ के लिए भाव में ऐसी स्वाभाविक स्थिति चाहिए जो भाव ही से मिल सके। इससे अधिक इतिवृत्त गीत में नहीं समा पाता।"[3]

पन्त मूलतः कवि ही हैं—गीतिकार नहीं। वे तो अपने पड़ौस में जो कुछ देखते हैं उसे ही कागज़ पर बिखेर देते हैं। फिर भी उन्होंने कुछ ऐसे गीत अवश्य लिखे हैं जिनमें आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति है। 'ग्रंथि' में तो कवि ने अपनी ही बात कही है। इसके अतिरिक्त 'आँसू' एवं 'उच्छ्वास' ऐसे ही गीत हैं जिनमें निजता है।

विधुर उर के मृदु भावों से,
तुम्हारा कर नित नव शृंगार,
पूजता हूँ मैं तुम्हें कुमारि,
मूँद दुहरे दृग द्वार!
अचल पलकों में मूर्ति सँवार,
पान करता हूँ रूप अपार;
पिघल पड़ते हैं प्राण,
उबल चलती हैं दृग जलधार।

और फिर—

बालकों सा ही तो मैं हाय।
याद कर रोता हूँ अनजान,
न जाने होकर भी असहाय,
पुनः किससे करता हूँ मान!

—'आँसू'

उसके उस सरल-पने से,
मैंने था हृदय सजाया,
नित मधुर मधुर गीतों से,

३. महादेवी वर्मा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसका उर था उकसाया।
कह उसे कल्पनाओं की,
कल कल्पलता, अपनाया,
वह नवल भावनाओं का,
उसमें पराग था पाया।
में मंद हास-सा उसके,
मृदु अधरों पर मँडराया,
औ उसकी सुखद सुरभि से,
प्रतिदिन समीप खिंच आया।

—उच्छ्वास

कवि पखेरू को निहारकर अपनी बात कह निकलता है :

सिखा दो ना हे मधुप कुमारि !
मुझे भी मीठे मीठे गान।

अपने मन के विषय में वह इन शब्दों में कह निकलता है :

तप रे मधुर मधुर मन !
विश्व वेदना में तप प्रतिपल,
जग जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुष, उज्ज्वल औ कोमल,
तप रे विधुर विधुर मन !

और—

स्तब्ध ज्योत्सना में जब संसार,
चकित रहता शिशु सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार,
विचरते हैं जब स्वप्न अनजान,
न जाने, नक्षत्रों से कौन।
निमंत्रण देता मुझको मौन।

जहाँ तक प्रसाद जी का सम्बंध है उन्होंने आत्मपरक गीत भी लिखे हैं एवं गीतों में गीतावली के तुलसी की ही भाँति इतिवृत्त व्यक्त किया है :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रो रो कर सिसक कर,
कहता मैं करुण कहानी।
तुम सुमन नोचते सुनते,
करते जानी मनमानी॥
× × ×
निष्ठुर यह क्या छिप जाना,
मेरा भी कोई होगा?
प्रत्याशा विरह निशा की,
हम होंगे औ, दुख होगा॥
× × ×
शीतल समीर आता है,
कर पावन परस तुम्हारा।
मैं सिहर उठा करता हूँ,
बरसा कर आँसू धारा॥

कवि अपने हृदय को चीरकर दिखा देना चाहता है जिसमें दुखों का संसार दुबका पड़ा है—

झंझा झकोर गर्जन है
बिजली है नीरद माला।
पाकर इस शून्य-हृदय को
सबने आ डेरा डाला।

'झरना' में कवि ने अपनी ही बात तो कही है :—

निभृत था, पर हम दोनों थे,
वृत्तियाँ रह न सकीं फिर दान्त।
कहा जब व्याकुल हो उनसे—
'मिलेगा कब ऐसा एकान्त?
हाथ में हाथ लिया मैंने,
हुए वे सहसा शिथिल नितांत।
मलय ताड़ित किसलय कोमल,
हिल उठी उँगली, देखा, भ्रान्त।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गीतिकाव्य की दृष्टि से प्रसादजी की 'लहर' भी अत्यन्त उच्च कोटि की है। हमने अभी देखा कि 'दुर्दिन' में घनीभूत पीड़ा' के बरसने से कवि कितना दुखी है, संभवतः इसीलिए वह 'लहर' में कह उठता है।

ले चल मुझे भुलावा देकर,
मेरे नाविक! धीरे धीरे।
जिह निर्जन में सागर लहरी,
अम्बर के कानों में गहरी
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे।

इस "वैयक्तिक सुख-दुःख" के साथ प्रसादजी ने "दूसरे का इतिहास भी कहा है। 'कामायनी' के इड़ा सर्ग का समूचा अफ़साना गीतों द्वारा ही कहा गया है। किंतु उसमें भी पिछले युग की सी रूक्षता नहीं आने पाई है। निम्न गीत बड़ा सशक्त है।
विखरी अलकें ज्यों तर्क जाल।

वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशिखण्ड सदृश था स्पष्ट भाल।
दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग-विराल ढाल॥
गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान।
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान ज्ञान॥
था एक हाथ में कर्म कलश वसुधा जीवन रस सार लिए।
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलंब दिए॥
त्रिवली थी त्रिगुण तारंगमयी, आलोक वसन लिपटा अराल।
चरणों में थी गति भरी ताल॥

इसमें केवल उतना ही इतिवृत्त आ पाया है जितने की संभावना महादेवी मानती हैं।

हाँ, 'निजी रागात्मकता' (Subjectivity) की दृष्टि से मीरा की भाँति महादेवी का स्थान अत्यंत ऊँचा है। उन्होंने सर्वत्र अपना राग अलापा है एवं अपने हृदय के करुणतम स्पन्दनों को ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास किया है। कुछ गीतों का प्रारंभ देखिए :

कौन तुम मेरे हृदय में ?
कौन मेरी कसक में नित
मधुरता भरता अलक्षित ?
कौन प्यासे लोचनों में
घुमड़ फिर झरता अपरिचित ?
स्वर्णस्वप्नों का चितेरा
नींद के सूने निलय में।
कौन तुम मेरे हृदय में;

× × ×

तुम्हे बाँध पाती सपने में !
तो चिर जीवन प्यास बुझा
लेती उस छोटे क्षण अपने में !

जिन गीतों में उन्होंने अपना परिचय दिया है वे तो उनके उत्कृष्टतम गीतों में हैं।

मैं नीर भरी दुख की बदली ?

× × ×

विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास वही,
उमड़ी कल थी मिट आज चली !

और-

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात।
वेदना में जन्म करुण में मिला आवास;
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात।
जीवन विरह का जलजात !

इस प्रकार जहाँ तक 'निजी रागात्मकता' अथवा आत्माभिव्यक्ति का प्रश्न है, वर्तमान युग के गायकों में महादेवी का शीर्ष स्थान है, उसके उपरान्त प्रसाद का, तदनंतर पन्तजी का।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. एक ही भाव की अभिव्यक्ति अतः भाव की एकता—समूचे गीत में आदि से अंत तक एक ही भाव बहना चाहिए। गीत का प्रकाश उल्का की भाँति होता है—एक भावना एक विचार ही उसको अनुप्राणित करता रहता है। अन्य भाव के घुस आने से गीत में विश्रृंखलता आ जाती है एवं उसका अभिप्सित प्रभाव नहीं पड़ता। कवि में कोई तीव्र भाव अग्नि के समान उठता है। बड़े से बड़े वन में अग्नि लग जाने से कुछ भी तो नहीं रह जाता। सर्वत्र अग्नि की लपटें ही गोचर होती हैं। ठीक उसी प्रकार उस अग्निमय तीव्र भाव के आवेग के समक्ष अन्य भाव विला जाते हैं। हाँ, किसी कवि में यह अग्नि धीमी जलती है यथा ठाकुर, मतिराम तथा कुछ में विस्फोट होता है यथा नवीन, दिनकर आदि में। यदि किसी के गीत के मध्य में भावान्तर प्रतीत भी हो तो समझ लेना चाहिए कि वह हृदय गीत को फोड़कर नहीं निकला है, उसकी उँगली पकड़ कर बाहर निकाला गया है। एक शब्द में उसके हृदय में वह वह्नि नहीं जल रही जो गीत लिखने के लिए अनिवार्य है। इस दृष्टि से पंत एवं प्रसाद दोनों ही खरे उतरते है। हाँ पंत में विस्फोट कभी नहीं आता, मंद अग्नि जलती रहती है—जलती अवश्य रहती है। उसका 'युगांत' कभी नहीं होता। 'चाँदनी', 'नित्य जग' जैसे गीतों में पंत अवश्य असफल हुए हैं। एक गीत में पंत की भाव-एकता निहारिए जिसमें वे अपनी (अथवा अपने ?) 'प्राणों के प्राण' से मनुहार करते हैं :—

आज रहने दो यह गृह काज,
प्राण ! रहने दो यह गृह काज।
आज उर के स्तर स्तर में, प्राण !
सजग सौ-सौ स्मृतियाँ सुकुमार,
दृगों में मधुर स्वप्न संसार,
मर्म में मदिर स्पृहा का भार !
आज चंचल चंचल मन-प्राण,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आज रे शिथिल शिथिल तन भार,
आज दो प्राणों का दिन मान,
आज संसार नहीं संसार।
आज रहने दो यह गृह काज।

कोई ऐसी पंक्ति नहीं जो हमारे ध्यान को किसी अन्य ओर खा दे। इससे पूर्व की पंक्तियों में भावुकता, अतः भाव की एकता, की पराकाष्ठा है :—

तुम्हारे नयनों का आकाश,
सजल, श्यामल, अकूल आकाश,
गूढ़, नीरव गंभीर प्रसार;
बसाएगा कैसे संसार,
प्राण इनमें अपना संसार,
न इनका ओर छोर रे पार,
खो गया यह नव-पथिक अजान।

इन पंक्तियों की कल्पना अत्यंत भव्य हैं। 'उनकी' आँखों के आकाश में कवि का मन-खग अपनी डगर भूल गया है। 'परिवर्तन' कविता के विषय में तो कुछ कहना ही नहीं है। प्रसाद के गीत दोनों प्रकार के हैं अर्थात् जो गीत आत्मपरक हैं उनमें आद्यन्त एक भाव ही हिलोर मारता गोचर होता है एवं जिन गीतों में थोड़ा सा इतिवृत्त है उनमें तो अन्य भाव का आ जाना संभव है ही। कवि में इस कोलाहल की धरती से कहीं दूर जाने की ललक है। अतः वह कह उठता है :

ले चल वहाँ भुलावा देकर,
मेरे नाविक। धीरे धीरे।
जिस निर्जन में सागर लहरी,
अम्बर के कानों में गहरी—
निश्चल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिस गंभीर मधुर छाया में–
विश्व चित्र-पट चल माया में-
विभुता विभु सी पड़े दिखाई,
दुख-सुख वाली सत्य बनी रे।
श्रम-विश्राम क्षितिज-वेला से—
जहाँ सृजन करते मेला से—
अमर जागरण उषा नयन से—
बिखराती हो ज्योति घनी रे।

निराला जी इन दोनों से भिन्न हैं। गीत की यह एकान्विति उनके कुछ ही गीतों में प्राप्य हैं। दार्शनिक चिन्तन में वे इतने निमग्न हो जाते हैं कि भाव सूत्र उनके हाथ से छूट जाता है एवं वे एक बात कहते कहते झट दूसरी बात कह निकलते हैं। उनका प्रसिद्ध गीत 'जागो फिर एक बार' ऐसा ही है। महादेवी के भी बहुत से गीतों ने विच्छिन्नता पाई जाती है। उनके एक-एक गीत में कई भाव पाए जाते हैं।

४. *अंतः प्रेरणा* :—गीत का चौथा गुण उसका अंतःप्रेरित (Spontaneous) होना है। गीति-काव्य का प्राण हो भाव (Emotion) है जो किसी प्रेरणा विशेष के भार से एक साथ गीत में फूट निकलता है—अतः अंतः प्रेरणा (Spontaneity) तो उसकी आधार शिला है। प्रत्येक के हृदय में कभी न कभी हर्ष की दीवाली मनती है, विषाद का तूफ़ान आता है। यह दीवाली और तूफान हृदय से बाहर निकल पड़ने के लिए बेचैन हो उठते हैं। जो साधारण व्यक्ति होते हैं वे ऐसे क्षणों में मौन रह जाते हैं किंतु जो कवि होते हैं उनके हृदय से गीत फूट निकलता है। पन्त ने ठीक ही कहा है :—

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर नयनो से चुपचाप,
बही होगी कविता अनजान॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वास्तव में ऐसे क्षणों में गीत लिखा नहीं जाता वह स्वयं ही फूट जाता है। क्रौंच के वध को निहारकर भावुक हृदय फूट पड़ा :—

मा निषाद प्रतिष्ठां-त्वमगम: शाश्वती समा: ।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी काम मोहितम् ॥[1]

और वह अनजाने ही आदि कवि के आसन पर जा बैठा। उसने जान बूझ कर उपरोक्त पंक्तियाँ नहीं कहीं, अपितु उसके हृदय में इतनी प्रबल भावना छा गई कि उसके ओंठों ने उसे अनायास ही निकाल दिया। वर्ड्सवर्थ ने तो गीत ही नहीं समूची कविता की परिभाषा में लिखा था—"कविता दुर्दमनीय भावों का स्वच्छंद प्रवाह है।"[2] फिर गीत का तो कहना ही क्या? उसमें तो परमशक्तिशाली भावों का परमस्वच्छंद प्रवाह अपेक्षित है। कहने की आवश्यकता नहीं कि हमारे दोनों कवि जन्म जात कवि हैं, हमारे राष्ट्रकवि की भाँति उन्हें ठोंक पीटकर कवि नहीं बनाया गया है। देखिए प्रसाद जी की प्रसन्नता कैसी फूटी पड़ रही है :—

मिल गये प्रियतम हमारे मिल गये,
यह अलस जीवन सफल अब हो गया।
कौन कहता है जगत है, दुःखमय,
यह सरस संसार सुख का सिंधु है।

१. अर्थात्—'रति-विलास की चाह सों मदमाती सानंद।
क्रौंचन की जोड़ी फिरत, विहरत जो स्वछंद॥
हनि तिन तिन में सों एक को, कियो परम अपराध।
जुग जुग लों तोहि न मिलहि, कबहुँ बड़ाई व्याध॥
—पं० सत्यनारायण

२. "Poetry is the Spontaneous overflow of powerful emotions."
W. Words Worth

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन पंक्तियों में कवि का मिलनोल्लास फूटा पड़ रहा है, अतः एक ही बात को दो बार कहना स्वाभाविक है। इन पंक्तियों के साथ महादेवी जी की निम्न पंक्ति अनायास याद आ जाती है।

विरह का जल जात, जीवन विरह का जलजात।

कवयित्री को अपने जीवन को 'विरह का जलजात' एक बार कहने में संतोष नहीं होता अतः वे अपनी छोटी सी बात को दो बार कहती हैं। क्यों? क्योंकि भावना का आवेग अत्यंत प्रवल है फलतः वे उस आवेग को रोकने में अक्षम सिद्ध होती हैं। प्रसाद अपने आँसू को देखकर एकदम कह उठे :

जो घनीभूत पीड़ा थी,
मस्तक में स्मृति सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बनकर,
वह आज बरसने आई॥

इन पंक्तियों में 'घनीभूत' पीड़ा' अपने आप बरस निकली है— ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार पीछे की पंक्तियों में कवि के मिलनोल्लास की दीवाली जल उठी थी। सुख एवं दुख दोनों की पराकाष्ठा एक ही बिंदु पर तो पर्यवसित होती है। क्या अत्यंत प्रसन्नता में नयन मान सरोवर नहीं बन जाते? क्या अत्यंत दुख में ही मनुष्य की मृत्यु होती है, सुख में नहीं? महादेवी के अनुभूत शब्दों में :

चिर ध्येय यही जलने का,
ठंडी विभूति हो जाना;
है पीड़ा की सीमा यह,
दुख का चिर सुख हो जाना।

वस्तुतः सुख और दुख की चरम सीमा एक ही है, अधिक दुख भी सुख में परिवर्तित हो जाता है। एक उर्दू कवि के शब्दों में भी,

मुश्किलें मुझ पर पड़ीं इतनी कि आसाँ हो गईं।

कविवर शैले (P. B. Shelley) ने भी तो अपने एक गीत 'स्टैंजास रिटिन इन डिजैक्शन नियर नैपिल्स' (Stanzas

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Written In Dejection Near Naple) में लिखा है कि ...स मुझ पर इतना नैराश्य-वर्षण हुआ है कि उसमें उतना ...त नहीं रह गया है।' कहने का तात्पर्य यह है कि जब ...के हृदय में अत्यन्त सुख अथवा अत्यन्त दुख की ...वना वेग मारती है तो गीत अपने आप कागज पर उतर आता है। प्रसाद एवं पन्त दोनों में अंतःप्रेरणा खूब है 'वीचिविलास' ...कर कवि का गान फूट पड़ता है :

छुई-मुई सी तुम पश्चात
छूकर अपना ही मृदु गात
मुरझा जाती हो अज्ञात।
स्वर्ण-स्वप्न सी कर अभिसार,
जल के पलकों में सुकुमार।
फूट आप ही आप अजान,
मधुर वेणु की सी झंकार॥

'रंगिणि' को प्रातः ही चहकते देख कवि अपनी भावना नहीं ...क सकता :

प्रथम रश्मि का आना, रंगिणि।
तूने कैसे पहिचाना?
कहाँ, कहाँ हे बाल विहंगिनि।
पाया तूने यह गाना?

...वि अपने समाज को वैषम्य निहारकर हृद्गत भाव को ...पाए भी तो दबाए कैसे?—

बैठ, टेक धरती पर माथा,
वह सलाम करता है झुककर।

---

1. Now despair itself is mild.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस धरती पर पाँव उठा लेने को,
जी करता है क्षण भर ॥

इसी प्रकार 'आँसू की बालिका' का प्रत्येक शब्द अंतः प्रेरित है। कतिपय पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

मूँद पलकों में प्रिया ध्यान को,
थाम ले अब, हृदय ! इस आह्वान को।
त्रिभुवन की भी तो श्री भर सकती नहीं,
प्रेयसी के शून्य पावन स्थान को।

गीति काव्य का यह तत्त्व-अंतःप्रेरणा—प्रसाद एवं पन्त दोनों में पाया जाता है। यदि यह तत्व न होता तो इनके गीत सीधे पाठक के हृदय से न टकरा सकते क्योंकि हृदय में वही वस्तु बैठ सकती है जो हृदय से ही निकलती है।[1] विद्यापति की वाणी हमें आज भी तो रस बोर कर देती है। क्यों ? इस अंतःप्रेरणा (Spontaneity) के ही कारण से ही तो न।

५. *संक्षिप्तता* :—संक्षिप्तता के बिना तो गीत महाभारत बन जायगा। यदि गीत अधिक लम्बा होगा तो उसमें किसी अन्य भाव के सरक आने की प्रचुर संभावना बनी रहेगी। कवि में भाव-शबलता एक ही क्षण के लिए आती है। उसी दशा में वह गुनगुनाता निकलता है जो गीत का रूप धारण कर लेता है। उस समय कवि अपने पड़ोस की प्रत्येक वस्तु से—संभवतः स्वयं से भी बेखबर हो जाता है और उसे ऐसा लगता है मानों वह किसी स्वप्न का स्वाद ले रहा है। स्वप्न समाप्त हुआ, बस गीत भी वहीं एक झंकार के साथ समाप्त हो जाता है। इतिहास अथवा महाभारत तो कभी भी लिखे जा सकते हैं, गणित का प्रश्न किसी भी समय स्लेट, बत्ती लेकर किया जा सकता है किंतु

१. 'That which comes out of the heart, goes to the heart.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गीत में यह बात नहीं होती—उसका तो एक क्षण विशेष आता है। यदि उसी 'मूड' में गीत लिख लिया तो लिख लिया अन्यथा फिर वैसा क्षण कभी नहीं आ सकता—नहीं आ सकता। क्योंकि वह 'क्षण' क्षण ही होता है अतः उसमें लम्बे गीत लिख जाने की कम ही संभावना रहती है। प्रसिद्ध है एक बार (S. T. Coleridge) ने अपने स्वप्न को कागज पर उतारना प्रारंभ किया। थोड़े समय के उपरान्त ही उनका एक मित्र आ गया जिसने उनसे लगभग एक घण्टा वार्तालाप किया। भला गीत का मूड क्या इतनी देर तक रह सकता था?—नहीं ही रहा। फलतः वे अपने उस विख्यात गीत—कुबला खाँ (Kubla Khan) को जीवन पर्यन्त पूर्ण नहीं कर सका। यह सन् १७६८ की बात है। सारांश यह है कि 'सबल भाव', वर्डसवर्थ का 'पावरफुल इमोशन' (Power Full Emotion), कुछ ही क्षण ठहरता है जिसमें लिखा गया गीत लम्बा हो ही कैसे सकता है। वहाँ तो एक-एक शब्द में भावना का संसार बसाना पड़ता है। डा० नगेन्द्र एक अंग्रेजी विद्वान की बात को हिन्दी पाठकों को इन शब्दों में देते हैं—"सच्ची गीत-कविता एक सरल, क्षणिक एवं तीव्र मनोवेग का परिणाम स्वरूप है। इस मनोवेग से उसका समस्त अन्तर्बाह्य एक साथ झंकृत हो जाता है—उसके अन्तस में एक अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है। यह अग्नि इतनी प्रखर हो जाती है कि और सभी भावनाएँ एवं विचार विलुप्त हो जाते हैं, इसके अतिरिक्त अन्य कोई सत्ता नहीं रह जाती। यहाँ तक कि कवि स्वयं तदाकार हो जाता है और समस्त कविता अपने लिखित स्वरूप में आने से पूर्व ही उद्भासित हो जाती है। इस प्रकार प्रत्येक गीत का जन्म अन्तर्ज्वाला से ही होता है। हाँ, इस ज्वाला की तीव्रता और वेग प्रत्येक कवि का प्रकृति के अनुसार होता है। प्रायः इसका विस्फोट क्षणिक एवं अस्थायी ही होता है, इसीलिए शुद्ध गीतियाँ छोटी हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होती हैं।"[1]

प्रसाद के गीत वस्तुतः छोटे-छोटे हैं, हाँ पन्त के कुछ गीत लम्बे हो गए हैं। प्रसादजी का निम्न गीत देखिए :

अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर, नाच रही तरु-शिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर-मंगल कुंकुम सारा।
लघु सुर-धनु सेसे पंख पसारे-शीतल मलय समीप सहारे,
उड़ते खग जिस ओर मुँह किए, समझ नीड़ निज प्यारा।
बरसाती आँखों के बादल-बनते जहाँ भरे करुण जल,
लहरें टकराती अनन्त की—पाकर जहाँ किनारा।'

'लहर' शीर्षक गीत देखिए—

उठ उठ री ! लघु-लघु लोल लहर !
करुणा की नव अँगराई सी
मलयानिल की परछाँई सी
इस सूने तट पर छिटक-छहर !

१—'सुमित्रानंदन पंत'—पृ॰ ३३। मिलाइए—"The lyric proper is the product of a swift, momentary, and passionate impulse, coming from without for the most part, suddenly awaking the poet as it were out of a dream, into vivid life, seizing upon him, and setting him on fire with its grasp, until he believes self which speaks-replacing, that it is very is, the poets own life by the life of the impulse until the impulse has absorbed in him everything else but itself ; and bringing with it the form it has to take, so that the whole poem leaps into being before it is written down. When a lyric rises into form in a great poet, it is always in fire what it rises."

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शीतल कोमल, चिर कंपन सी,
दुर्ललित हठीले बचपन सी,
तू लौट कहाँ जाती है री—
यह खेल खेल ले ठहर ठहर!
उठ-उठ गिर-गिर फिर-फिर आती,
नर्तित पद चिन्ह बना जाती,
सिकता में रेखाएँ उभार
भर जाती अपनी तरल सिहर!
तू भूल न री पंकज वन में,
जीवन के इस सूने पन में,
ओ प्यार-पुलक से भरी ढुलक
आ चूम पुलिन के विरस अधर।

'बीती विभावरी' 'ले चल मुझे भुलावा देकर' जैसे विख्यात गीत संक्षिप्त ही हैं। निम्न गीत की लघुता का तो कहना ही क्या—

आज इस यौवन के माधवी कुंज में कोकिल बोल रहा।
मधु पीकर पीकर हुआ करता प्रेम-प्रलाप
शिथिल हुआ जाता हृदय जैसे अपने आप
लाज के बंधन खोल रहा!
बिछल रही चाँदनी छवि-मतवाली रात
कहती कम्पित अधर से बहकाने की बात
कौन मधु मदिरा घोल रहा?

और यह १—

कैसी कड़ी रूप की ज्वाला।
पड़ता है पतंग-सा इसमें मन होकर मतवाला॥
सान्ध्य गगन-सी रागमयी यह बड़ी तीव्र है हाला।
लौह शृंखला से न कड़ी क्या यह फूलों की माला॥

१—'चंद्रगुप्त' में कार्नेलिया द्वारा गया हुआ सिंध भैरवी-तीन ताल।
१—'चन्द्रगुप्त' में द्वारा सुवासिनी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पन्त के गीत की लघुता निहारिए—

नीरव तार हृदय में
गूँज रहे हैं मंजुल लय में,
अनिल-पुलक से अरुणोदय में !
चरण कमल में अर्पण कर मन,
रज-रंजित कर तन,
मधु-रस-मज्जित कर मय जीवन
चरणामृत आशय में !
नित्य कर्म-पथ पर तत्पर धर
निर्मल कर अन्तर,
पर-सेवा का मृदु पराग भर
मेरे मधु-संचय में !

इसी प्रकार उनका यह गुंजन—

तप रे मधुर मधुर मन !
विश्व-वेदना में तप प्रतिपल,
जग-जीवन की की ज्वाला में गल,
बन अकलुष, उज्ज्वल औ, कोमल
तप रे विधुर विधुर मन !
अपने सजल स्वर्ण से पावन
रच जीवन की मूर्ति पूर्णतम,
स्थापित कर जग में अपनापन,
ढल रे ढल आतुर मन !
तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन
गंधहीन तू गंध युक्त बन,
निज अरूप में भर स्वरूप, मन !
मूर्तिवान बन, निर्धन !
गल रे गल निष्ठुर मन !

यही नहीं, 'गुंजन' से अधिकांश गीत छोटे ही हैं। मंझादेवी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी जीवन जो 'विरह का जलजात' है छोटा ही है—ग्यारह पंक्तियों का। निम्न गीत भी गुनगुना लीजिए :—

क्या पूजन क्या अर्चन रे ?
उस असीम का सुन्दर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे!
मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे !
पदरज को धोने उमड़े आते लोचन में जल-कन रे !
अक्षत-पुलकित रोम मधुर मेरी पीड़ा का चंदन रे !
स्नेह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक-मन रे !
मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे !
धूप बने उड़ते रहते हैं प्रतिपल मेरे स्पंदन रे !
प्रिय प्रिय जपते अधर ताल देता पलकों का नर्तन रे !

'निराला' का प्रसिद्ध गीत 'कौन तम के पार' भी छोटा ही है :—

अखिल पल के स्रोत, जल जग,
गगन घन-घन-धार (रे कह)
गंध-व्याकुल-मूल-उर-सर,
लहर-कच-कर कमल-मुख-पर
हर्ष अलि हर स्पर्श-शर, सर
गूँज बारम्बार (रे कह)
उदय में तम-भेद सुनयन,
अस्त-दल- ढल पलक-कलतन
निशा-प्रिय-उर शयन सुखधन
सार है या कि असार (रे कह)
बरसता आतप यथा जल
कलुष से कृत सुहृल कोमल
अशिव उपलाकार मंगल,
द्रवित ढाल नीहार (रे कह)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गीत छोटा है, संगीतमय है, एक ही भाव को वहन कर रहा है फिर भी इतने अधरों को क्यों नहीं चूम पाता जितना प्रसाद जी का बीती 'विभावरी' 'ले चल मुझे भुलावा देकर' अथवा पन्त के 'मौन निमंत्रण' 'नक्षत्र' आदि—यह एक अलग प्रश्न है।

६. *विभिन्न प्रकार*—कवि की प्रज्ज्वलित वह्नि की लपट जिस समय बाहर निकलती है, उसे किसी एक दिशा में ले चलना असंभव सा हो जाता है—न जाने वह किस दिशा में दौड़ निकले—और यह दिशाएँ अनेक हैं। हिन्दी में आदि काल से गीत की विधाएँ चली आ रही हैं किंतु जब से हिन्दी को अँग्रेजी के साथ बैठने, उससे मधुर वार्तालाप करने एवं सहेली बनाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, तब से उसने अपने भवन के नक़शे अँगरेजी से ही बनवाए हैं। अँगरेजी में मूलतः गीति काव्य के निम्न प्रकार हैं।

(क) सॉनेट (Sonnet) अर्थात् चतुर्दशपदी।
(ख) एलेजी (Elegy) अर्थात् शोक गीत।
(ग) ओड (Ode) अर्थात् संबोधन गीत।
(घ) रिफ्लैक्टिव (Reflective) अर्थात् विचार गीत।
(ङ) सैटाइर (Satire) अर्थात् व्यंग गीत।
(च) डाइडैक्टिव (Diadective) अर्थात् उपदेशात्मक गीत। आदि आदि।

प्रसाद एवं पन्त ने इन गीत की विधाओं में बहुतों के साथ आँख मिचौनी खेली। छायावादी कवियों को ओड से अत्यन्त प्रेम रहा है। इसमें कवि किसी वस्तु विशेष को संबोधित करके अपने विचारों, भावों एवं कल्पनाओं की व्यंजना करता है। प्रसादजी के 'किरण' 'दीप' 'वसंत' एवं पंत के 'छाया' 'अलंकार के प्रति' 'परिवर्तन' एवं निराला के यमुना के प्रति 'समीर' आदि अमर संबोधन-गीत (Ode) हैं। अंगरेजी साहित्य के कविवर कीट्स (John Keats) के छह-सात ओड्स इस साहित्य की अक्षय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संपत्ति हैं। वर्डस वर्थ का वह 'अमर ओड'[१] एवं शैली का वह अनुपम ओड'[२] क्या भुलाने की वस्तुएँ हैं ? मेरा मतलब 'ओड आन दी इण्टिमेशंस ऑव इमौरटैलिटि' (Ode on the intimations of Immortality) एवं 'टु द वैस्ट विंड' Ode to the west wind से है)। मिल्टन ने भी प्रारम्भ में एक ओड लिखा था। कीट्स के विषय में तो आलोचकों का यहाँ तक कथन है कि यदि वह इन छः-सात संबोधन गीतों को ही लिखकर रह जाता तब भी अँगरेजी साहित्य के इतिहास में उसका स्थान बन जाता।

पन्त जी की चिर प्रसिद्ध छाया निहारिए:—

कौन पड़ी हो दमयन्ती सी,
क्यों तरु के नीचे सोई ?
हाय ! तुम्हें भी त्याग गया क्या,
अलि, नल सा निष्ठुर कोई ?
कौन–कौन तुम परहित वसना,
म्लान मना भू पतिता सी,
वात-हता विच्छिन्न लता सी,
रति श्रान्ता व्रज वनिता सी,
नियति वंचिता आश्रय रहिता,
जर्जरिता पद दलिता सी,
धूल–धूसरित मुक्त कुँतला,
किसके चरणों की दासी ?

'अन्धकार के प्रति' की कतिपय पंक्तियां द्रष्टव्य हैं:—

अब न अगोचर रहो सुजान।
निशानाथ के प्रियवर सहचर,
अन्धकार स्वप्नों के यान।
किसके पद की छाया हो तुम;

१. 'The Immortal Ode.' २. 'The Matchless Ode.'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसका करते हो अभिमान ?
तुम अदृश्य हो, तुम अगम्य हो,
किसे छिपाए हो 'छविमान'।

'लहर' को कवि संबोधित करता है :—

अरी सलिल की लोल हिलोर।
यह कैसा स्वर्गिक उल्लास ?
सरिता की चंचल दृग-कोर !
यह जग को अविदित उल्लास !
आ, मेरे मृदु अंग झकोर,
नयनों को निज छवि में बोर;
मेरे उर में भर यह रोर।

'गंथि' में प्रेम से कवि ठीक ही कहता है :—

और भोले प्रेम ! क्या तुम हो बने,
वेदना के विकल हाथों से, जहाँ।
झूमते गज से विचरते से, वहीं,
आह है, उन्माद है, उत्ताप है।
पर नहीं तुम चपल हो अज्ञान हो,
हृदय है मस्तिष्क रखते हो नहीं।

प्रेम की व्याख्या अन्तिम पंक्ति से अधिक क्या हो सकती है ! आइए, पच्चीस वर्ष का नादान कवि भवितयता से क्या कहता है—ज़रा सुन लें :—

हा, अभय भवितव्यते ! किस प्रलय के।
घोर तम से जन्म तेरा है हुआ॥
× × ×
तू सरल कोमल कुसुम दल में कहाँ,
है छिपी रहती कठिन कण्टक बनी ?

प्रसाद जी की 'किरण के प्रति' की कुछ पंक्तियाँ देखिए :—

किरण ! तुम क्यों बिखरी हो आज,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रँगी हो तुम किसके अनुराग ?
स्वर्ण-सरसिज किंजल्क समान,
उड़ाती हो परमाणु पराग !

और हाँ, यौवन का अल्हड़ कवि प्रसाद सौंदर्य से क्या कह रहा है ? यह तो सुनना ही चाहिए :—

तुम कनक किरन के अन्तराल में,
लुक, छिपकर आते हो क्यों ?
नत मस्तक गर्व वहन करते,
यौवन के छन रसकन ढरते।
हे लाज भरे सौंदर्य बता दो,
मौन बने रहते हो क्यों ?

'निराला' जी यमुना से पूछ रहे हैं :—

यमुने ! तेरी इन लहरों में,
किन अधरों की आकुल तान ?
पथिक-प्रिया-सी जगा रही है,
किस अतीत के गौरव गान ?

उपदेशात्मक गीतों का तो हिन्दी के पास अतुल भण्डार है। कबीर-तुलसी से लेकर आज तक हिन्दी का उपदेशात्मक गीत-विभाग वृद्धि पर है। द्विवेदी युगीन कवि भी स्थूल इतिवृत्तात्मकता के साथ उपदेश भी देते जाते थे। आज का पाठक उपदेश ग्रहण करने की आशा से किसी गीत का घूँघट नहीं उठाता, वह तो उसकी रूप-माधुरी से अपने हृदय को छकाना चाहता है। उपदेश के लिए उसे न जाने राह चलते कितने मिल जाते हैं किन्तु वह वह उन्हें देखता भी नहीं—हाँ, उस रूप माधुरी के पान के साथ ही साथ यदि, 'कान्तासम्मत' उपदेश हो जाय तो दूसरी बात है ! आज के गीतों में, इसीलिए, जीवन के मधुर भावों की मधुरतम व्यंजना है—आर्य समाजी नैतिकता एवं उपदेशात्मकता नहीं, व्यक्तिगत इच्छाओं का मर्दन नहीं, निर्जीव आदर्शों की अभिव्यक्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मात्र नहीं। फिर भी प्रसाद जी की प्रारंभिक रचनाओं में वाह्य-वर्णन एवं उपदेशात्मकता के दर्शन होते हैं—विशेषतः 'प्रेम पथिक' में देखिए:—

मत समझो सब दुखी जगत को,
मत लांछन दो ईश्वर को।
शिव समिष्ट का होता, इच्छा
उसकी पूरी होती है।

ऐसा लगता है मानों कोई महात्मा हमसे भोजन माँगने आया है और हमारे मना करने एवं उसे चारों ओर दुख—साम्राज्य दिखाने पर वह उपरोक्त उपदेश दे निकलता है। और भी:—

पथिक ! प्रेम की राह अनोखी,
भूल—भूल कर चलना है।
घनी छांह है ऊपर तो,
नीचे काँटे हैं बिछे हुए।
प्रेम यज्ञ में स्वार्थ और,
कामना हवन करना होगा।
तब तुम प्रियतम स्वर्ग—बिहारी,
होने का फल पाओगे ?

पंत जी भी प्रकृति-द्वारा उपदेश देते चलते हैं। कलिका शुष्क वृंत पर भी मुसकाकर 'सुख-दुख को अपनाना' सिखाती है। प्रसून सुरभि विकीर्ण करने दानशीलता का उपदेश देता है। चींटी के व्याज से तो कवि ने न जाने कितना उपदेश दे डाला है। कवि मानव को चींटी के समान ही 'सक्रिय' बनने का उपदेश देता है। वह यहाँ तक कह निकलता है:—

देह तुम्हारे ही है, रे शव।
तन की चिंता में घुल निशदिन,
देह मात्र रह गये,—दबा तिन।
प्राणि प्रवर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो गए निछावर
अचिर धूलिपर !!
निद्रा, भय, मैथुना हार
—ये पशु-लिप्साएँ चार—
हुईं तुम्हें सर्वस्व सार ?
धिक् मैथुन-आहार-यन्त्र।

व्यंग्य—गीत छायावादी कवियों ने कम ही लिखे हैं. यदि वह (व्यंग) स्वयं आजाय तो आ जाय। निराला व्यंग लिखने में परम पटु हैं। जमींदारों, पुलिस वालों, नेताओं पर उन्होंने बड़े चुभते व्यंग किए हैं। पंडित नेहरू पर भी एक बार उन्होंने व्यंगात्मक कविता लिखी थी जिसकी एक पंक्ति थी:

आजकल पंडित जी देश में विराजते हैं।

अर्थात् वैसे तो पंडित जी (?) जी को इस काले देश से घृणा है, विदेशों में रहते हैं किन्तु 'आजकल' वे अवश्य 'देश' में आ गए हैं किन्तु क्या वे देश की नव्ज पहचान सकेंगे ? प्रगतिवादियों एवं प्रयोगवादियों के लिए व्यंग बहुत ही सबल अस्त्र है। यदि आप बुरा न मानें (आप शहरी तो नहीं हैं ?) तो अज्ञेय जी का एक व्यंग देखिए :—

साँप, तुम सभ्य तो हुए नहीं, न होगे
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूँ (उत्तर दोगे ?)
फिर कैसे सीखा डसना ?
विष कहाँ पाया ?

अर्थात् डसना शहर के महल वालों से ही सीखा जा सकता है। तिल मिला देने वाला प्रहार है। प्रगतिवादी पंत को 'ग्राम्या' में व्यंग्य-कलाकार के रूप में देखिए :—

घर में विधवा रही पतोहू।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्ष्मी थी, यद्यपि पतिघातिन ॥
पकड़ मँगाया कोतवाल ने ।
डूब कुएँ में मरी एक दिन ॥
खैर पैर की जूती जोरू ।
न सही एक दूसरी आती ॥
पर जवान बेटे की सुधि कर ।
साँप लोटता फटती छाती ॥

आज भी बहुत से मित्र जोरू को 'पैर की जूती' समझते हैं। आइए पंत जी के लाला के भी जरा कारनामे देखते चलें :—

टूट गया वह स्वप्न वणिक का
आई जब बुढ़िया बेचारी
आध पाव आटा लेने;—
लो लाला ने फिर डंडी मारी।

यह बात नहीं कि लाला ने अबके ही, प्रथम बार, यह डन्डी मारी है; नहीं, यह तो 'फिर' मारी है।

प्रसाद जी भी 'आँसू' में अपने उनके प्रति उपालंभ देते हैं :—

रो रो कर, सिसक कर,
कहता मैं करुण कहानी ।
तुम सुमन नोंचते सुनते
करते जानी अनजानी ॥

विचारात्मक (Reflective) गीतों की कक्षा में प्रसाद एवं पंत दोनों के गीत बैठे मिलते हैं। जैसा कि प्रारंभ में ही लिखा जा चुका है 'पल्लव' के उपरांत पंत जी के काव्य में एक ऐसी लकीर खिच गई जहाँ से आगे पंत जी का भाव एवं कल्पना पथ पाठक के नयनों से ओझल हो गया। 'पल्लव' तक कवि का क्षेत्र हृदय था 'गूँजना' में आकर एक दम आत्मा की ओर पहुँच गया फलतः इस संग्रह के गीतों में अब उतना आवेश नहीं दिखाई देता जितना पिछले काल के गीतों में था। दूसरी ओर गुँजन के गीतों में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विचार, चिंतन एवं मनन का प्राधान्य है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इसके समस्त गीत ही विचारात्मक हैं—कुछ ही हैं। शायद चिंतन एवं मनन के कारण ही इसके गीत छोटे हैं। प्रथम कवि को उत्कण्ठा होती है :—

मैं चिर उत्कण्ठातुर
जगती के अखिल चराचर
यों मौन मुग्ध किसके वल।

कवि फिर विचार कर निकलता है :—

क्या यह जीवन ? सागर में
जल-भार मुखर भर देना !
कुसुमित पुलिनों की क्रीड़ा
व्रीड़ा से तनिक न लेना—

उसका विचार अब उसे संदेश दे निकलता है :—

सागर-संगम में है सुख,
जीवन की गति में भी लय;

किंतु विचार तो कुछ निष्कर्ष लाता है, कुछ सार लाता है (चाहे कितना ही छोटा हो)। पन्त को भी कुछ सार मिलता है और वह है :—

जग पीड़ित है अति दुख से,
जग पीड़ित रे ! अति दुख से;

फिर क्या संसार यूँ हो सुख और दुख की 'अति' से 'पीडित' बना रहे ? क्या अति सुखी एव अति दुखी व्यक्तियों के आँसू यूँ ही ढलते रहें ? क्या कोई ऐसा विचार ताप नहीं जिसमें इनके भीगे अंचल सुखाए जा सकें ? है—है क्यों नहीं ? पंत जी के पास एक ही समाधान है इसका और वह है :—

मानव-जग में बँट जावें
दुख सुख से औ, सुख दुख से।

घन्टों चिंतन का निष्कर्ष इन दो पंक्तियों में आबद्ध हो गया है ! इतना ही नहीं वह सुख-दुख के विषय में और आगे विचार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है तथा उस विन्दु पर पहुँचता है जहाँ वह सोच निकलता है :—

अस्थिर हैं जग का सुख-दुख
जीवन ही नित्य चिरन्तन !
सुख-दुख से ऊपर मन का
जीवन ही रे अवलम्बन !

जीवन-सम्बन्धी गूढ़ विचार को वह आगे भी कहता है—

सुन्दर से अति सुन्दरतर,
सुन्दरतर से सुन्दरतम।
सुन्दर जीवन का क्रम रे
सुन्दर सुन्दर जग-जीवन।

इसी विचार को 'नौका-विहार' में कवि दूसरे शब्दों में रखता है-

हे जग जीवन के कर्णधार,
चिर जन्म-मरण के आर-पार।
शाश्वत जीवन नौका विहार,
मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान।
जीवन का यह शाश्वत प्रमाण,
करता मुझको अमरत्व दान।

इसीलिए कवि ठीक ही तो कह उठता है—

जीवन की लहर लहर से,
हँस खेल खेल रे नाविक।
जीवन के अन्तस्तल में,
नित बूड़ बूड़ रे भाविक।

प्रसाद जी भी विचार एवं मनन के उपरांत पन्त जी के निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—

कौन कहता है जगत है दुखमय,
यह सरस संसार सुख का सिंधु है।

एवं—

मत समझो सब दुखी जगत को,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मत लांछन दो ईश्वर को।
शिव समष्टि का होता इच्छा,
उसकी पूरी होती है।

उन्होंने भी पत की ही भांति भाव—जगत के साथ ही साथ बुद्धि संसार की भी यात्रा की है। उन्होंने अनवरत मनन के उपरांत यह निष्कर्ष निकाला था कि मानव नियति का दास है। हम उनके जीवन-वृत्त में देख चुके हैं कि वे कितने बड़े नियतिवादी थे आंसू की निम्न पंक्तियाँ मानो उनके विचारों का निचोड़ है—

नचती है नियति नटी सी,
कंदुक—क्रीड़ा सी करती।
इस व्यथित विश्व आंगन में,
अपना अतृप्त मन भरती।

मानव नियति का दास है जिसे यह नटी कंदुक के समान विश्व—आंगन में उछालती गिराती रहती है नियति ही उसके भाग्य में सीधी या टेढ़ी लकीर खींच देती है जिसे पहले से देख लेना क्या सम्भव है?—

कौन उठा सकता है धुन्धला पट भविष्य का जीवन में? यदि यही सम्भव होता तो अश्रु, जिसकी एक बूँद का मूल्य सिकंदर के लिए अपनी मा के नयन में उसके समूचे साम्राज्य से बड़ा था। आज बेमोल क्यों विखरे पड़ते? महान ब्रूटस (Brutus) ने भी तो यही सोचा था कि काश!! कम से कम आज शाम की बात ही अभी ज्ञात हो जाय[१]। किन्तु कैसे हो सकती—

कौन उठा सकता है धुँधला पट भविष्य का जीवन में? इसीलिए प्रसाद जी को विश्वास हो चला था कि संभव है आज की कुटी कल ही गगन को चूम ले और गगन चुम्बी प्रासाद नियति की

१—O, that a man might know.
The end of this day's business ere it come!
—Julius caesar (V-I-123-4)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक मुस्कान के साथ ही धूल के चरणों में लोटने को विवश हो जाय। उनके विचार के समक्ष कौन प्रश्नवाचक चिह्न लगा सकता है—

जिस मंदिर में देख रहो हो जलता रहता है कपूर।
कौन बता सकता है उसमें तेल न जलने पायेगा॥

शोक गीत (Elegy) प्रसाद पन्त में से किसी ने नहीं लिखे। बहुत से विद्वान—पं० दुर्गाशंकर मिश्र तक—प्रसाद जी के आँसू को शोक गीत (Elegy) मानते हैं[1] किंतु मेरे विचार से इसे विरह गीत कहना अधिक समीचीन है, इलेजी कहना कवि की आत्मा में टीस उत्पन्न कर देना है। हाँ निराला जी का 'सरोज स्मृति' अवश्य ही इलैजी है।

चतुर्दशपदी (Sonnet) ने हिंदी राष्ट्र में अभी अभी नागरिकता पाई है अतः अभी तो प्रभाकर माचवे ने ही उससे वोट मांगा है।

यह तो रहा गीति-काव्य का अंग्रेजी रूप इसका भारतीय प्रकार भी है। बा० गुलाबराय ने विषयगत प्रवृतियों के आधार पर गीत को पाँच कक्षाओं में रक्खा है[2]—

क—प्रकृति संबंधी गीत।
ख—जीवन मीमांसा सम्बंधी गीत।
ग—आध्यात्मिक विरह मिलन के गीत।
घ—गाँधीवाद से प्रभावित राष्ट्रीय गीत, और....
ङ—लौकिक प्रेम गीत।

(क) *प्रकृति सम्बन्धी गीत*—छायावादी कवियों ने प्रकृति में उन्मुक्त विचरण किया। क्या पंत क्या प्रसाद—दोनों ने प्रकृति नर्तकी को चारों ओर से देखा। पंत ने तो जब नयन उघारे, अपने चारों ओर प्रकृतिनटी का ही नर्तन देखा—उन्हें कवि ही उसी ने बनाया—'जब मैंने पहले लिखना प्रारम्भ किया था तब मेरे चारों

१—'अनुभूति और अध्ययन'—पृ० ६४।
२—'सिद्धांत और अध्ययन'—पृ० १२८—६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और केवल प्राकृतिक परिस्थितियाँ तथा प्राकृतिक सौंदर्य का वातावरण ही ऐसा सजीव था जिससे मुझे प्रेरणा मिलती थी।.....मेरी प्रारम्भ रचनायें प्रकृति की लीला-भूमि में लिखी गई हैं।.....मैंने स्वतः ही जैसे किसी अंतर्विवशता के कारण पक्षियों तथा मनुष्यों के स्वर में स्वर मिलाकर जिन्हें तब मैंने 'विहग बालिका तथा मधुबाला सम्बोधन किया है, पहले पहल गाना सीखा है।"[1] जब पंत को चलना ही प्रकृति ने सिखाया है तो कोई आश्चर्य नहीं यदि वे कह उठे :

> छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
> तोड़ प्रकृति से भी माया,
> बाले तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूं लोचन।

कभी उसने 'विहग कुमारि' से वार्तालाप किया कभी 'मधुप कुमारि' को 'मीठा गान' सिखाने का प्रार्थना-पत्र दिया है। उधर प्रसाद ने भी स्वलेखनी से प्रकृति के न जाने कितने चित्र अंकित किए। उषा को घूँघट में से झाँकते देख हठात् उनके ओठों से निकल पड़ा :

> बीती विभावरी जागरी!
> अम्बर पनघट में डुबो रही,
> तारा घट ऊषा नागरी।
> खग कुल कुल-कुल सा बोल रहा।
> किसलय का अंचल डोल रहा॥
> लो यह लतिका भर लाई,
> मधु-मुकुल नवल रस गागरी।

शरमाती कलियों, लजीले भ्रमरों एवं मुसकाते तारों को देख कवि अपने को भूल गया। 'प्रकृति चित्रण' की आगे अलग ही घनी छाँह है अतः दो चार पादप रोपकर यहाँ विश्राम करना समीचीन नहीं जा न पड़ता।

1.—मैं और मेरी कला'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ख) जीवन-मीमांसा-सम्बंधी गीत—छायावादी कवि दूसरी सीढ़ी पर रहस्यवादी बन जाता है अतः जीवन-मीमांसा के गीत भी गुनगुनाता निकलता है। पंत की जीवन-मीमांसा देखिए :

जग पीड़ित है अति दुख से,
जग पीड़ित रे। अति सुख से।
मानव-जग में बँट जावें,
दुख सुख से औ सुख-दुख से॥

× × ×

सुन्दर से अति सुन्दरतर,
सुन्दरतर से सुन्दरतम,
सुन्दर जीवन का क्रम रे,
सुन्दर सुन्दर जग-जीवन।

'नौका-विहार' की अंतिम पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :—

हे जगजीवन के कर्णधार,
चिर जन्म मरण के आरपार,
शाश्वत जीवन नौका-विहार।
मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान,
जीवन का यह शाश्वत प्रमाण,
करता मुझको अमरत्व दान।

प्रसाद जी की जीवन-मीमांसा देखिए :—

जलता है ये जीवन पतंग,
जीवन कितना ? अति लघु क्षण
ये शलभ पुन्ज से कण-कण,
तृष्णा वह अनल शिखा बन।
दिखलाती रक्तिम यौवन,
जलने की क्यों न उठे उमंग ?

महादेवी जी सुख-दुख दोनों को ईश्वर प्रदत्त मानती हैं :

जिसको पथ-शूलों का भय हो,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह खोजे नित निर्जन गाह्वर।
प्रिय के संदेशों के वाहक,
मैं सुख-दुख भेंटूँगी भुज भर;
मेरी लघु पलकों से छलकी,
इस कण कण में ममता बिखरी,

निराला 'अधिवास' का प्रश्नवाचक उत्तर देते हैं :—

रुकती है गति जहाँ ?

(ग) *आध्यात्मिक विरह-मिलन के गीत*—कबीर एवं जायसी की भाँति आज के रहस्यवादियों ने आध्यात्म संबंधी विरह-मिलन की आवाजें लगाई हैं। आज के कवियों में चाहे अनुभूति न हो (है भी नहीं) किंतु उन्होंने विरह के तराने ऐसे गाए हैं कि उँगली बरबस ही दाँतों के नीचे चली जाती है। इस पंक्ति की अग्रणी हैं महादेवी एवं उन्हीं के समीप खड़े दीखते हैं प्रसाद जी। महादेवी जी के लिए तो विरह ही सब कुछ है, उन्हें अपने मन की बेकली से अत्यन्त ममत्व है। विरह को वे आराध्य तक मानती हैं :—

आकुलता ही आज,
हो गई तन्मय राधा,
विरह बना आराध्य,
द्वैत क्या कैसी बाधा ?

वे अपने 'उनको' पाने के लिए अत्यंत विकल हैं।[1] उनके हृदय में टीस उठ रही है कि यदि वे उन्हें सपने में बाँध पातीं तो स्व जीवन-प्यास शान्त हो जाती।[2] किंतु किसके लिए विकल हैं वे, किनसे प्यास बुझाना चाहती हैं—इसका उत्तर महादेवी स्वयं

---

१. अलि कैसे उनको पाऊँ ?
२. तुम्हें बाँध पाती सपने में !
तो चिर जीवन-प्यास बुझा,
लेती उस छोटे क्षण अपने में।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूछती हैं।[1] इतनी विकलता होने पर भी कवयित्री को अपने विर की वह मीठी कसक ऐसी थाती है जिसे वे जीवन-पर्यन्त अपने समीप रखना चाहती हैं—

अब न लौटाने कहो अभिशाप की वह पीर।
बन चुकी हृदय में स्पंदन और नयन में नीर॥

प्रसाद का मिलन गीत देखिए :—

मिल गए प्रीतम हमारे मिल गये,
यह अलस जीवन सफल अब हो गया।
कौन कहता है जगत है दुखमय,
यह सरस संसार सुख का सिंधु है॥

आध्यात्मिक मिलनोल्लास प्रत्येक शब्द से छलक रहा है।

(घ) *राष्ट्रीय गीत*—जैसा कि पूर्व ही लिखा जा चुका है भारतेन्दु युग से ही कवियों से उर-जलधि में राष्ट्रीय चेतना के बुलबुले उठना प्रारंभ हो गए थे। द्विवेदी युग में उन्होंने लहर की आकृति ले ली एवं छायावादी काल में वे लहरें हिलोरें बन गईं। प्रसाद एवं पन्त ने भारतीय इतिहास के भूले पन्नों को उलटा। पंत का कवि चीख उठा :—

आज कहाँ वह पूर्ण पुरातन वह स्वर्ण का काल ?

प्रसाद ने भी भारतीय इतिहास के स्वर्णिम पन्नों का अपने नाटकों में अनुवाद किया। सिकन्दर महान के सेनापति सैल्यूकस की कन्या कार्नीलिया भारत को देखकर विना कहे न रह सकी :

अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर नाच रही तरु-शिखा मनोहर,
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा।
लघु सुर-धनु से पंख पसारे-शीतल मलय समीर सहारे,
उड़ते खग, जिस ओर मुँह किए समझ नीड़ निज प्यारा।

१. कौन तुम मेरे हृदय में ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बरसाती आँखों के बादल बनते जहाँ भरे करुणाजल,
लहरें टकराती अनन्त की—पाकर जहाँ किनारा।

चन्द्रगुप्त में ही एक अन्य गीत है जिसका ओज ठण्डे रक्त को खौला देता है :

हिमाद्रि तुंग श्रंग से,
प्रबुद्ध शुद्ध भारती,
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला,
स्वतंत्रता पुकारती।
अमर्त्य वीर पुत्र हो,
दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो।
प्रशस्त पुण्य पंथ है,
बढ़े चलो, बढ़े चलो।

ऐसा लगता है कि कवि ने सचमुच 'तुंग हिमालय श्रंग' से पुकारती हुई स्वतंत्रता को सुना है। जातीय गर्व का एक गीत 'स्कंदगुप्त' के अंत में है :—

हिमालय के आँगन में उस प्रथम दे किरणों का उपहार।
उषा ने हँस अभिनंदन किया और पहनाया हीरक-हार।
जगे हम, लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक।
व्योम-तम-पुंज हुआ जब नष्ट, अखिल संसृति हो उठी अशोक।

× × ×

बचा कर बीज-रूप से सृष्टि, नाव पर झेल प्रलय का शीत।
अरुण केतन लेकर निज हाथ वरुण-पथ में हम बढ़े अभीत।
सुना है दधीचि का वह त्याग हमारी जातीयता विकास।
पुरन्दर ने पवि से है लिखा अस्थि युग का मेरे इतिहास।

× × ×

विजय केवल लोहे की नहीं, धर्म की रही धरा पर धूम।
भिक्षु होकर रहते सम्राट दया दिखलाते घर-घर घूम।
यवन को दिया दया का दान, चीन को मिली धर्म की दृष्टि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंत ने भी देश की वर्तमान दशा पर आँसू ढुलकाए :—

आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरती सूनी साँस
वही मधु ऋतु की गुंजित डाल
झुकी थी जो यौवन के भार
अकिंचनता में निज तत्काल
सिहर उठती—जीवन है भार।

इसमें जीवन एवं जगत का ही नहीं, देश का भी परिवर्तन व्यंजित है। स्वदेश के इस वैषम्य को ही तो निहारकर कवि रो उठा है—

गूँजते हैं सबके दिन चार
सभी फिर हाहाकार।

कवि चाहता है कि वे ही सुनहरी दिन भारत के आँगन में फिर लौट आवें, अतः वह प्रार्थना करता है :—

जग के उर्वर आँगन में
बरसो ज्योतिर्मय जीवन!
बरसो लघु-लघु तृण तरु पर
हे चिर अव्यक्त चिर नूतन!
बरसो सुख-सुखमा वन,
बरसो जग जीवन के घन
दिश दिशि में औ पल-पल में
बरसो जीवन के सावन

कवि की 'चाँदनी' भी मानव को 'मुद्रित' देखना चाहती है;

रवि, शशि, ग्रह चिर हर्षित
जल, स्थल, दिशि, समुल्लसित
निखिल कुसुम कलि सस्मित
मुद्रित सकल हों मानव।

निराला भी राष्ट्र की तंद्रिल पलकें विलोक कर कह उठते हैं।

प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें
अरुण पंख तरुण किरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खड़ी खोल रही द्वार
जागो फिर एक बार।

इस प्रकार प्रसाद एवं पंत दोनों ने राष्ट्रीयता की रण-भेरी बजाई। हाँ, क्योंकि प्रसाद ने अपने नाटकों का कथानक भारत के अतीत के इतिहास से माँगा अंतः उन्हें राष्ट्रीय गीता गाने का अधिक अवसर मिला, पंत को अपेक्षाकृत कम। प्रसाद ने राष्ट्रीय भावना गद्य में भी अभिव्यक्त की है। 'चन्द्रगुप्त' का एक वाक्य लीजिए :—

"मालव और मागध को भूलकर जब आर्यावर्त का नाम लोगे तभी यह मिलेगा।" प्रांतीयता पर कितना बड़ा प्रहार है। इसी प्रकार "आक्रमणकारी बौद्ध और ब्राह्मणों में भेद नहीं करेंगे" में साम्प्रदायिकता को आमूल उखाड़ फेंकने का आग्रह है।

(ङ) लौकिक प्रेम-गीत :—द्विवेदी युग में जीवन की मधुर भावनाओं का सर्वथा वर्जना थी। उसी की तो स्थूलता को प्रसाद, पंत एवं निराला ने चुनौती दी। किन्तु इसका यह भी अर्थ नहीं कि इन कवियों ने द्विवेदीजी द्वारा पारिमार्जित कविता-सलौनी का पुनः वैसा ही शृंगार कर दिया जिसे दूर करने के लिए आचार्यजी को अथक प्रयास करना पड़ा था। उन्होंने एक ओर तो द्विवेदी-कालीन मर्यादावादिता को ताख में रख दिया दूसरी ओर रीति-कालीन एकांगी शृंगारिता को हेय समझा। हृदगत कसक को उन्होंने प्रकृति के माध्यम एवं अस्पष्ट संकेतों से ही व्यक्त किया—इतना खुलकर वेहयाई से नहीं जैसा हिन्दी के लाड़ले उन बदनाम कवियों ने। टीस इनके गीतों में खूब है किन्तु उन गीतों पर एक ऐसा झीना रेशमी आवरण चढ़ा हुआ है कि वे बरबस आध्यात्मिक कोटि में चले गए हैं। प्रसाद का 'आँसू' काव्य ऐसा ही है। उनका प्रणय इतना गहन एवं सराबोर कर देने वाला है कि उनकी स्मृति अलौकिक प्रणयानुभूति से अभिन्न जान पड़ती है। यही वह विशेषता है जो कवि की शृंगारिकता एवं रीतिकालीन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थूल शृंगारिकता के बीच बहुत मोटी लकीर खींच देती है। प्रारंभ में आलोचकों को ऐसा लगा कि 'आँसू' आध्यात्मिक गीत है, इसमें रहस्यवाद है, किंतु अब यह सर्वमान्य है कि इसका आलम्बन इस धरती का ही कोई पुतला है, परलोक का कोई सितारा नहीं। ऐसा लगता है कि कोई नवनीत की प्रतिभा, कवि को छूकर कहीं तिरोहित हो गई[1] जिसके एक दीदार के लिए महाकवि जीवन भर तरसता रहा :—

शीतल समीर आता है
कर पावन परस तुम्हारा।
मैं सिहर उठा करता हूँ,
बरसा आँसू की धारा॥

सच तो यह है कि आज के कवि के लिए ईश्वर और अपने 'उन' में विशेष अंतर नहीं, इसीलिए 'आँसू' में लोगों ने आध्यात्मिकता खोज निकाली :

कुछ शेष चिन्ह हैं केवल
मेरे उस महामिलन के।

× × ×

१—छिप गई कहाँ छूकर वे
मलयज की मृदुल हिलोरें।
क्यों घूम गई हैं आकर
करुणा-कटाक्ष की कोरें॥

मिलाइए—

मैं तो जा रहा था पंथ पर तुम्हीं ने फिर कहो,
रूप-ज्योत्स्ना दिखा नकाब क्यों गिरा लिया?
स्नेह-नीति क्या अजीब जान रे! पड़ा है अब,
किसी का मन बुला समीप अपना मुँह फिरा लिया॥

—रा० द्विवेदी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गौरव था नीचे आए,
मिलने को प्रियतम मेरे

× × ×

परिचित से जानें कब के,
तुम लगे उसी क्षण मुझको ॥

उपरोक्त पंक्तियों से ऐसा भासित होता है मानो कवि का उस 'विराट' से साक्षात्कार हो चुका है किंतु जैसा अभी कह चुका हूँ ...द के कवि के लिए उस (he) और उस (He) में कोई अन्तर नहीं। इसके अतिरिक्त प्रसादजी के नाटकों में भी स्वतंत्र गीत हैं ...में लौकिक प्रेम की पीर है, जिनके हृदय से कवि का व्यथित ...यूँ ही नजर आता है 'झरना' की कतिपय पंक्तियाँ निहारिये :-

कर गई प्लावित तन-मन सारा।
एक दिन तव अपांग की धारा॥
हृदय से झरना।
बह चला, जैसे दृगजल ढरना।
प्रणय-वन्या ने किया पसारा,
कर गई प्लावित तन मन सारा।

...जी नहीं मानता 'झरना' की ही यह पंक्तियाँ बिना लिखे—

निभृत था-पर हम दोनों थे
वृत्तियाँ रह न सकी फिर दान्त।
कहा जब व्याकुल हो उनसे
'मिलेगा कब ऐसा एकान्त ?'
हाथ में हाथ लिया मैंने,
हुए वे सहसा शिथिल नितांत।
मलय तड़ित किसलय कोमल,
हिल उठी उँगली, देखा भ्रान्त।

पन्त के प्रणय-चित्र तो बिल्कुल स्पष्ट हैं :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंजरित आम्र की छाया में,
हम प्रिये ! मिले थे प्रथम बार !

यह गीत तो आप ने सुना ही होगा :—

प्रिये ! प्राणों की प्राण ।[1]
न जाने किस गृह में अनजान
छिपी हो तुम, स्वर्गीय विधान
नवल कलिकाओं की-सी वाण
बाल-रति सी अनुपम, असमान—
न जाने कौन, कहाँ अनजान,
प्रिये ! प्राणों की प्राण !

एवं इन पंक्तियों से प्रारम्भ होने वाला गीत—

आज रहने दो यह गृह काज,
प्राण ! रहने दो यह गृह काज !

यह गीत की अधीरता अपने पूर्वोक्त साथी से अधिक है। आलचकों ने आँसू, उछ्वास एवं ग्रंथि-तीनों कृतियों में पन्त का लौकिक प्रणय-सूत्र खोज निकाला है।

एक पल मेरे प्रिया के दृग-पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे
चपलता ने इस विकंपित पुलक से
दृढ़ किया मानो प्रणय संबंध था

और तभी से कवि के हृदय में तीव्र व्यथा की गाँठ लग गई जिसे वह जीवन भर सुलझाता रहा। अन्त में जब उस 'प्रिया' का 'ग्रंथि-बंधन' कवि के ही समक्ष किसी अन्य से हो गया तो कवि के हृदय में वेदना की गहरी लकीर खिंच गई और वह चीख निकला :—

शैवलिनि ! जाओ मिलो तुम सिंधु से
अमिल आलिंगन करो तुम गगन का,

१—'Soul of my Soul.'
R. Browning in 'Prospice.'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चंद्रि के चूमो तरंगों के अधर,
उडुगनो गाओ पवन वीणा बजा।
पर हृदय सब भाँति तू कंगाल है।

इन पंक्तियों में कवि अपना ही अफसाना सुना रहा है, अपनी ही चोटें दिखा रहा है, अपना ही सिर धुन रहा है।

८७, *कला (यद्यपि प्रच्छन्न) की पूर्णता*—यदि किसी गीत में उपरोक्त समस्त तत्व हैं किन्तु कला की पूर्णता नहीं है तो वह गीत किसी के कंठ पर देर तक नहीं थिरक सकेगा।

सिनेमा के गीतों (Cine-lyrics) की लोकप्रियता का सबसे बड़ा रहस्य यही है कि उनकी पंक्तियों का प्रवाह प्रत्येक बटोही को अपनी ओर देखने के लिए बाध्य कर देता है। जैसा पूर्व ही कहा है गीत का स्वच्छंद प्रवाह (Spontaneity) एक अनिवार्य तत्व है। वह लिखा नहीं जाता, लिख जाता है, हृदय से झरने की भाँति फूटकर वह निकलता है, प्राकृतिक बहाव है उसका। वह उस नहर के समान नहीं है जिसके जल को दो दीवालों में बाँधकर ले जाया जाता है। इसमें तो कृत्रिमता आ जाती है। इसीलिए गीत एक साँस में जैसा लिख जाता है, वैसा ही लिखा रहने दिया जाता है। उसमें आकर्षण स्वयंमेव आ जाता है। उसके शब्दों में बनावट की गुँजाइश नहीं होती, उसकी भाषा, इसीलिए, अपेक्षाकृत सरल होती है। पंत की कविताएँ यद्यपि इतनी दुरूह हैं किंतु छाया, मौन निमंत्रण, प्रथम रश्मि आदि सुविख्यात गीतों का शब्द-चयन अतीव सरल है जिससे उनकी धारा वाहिकता विस्मय की वस्तु बन गई है। 'बाँध दिए क्यों प्राण' भी ऐसी ही भाषा में है। प्रसाद जी में कहीं कहीं काठिन्य अवश्य आ गया है, किंतु सर्वत्र नहीं। कहीं कहीं तो उसमें इतनी सरलता आ गई है कि यह उनका दोष बन गई है:—

जलन छाती की बड़ी सहता हूँ,
मिलो मत मुझसे यही कहता हूँ ?
बड़ी दया हो तुम्हारी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुम रहो शीतल हमें जलने दो,
तमाशा देखो हाथ मलने दो;
तुम्हें है शपथ हमारी।

किन्तु शब्द चयन की ऋजु-सरलता से ही गीत की लोकप्रियता नहीं हो सकती। थोड़ी पंक्तियों में भाव को इस प्रकार रख दिया जाय कि वे पंक्तियाँ पाठक (श्रोता) के हृदय को एकदम छू लें, इसके लिए गीतकार को बहुत बड़ा कलाकार होना अपेक्षित है। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि कवि उस कला को प्रत्येक स्थान पर बिखेरता चले। सच्ची कला तो कला के छिपाने में हैं।[1] कवि को शब्दों की अन्तरात्मा का ज्ञान होगा परमावश्यक है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस दिशा में पन्त जी का पलड़ा प्रसाद जी के पलड़े से भारी है। चित्र प्रस्तुत करने की दौड़ में पंत महाकवि को पीछे छोड़ जाते हैं। चार पंक्तियाँ निहारिए:—

बाँसों का झुरमुट,
सँध्या का झुटपुट,
हैं चहक रही चिड़ियाँ,
टी, वी, टी, टुट्-टुट्।

पंक्तियों का रव ही कहे दे रहा है कि पक्षीगण किस प्रकार कर रहे होंगे। एक और आवाज़ सुनिए—

पपीहों की वह पीन पुकार,
निर्झरों की भारी झर-झर,
झींगुरों की झीनी झनकार
घनों की गुर—गंभीर घहर
विंदुओं की छनती छनकार
दादुरों के दोहरे स्वर

'पीन पुकार' 'झर-झर' 'झीनी झनकार' 'गंभीर घहर' 'छनकार' आप बड़ी आसानी से सुन सकते हैं और 'दोहरे

1. Art lies in concealing Art.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वर ?'—इन्हें तो आप सुन ही रहे हैं । साथ ही साथ प्रसाद जी का गर्जन-चित्र देखते चलिए—

उधर गरजती सिंधु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों सी,
चली आ रही फेन उगलती
फन फैलाए व्यालों सी।

मनु क्या सोच रहे हैं ?—

किस गहन गुहा से अति अधीर
झंझा प्रवाह सा निकला यह जीवन विक्षुब्ध महासमीर ।
ले साथ विकल परमाणु-पुञ्ज नभ, अनिल, अनल क्षिति और नीर,
भयभीत, सभी को भय देता, भय की उपासना में विलीन ।
(कामायनी—इड़ा सर्ग) ।

अन्तिम पंक्ति में 'भ' का बाहुल्य भय उत्पन्न कर ही देता है। पन्त की कला-चाँदनी को हमारे समक्ष ही ला खड़ा कर देती है :—

नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शरद—हासिनि !
मृदु करतल पर शशि-मुख धर
नीरव अनिमिष एकाकिन !

प्रसाद अपनी हिचकियाँ किन शब्दों में बाँधते हैं :—

रो-रो कर सिसक-सिसक कर
कहता मैं करुण कहानी ।
तुम सुमन नोचते सुनते
करते जानी अनजानी ।

इन शब्दों में कला को किस कौशल से छिपाया गया है यही कारण है कि सिसकियाँ यों ही सुनाई पड़ती हैं। छन्द-चयन ने तो इन सिसकियों का अकथ साहाय्य किया है। निम्न पंक्तियों में तो महाकवि की कला अत्यंत उच्चता तक पहुँच गई है :—

बीती विभावरी जाग री।
अम्बर पनघट में डुबो रही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तारावट ऊषा नागरी।
खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा,
किसलय का अञ्चल डोल रहा।
लो यह लतिका भी भरलाई—
मधु मुकुल नवल रस गागरी।

सर्वांशेन गीत-काव्य-क्षेत्र में प्रसाद जी का स्थान पंत से बहुत ऊँचा है। यह क्षेत्र जितना उनकी प्रतिभा के अनुकूल है उतना पंत की प्रतिभा के लिए नहीं। उनके गीतों का प्रवाह, आचार्य विनय-मोहन शर्मा के शब्दों में, "शरत कालीन सरिता के समान कलकल ध्वनि से वीती वातें कहता हुआ सा बहता है।" जहाँ तक पंत जी के गीतिकवि होने का है वे "आवेश प्रधान कवि नहीं है—अतः उनमें वह अग्नि प्रायः नहीं मिलती जो गीति-काव्य का प्राण है—और यदि है भी तो मंद मंद सुलगती है, उसमें विस्फोट कभी नहीं होता।"[1] एक अन्य आलोचक—श्री केशरी कुमार—तुलनात्मक आलोचना करते हुए लिखते हैं—" प्रसाद के गीतों में चित्रमयता और लाक्षणिकता, कल्याण, अनुभूति, वैज्ञानिक सूक्ष्मता और भावना की सुकुमारता, काव्य और संगीत सभी एक घने आलिंगन में एकाकार हैं इसलिए प्रसाद के गीतों में हम एक अद्भुत आकर्षण की सृष्टि पाते हैं। पंत में संगीत की सरलता है किंतु कल्पना की वह उदात्तता और एक तांता नहीं जो हम प्रसाद के गीतों में पाते हैं और जिसके कारण अङ्गरेजी कवि शैली इतना लोकप्रिय हो गया। महादेवी वर्मा में अनुभूति की गहनता तो है, भावनाओं का उन्मेष तो है किन्तु प्रांजल व्यंजना नहीं जो प्रसाद के गीतों का एक विशिष्ट आकर्षण है। बच्चन की भाषा और अभिव्यंजना तो बड़ी मोहक है किन्तु उनकी अनुभूतियों में हृदय के उस 'जारज' रस का अभाव है जो गीतों को अमरता और स्थायित्व देता है।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८. प्रसाद-पंत एवं नारी

जहाँ मरु ज्वाला धधकती,
चातकी कन को तरसती,
उन्हीं जीवन घाटियों की,
मैं सरस बरसात रे मन !

—कामायनी ('निर्वेद' सर्ग में) श्रद्धा।

जीवन सृष्टि की प्रथम किरन से ही अंक गणित रहा है जिसकी छोटी से छोटी इकाई दो रही है—नर और नारी। दोनों ही अंक बराबर हैं—न पहला दूसरे से छोटा और न दूसरा पहले से बड़ा। फिर भी दोनों में कुछ अन्तर है—और यह 'अन्तर' ही एक को दूसरे की ओर खींचे हुए है, यह 'अन्तर' ही एक दूसरे के लिए चुम्बक शक्ति बना हुआ है, यह 'अन्तर' ही एक को एक और दूसरे को दूसरा बनाए हुए है। हाँ, यह अन्तर इतना नहीं कि सहज ही देख लिया जाय। वह अन्तर है क्या ?—मैं तो नहीं जानता—शायद आप भी नहीं जानते।

विधाता ने पुरुष एवं स्त्री के निर्माण में अत्यन्त चातुर्य दिखाया है। पुरुष के शरीर में उसने अपार वीर्य बहाकर कठिन से कठिन कार्य चुटकियों में पूर्ण करने के लिए द्वार से बाहर छोड़ दिया—उसने अपनी भुजाओं के बल से बड़े से बड़े वण्य पशु को वश में किया, महान से महान शैलशृंग को पैरों से रौंद डाला, दुर्गम से दुर्गम घाटी को खेल ही में पार कर लिया, भयंकर से भयंकर समुद्र को एक चुल्लू में ही पीलिया। और नारी ? ओह ! उसे तो विधाता ने लावण्य की प्याली बनाया जो घर के आँगन में छलकती रही, किसी कोने में बैठी चुप चाप अपने सबल प्रियतम की प्रतिक्षा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करती रही। दिवस के अवसान के समय मानव दिग्विजय करके गर्व से छाती फुलाता हुआ घर वापस आया। ऐं ! यह क्या ? नारी ने एक ही स्निग्ध चितवन से उस दिग्विजयी को विजित बना डाला। न जाने किन किन असंभावनाओं को रौंदकर आया हुआ मानव विधाता की उस आश्चर्यमयी रचना से परास्त हो गया। दूसरे दिन नारी ने नर का कार्य करने की ठानी, वह बाहर चल दी। बड़े धैर्य के साथ, दो डग ही चली होगी कि उसका शरीर पसीने से लथपथ हो गया, ओंठ सूख गए, अपनी पर्णकुटी की ओर लौट आई वह। पुरुष ने उसे अंक में भर लिया एवं रक्तिम कपोलों पर चुम्बन के चिह्न छोड़कर स्नेह भरे स्वर में कहा—"अबला !!" नारी ने भी नर के गले में अपनी प्रकंपित बाँहें डाल दीं एवं चंद्रमुख को उसके वक्ष में छिपाकर अस्फुट स्वर में बोली—"मेरे कवच !!" क्या यही वह 'अन्तर' है ? मैं तो यही जानता हूँ, शायद आप भी यही जानते हैं।

—और तभी से मानव 'कवच' बन बैठा और मानवी 'अबला'। मानव ने अपने विशाल कंधों पर उसकी सुरक्षा का भार लिया। मानवी ने भी उसकी थकान दूर करने की कसम खाई किंतु सुश्री महादेवी के शब्दों में—नारी के ही शब्दों में—'कवच बाहर की बाण वर्षा से शरीर को बचाता रहता है, परंतु अपना भार शरीर पर डाले बिना नहीं रहता।'[1] पुरुष-कवच ने भी नारी पर अपना भार डाला—बिना डाले रह ही न सका। पुरुष ने उसे फिर केवल थकान दूर करने का ही माध्यम समझा, उसे अपने इच्छित कार्य करने के लिए मजबूर कर दिया (स्नेह से कहा हुआ 'अबला' शब्द अब उसके जीवन का सत्य बन गया—कटुसत्य ! गरल सत्य !! उसे स्वतंत्र नहीं रहने दिया। उससे कहा गया कि वह बचपन में पिता

१—शृंखला की कड़ियाँ पृ० ४८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यौवन में पति एवं बुढ़ापे में अपने पुत्र के अधिकार में रहे।*) सामन्तों के लिए अब वह देह की भूख का भोजनमात्र रह गई, बस मनुष्य ने उसका पवित्र रूप—'मां' रूप—बिलकुल ही बिसार दिया। कवि के लिए भी वह मनोरंजनमात्र रह गई—वह भी तो अधिकांशतः नर ही था। उसने उसके साथ बड़ी बड़ी खिलवाड़ें की। अपनी समस्त शक्ति उसके कुचों एवं जघाओं की तसवीरें खींचने में ही व्यय कर दी। उसे पति की—अपने कवच की इतनी अनुगामिनी बना दिया कि कवच बिखर जाने के उपरांत उसे जीने का भी अधिकार नहीं दिया गया। बलपूर्वक अग्नि की लपटों में झोंक दिया गया उसे। यदि किसी प्रकार वह जीवित बच गई तो उसका दर्शन अशुभ माना जाने लगा—वैसे मनुष्य ने उसे 'रानी' कह कह कर वैश्या बनाने में कोई कसर नहीं रक्खी। पश्चिम के लेखकों ने उसके बड़े काले चित्र बनाये। डॉन क्विजोट (Don quixote) के अमर रचयिता सर्वांटीज ने कहा—'स्त्री की 'हां' और 'न' के बीच पिन भी नहीं जा सकती।'[१] एक पर्शियन कवि ने लिखा—'अल्लाह ने गुलाब, लिली, फाख्ता, शहद, मिट्टी एवं सर्प के पोत्र से स्त्री का निर्माण किया।'—गुलाब और साँप के योग से। स्टीफैन के अनुसार यदि स्त्री के समस्त विश्वासघातों को एकत्र कर लिया जाय तो 'जमीन नहीं साध सकती सूर्य गर्म नहीं कर सकता।' 'डान जुआन (Don Juan) में लार्ड बायरन (Byron) ने 'मैं कभी स्वीकृति नहीं दूँगी' और स्वीकृति दे दी'[२] लिखकर उसके प्रति अविश्वास का प्रस्ताव रख दिया। ऐम्ब्रोजी बीयर्स (Ambrose

---

*पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्रस्तु स्थविराभावे न स्त्री स्वातंत्र्य मर्हति ॥

१—Between a womans. Yes and No.
There is not room for a pin to go.

२—A little while she strove and much repented,
And whispering 'I will ne'er consent'-consent.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Bierce) के अनुसार 'क्या ही अच्छा होता कि हम नारी के हाथों में पड़ने की अपेक्षा उसकी बाँहों में गिरते।'[1] हैनरी (O. Henry) के भी ऐसे ही विचार थे।[2] महात्मा तुलसीदास ने तो उन्हें 'सहज अपावनि'[3] कह कर 'ताड़ना का अधिकारी'[4] बना दिया। वर्तमान युग के भावुक कवि से यह नहीं देखा गया। हमारे प्रसाद एवं पंत के हृदय नारी की इस दुर्दशा को देखकर हूक उठे। वे उसे मानव के बराबर बैठा देखने की साधना करने लगे—नहीं नहीं उसे नर से भी ऊँचा देखना चाहने लगे।

प्रसाद एवं पन्त दोनों ने नारियों के विभिन्न प्रकार के चित्र दिए। प्रसाद जी के नाटकों द्वारा हमें नारी जीवन के न जाने कितने रूप प्राप्त होते हैं। उनके नाटकों में नारी का अत्यन्त महत्व है। वे कल्पना भावना एवं शक्ति का पुंज बनकर आती है—हैमलेट निर्माता के अनुसार दौर्वल्य का प्रतीक[5] बनकर नहीं, सद्गुणों की ज्योति बनकर आती है 'सकल कपट अघ अवगुन खानी'[6] होकर नहीं, नर की पथ-प्रदर्शक रूप में दर्शन देती है, 'पुरुष की पूंछ' के

१—Here's to woman ! would that we could fall into her arms without falling into her hands तथा woman is as false as a feather in the wind. F. M. Piave.

२—If men knew how women pass the time when they are alone, they'd never marry.

३—सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहहि।
—रामचरित मानस (अरण्यकाण्ड ६)

४. A woman, a dog, and a walnut-tree,
The more you beat,?' em the better they be.
—Thomas Fuller

५. Frailty, thy name is woman.
—Hamlet 1-2

६. अयोध्याकांड (१६२—२)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूप में नहीं जो "कभी कभी उठाकर अलग भी रख दी जा सकती है।" यदि उनके नारी चित्रण को हम एक ही स्थान पर देखना चाहें तो हमें उनकी महानतम कृति कामायनी के पन्ने उलटने होंगे।

कामायनी में नारी के दो रूप हैं—एक श्रद्धा का और दूसरा इड़ा का। दोनों युवतियाँ हैं। एक प्रकृति की गोद में पली हैं, दूसरी सारस्वत प्रदेश के सिंहासन पर। एक कवि का आदर्शरूप है तो दूसरा यथार्थ। एक में सात्विक प्रेम का वैभव है तो दूसरी में राजसिक प्रीति का उन्माद। मनुष्य को स्त्री के समीप सात्विक प्रेम लेकर ही जाना चाहिए, राजसिक अथवा तामसिक नहीं। यदि वह प्रत्येक क्षण अपनी काम-तृप्ति की ही घात लगाता रहेगा तो उसकी वही दुर्गति होगी जो मनु की हुई। उसका उद्धार सात्विक वृत्ति के बिना नहीं हो सकता। मनुष्य को उसका महत्व स्वीकार करना पड़ेगा।

मनु ! तुम श्रद्धा को गये भूल।
उस पूर्ण आत्म विश्वासमयी को उड़ा दिया था समझ तूल।

× × × ×

जो क्षण बीतें सुख-साधन में उनको ही वास्तव लिया मान,
वासना तृप्ति ही स्वर्ग बनी, यह उल्टी मति का व्यर्थ ज्ञान।
तुम भूल गए पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की,
समरसता है सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की।

प्रसादजी के लिए नारी-हृदय अथाह प्रेम-समुद्र है—

नारी का वह हृदय ! हृदय में।
सुधा-सिंधु लहरें लेता ॥
वाड़व ज्वलन उसी में जलकर।
कंचन सा जल रंग देता ॥

और यह प्रेम पति के प्रति है शिशु के प्रति है राष्ट्र के प्रति है और है ईश्वर के प्रति। मनु के प्रति श्रद्धा का प्रेम अत्यन्त

१. कंकाल।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उच्च कोटि का है। प्रसादजी यह नहीं चाहते कि नारी पुरुष को कुछ दे और बदले में किसी वस्तु की आकांक्षिणी हो। नारी की आत्म-समर्पण केवल उत्सर्ग के लिए ही होता है, मूलधन को चक्रवृद्धि ब्याज सहित पाने की लालसा से नहीं—

इस अर्पण में कुछ और नहीं,
केवल उत्सर्ग झलकता है।
मैं दे दूं और न फिर कुछ लूँ,
इतना ही सरल झलकता है॥

मनु-जीवन के पतझर में बसन्त लाने वाली श्रद्धा ही है, वही उनके नैराश्य गगन में आशा की किरन चमकाती है वही उन्हें कर्म पथ पर डालती है वही उन्हें लगने वाली ठोकर को धीरे से समझाती है। हृदय की उदात्त वृत्तियों को दया, ममता, स्नेह अगाध-विश्वास आदि को हृदय खोलकर मनु पर लुटा देती है :—

दया, माया, ममता लो आज,
मधुरिमा लो अगाध विश्वास।
हमारा हृदय रत्ननिधि स्वच्छ,
तुम्हारे लिए खुला है पास॥

वह मनु के 'पदतल' में बहने के लिए प्रस्तुत हो जाती है—

समर्पण लो सेवा का सार,
सजल संसृति का यह पतवार।
आज से यह जीवन उत्सर्ग,
इसी पदतल में विगत विकार॥

अन्य शब्दों में नारी 'केवल श्रद्धा' हो :—

नारी! तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पगतल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में॥

नारीत्व का चरमोत्कर्ष उसके मातृत्व में है—प्रसाद जी (और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(त भी) इसे भली भांति जानते थे। श्रद्धा मानव (अर्थात् मनु द्वारा उसके पुत्र) के सम्भव से पूर्व ही उसके लिए वस्तुयें निर्मित कर लेती है। कितना स्नेह है उसमें कितनी ललक है उसमें, कितनी अधीरता के साथ वह मनु को नवनिर्मित 'कुटीर' दिखाने ले चलती है। छोटी-सी कुटी पर छोटा सा छप्पर है, कोमल लताओं का कुंज है, वातायन भी हैं और :—

उसमें था भूला पड़ा हुआ,
वेतसी लता का सुरुचि पूर्ण।
बिछ रहा धरातल पर चिकना,
सुमनों का कोमल सुरभि चूर्ण॥
कितनी मीठी अभिलाषाएँ,
उसमें चुपके से रही घूम।
कितने मंगल के मधुर गान,
उसके कोनों को रहे चूम॥

मनु यह सब कैसे समझ सकते! यह तो मातृ हृदय ही समझ सकता है। अतः वे 'गृह लक्ष्मी का गृह विधान' देखकर 'चकित' हो जाते हैं तो ठीक ही है। प्रसादजी कहते हैं—

(मनु) चुप थे पर श्रद्धा ही बोली,
'देखो यह तो बन गया नीड़।
पर इसमें कलरव करने को,
आकुल न हो रही अभी भीड़॥

× × × ×

प्रसाद की नारी सचमुच कितनी भोली है। वह मनु से और भी कहती है कि किस प्रकार वह खेलकर आया करेगा, किस प्रकार झूला झूलेगा, किस प्रकार 'अपनी मीठी रसना से वह····मधुर बोल बोला करेगा। इन पंक्तियों में सन्निहित उल्लास वस्तुतः कोई मा ही समझ सकती है—पुरुष नहीं। मनुष्य तो उसे प्रवंचना—मधुर प्रवंचना —ही समझेगा, 'द्वैत' 'द्विधा' एवं प्रेम बाँटने का प्रकार' ही मानेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रद्धा का राष्ट्र प्रेम पाठक की श्रद्धा को अनायास ही अपनी ओर खींचे रहता है। प्राणों से भी अधिक समझने वाले अपने नयन-तारे को श्रद्धा-मा-सारस्वत प्रदेश की भलाई के लिए यूँ ही छोड़ देती है:—

रह सौम्य![1] यहीं हो सुखद प्रांत,
विनिमय कर दे कर कर्म कान्त।

× × × ×

तुम दोनों[2] देखो राष्ट्र—नीति,
शासक बन फैलाओ न भीति।

मानव—भोला मानव—मा से ममता न तोड़ने की प्रार्थना करता है किन्तु श्रद्धा के लिए तो वसुधा ही कुटुम्ब है। वह संस्कृत के आचार्य के उस कथन में विश्वास नहीं करती कि अपनी भलाई के लिए देश को छोड़ दिया जाय। उसे तो, दूसरी ओर, राष्ट्र की भलाई के लिए स्वयं को त्याग देना रुचिकर लगता है। उसका सहज विश्वास था कि इडा एवं मानव के संयोग से ही सारस्वत प्रदेश का उद्धार संभव है, अतः वह अपने इकलौते पुत्र से कहती है:—

हे सौम्य! इड़ा का शुचि दुलार,
हर लेगा तेरा व्यथा भार।
यह तर्कमयी तू श्रद्धामय,
तू मननशील कर कर्म अभय॥
इसका तू सब संताप निचय,
हर ले हो मानव भाग्य उदय।
सबकी समरसता कर प्रचार,
मेरे सुत! सुन मां की पुकार॥

एक झटके के साथ राष्ट्र के लिए प्रसाद की नारी अपने स्नेह सूत्र को छिन्न भिन्न कर देती है। जिस इड़ा ने श्रद्धा के सिंदूर को

१. मानव।
२. मानव और इडा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तकीर पौंछने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी उसी पर श्रद्धा का यह पीयूष वर्षण ! भारतीय नारी !! तू धन्य है !!!

'पति-पुत्र-राष्ट्र के अतिरिक्त प्रसाद की नारी का आध्यात्मिक प्रेम भी श्लाघ्य है। नारी-जीवन की पूर्णता यथार्थतः गार्हस्थ्य एवं आध्यात्मिक पूर्णता का ही योग है। अपने इकलौते पुत्र को इड़ा को सौंपकर श्रद्धा उस पथ पर अग्रसर होती है जिसे वानप्रस्थ-पथ कहा जा सकता है। अपने प्रियतम की उँगली पकड़कर श्रद्धा 'नर्तन में निरत' (पृ. २५४)' नटेश' का दर्शन कराके साहसहीन 'निस्संबल भग्नाश पथिक' को स्मित का अवलंब दे इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया का रहस्य समझाती हुई आनन्द के उस विन्दु पर ले गई जहाँ।

समरस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती
आनन्द अखण्ड घना था।

भारतीय नारी तू स्तुत्य है ! और स्तुत्य है वह कवि जिसने तेरी ऐसी 'स्वर्ण प्रतिभा' गढ़ी !!

प्रसाद के समान पंत भी नारी के मधुर चितेरे हैं। उन्हें नारी से इतना अधिक प्रेम है कि उसके ध्यान में वे स्वयं नारी वन जाते हैं। विश्व-साहित्य का अकेला उदाहरण है यह। कवि नारी के शैशव एवं तारुण्य दोनों पर रीझा है—और इतना रीझा है कि उसे धरती से ऊपर की वस्तु बना देता है। कवि नारी के यौवन की अपेक्षा उसके शैशव पर अधिक मुग्ध है। यह बात नहीं कि उसे यौवन ही बुरा लगता है. बल्कि यह है कि उसे शैशव प्रिय है। क्यों।

सुखद यौवन ? विलास-उपवन रमणीय,
शैशव ही है एक स्नेह की वस्तु, सरल, कमनीय;

उनके 'आँसू' की वालिका अत्यंत ही मधुर है :—

अपरिचित चितवन में था प्रात,
सुधामय साँसों में उपचार,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुम्हारी छाया में आधार,
सुखद चेष्टाओं में आभार
× × ×

इसलिए— तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा स्नान;

सर्वत्र पन्त जी नारी के सौंदर्य पर मुग्ध हैं किन्तु उनका सौंदर्य प्रतिमान (Beauty Standard) रीतिकालीन प्रतिमान से सर्वथा भिन्न है। पंत के सौंदर्य में वह वाह्यात्मकता नहीं जो उन में थी। प्रारम्भ में पंत का कवि वाला को यूँ ही फटकार देता है। इस समय उसके लिए द्रुमों की मृदुछाया, इन्द्रधनुष, तरल तरंग, कोयल के कोमल बोल, ऊषा सस्मित किसलय-दल, ही सब कुछ थे। नारी के बाल-जाल, भ्रू भंग, अधरामृत कुछ भी नहीं थे। धीरे-धीरे कवि ने प्राकृतिक वस्तुओं की ओर से नारी[1] को ओर सरकना प्रारम्भ किया और एक क्षण वह भी आ गया जब वह नारी की प्रशंसा शतमुख होकर करने लगा :—

स्नेहमयि ! सुन्दरतामयि
तुम्हारे रोम रोम से नारि,
मुझे है स्नेह अपार;

अब कवि को नारी के रोम-रोम से स्नेह ही नहीं हो गया अपितु वह उसकी देवी, मा, सहचरी, प्राण—सब कुछ ही तो बन गई :—

स्वप्नमयि ! हे मायामयि !
तुम्हीं हो स्पृहा अश्रु औ, हास,
सृष्टि के उर की साँस,
तुम्हीं इच्छाओं की अवसान,
तुम्हीं स्वर्गीक आभास;

१—डा० रामानन्द तिवारी 'पार्वती' में नारी को 'प्रकृति' कहा है पृ. ८१-८२ आदि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुम्हारी सेवा में अनजान
हृदय है मेरा अन्तर्धान;
देवि ! मा ! सहचरि ! प्राण !

नारी के प्रति जितनी प्रसाद जी की श्रद्धा है उससे कम पंत की नहीं। नारी की ओर उनकी बड़ी पवित्र दृष्टि उठती है। जब वे नारी को नर की वेदाम की गुलाम देखते हैं तो उनसे बिना कहे नहीं रहा जाता :—

मुक्त करो नारी को मानव।
मुक्त करो नारी को।

वर्तमान युग ही नहीं जब वे सामंत युग की ओर नजर उठाते हैं तो उन्हें और भी अधिक दुख होता है। उनकी लेखनी मुखर हो उठती है—"सामंत युग के स्त्री-पुरुष सम्बन्धी सदाचार का दृष्टिकोण अब अत्यंत संकुचित लगता है उसका नैतिक मानदण्ड स्त्री की शरीर यष्टि रहा है। उस सदाचार के एक अचल छोर को हमारी मध्ययुग की सती और हमारी बाल विधवा अपनी छाती से चिपकाये हुई है और दूसरे छोर को उस युग की देन वैश्या। 'न स्त्री स्वातंत्र्य मर्हति' के अनुसार उस युग के आर्थिक विधान में भी स्त्री के लिए कोई स्थान नहीं और पुरुष की सम्पत्ति समझी जाती रही है। स्त्री स्वातंत्र्य सम्बन्धी हमारी भावना का विकास वर्तमान युग की आर्थिक परिस्थितियों के साथ ही हो रहा है। स्त्रियों का निर्वाचन अधिकार सम्बन्धी आन्दोलन बूर्ज्वा संस्कृति एवं पूँजीवादी युग की आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम है। सामंत युग की नारी नर की छाया मात्र रही है।[1]

वास्तव में सामंत युग में नारी विलास का उपकरण मात्र थी। उस समय के सामंत के लिए मन बहलाने के लिए रमणी अलग रहती एवं बच्चे पैदा करने के लिए पत्नी अलग। प्रत्येक दशा में अपने पति की ही बात मानना उसका धर्म था। पंत के शब्दों में :—

१—आधुनिक कवि-पर्यालोचन पृ. २६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह नर की छाया नारी।
चिर नमित नयन, पद विजड़ित,
वह चकित, भीत हिरनी सी
निज चरण चाप से शंकित !
मानव की चिर सहधर्मिणि
युग युग से मुख अवगुंठित
स्थापित घर के कोने में
वह दीप-शिखा सी कंपित !

अंतिम पंक्ति की मार्मिकता का तो कहना ही क्या ? पंत ने नर की इसी 'छाया के विरुद्ध जिहाद बोला—

सदाचार की सोमा उसके तन से है निर्धारित,
पूतयोनि वह मूल्य चर्म पर केवल उसका अंकित।
वह समाज की नहीं इकाई-शून्य समान अनिश्चित।
उसका जीवन मान, मान पर नर के है अवलंबित।
योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित,
उसे पूर्ण स्वाधीन भरो, वह रहे न नर पर अवसित।

नर के कामकाज में हाथ बटाने वाली मजदूरिनी के प्रति पंत की बड़ी श्रद्धा रही है, शायद उन्हें विश्वास है कि कड़ी महनत से उनको दिया हुआ 'अवला' विशेषण धुल जाय, शायद मनुष्य नारी को पालने वाला समझना छोड़ दे :—

नारी की संज्ञा भुला, नरों के संग बैठ,
चिर, जन्म सुहृद सी जन हृदयों में सहज पैठ,
जो बाँट, रही तुम जग जीवन का काम काज,
तुम प्रिय हो मुझे; न छूती तुमको काम लाज।
सर से आँचल खिसका है—धूल भरा जूड़ा—
अधखुला वक्ष—ढोती धुम सिर पर धर कूड़ा;
हँसती वतलाती सहोदरा सी जन जन से,
यौवन का स्वास्थ्य झलकता आतप सा तन से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवि को यही सभीष्ट है कि नारी नर के साथ खुलकर मैदान में कार्य करे। ऐसा करने से, पन्त के विचार से, नर के मुँह पर जूता सा लग जायगा और फिर वह यह नहीं सोच पायगा कि उसके पेट भरने का ठेका उसी ने ले लिया है, अतः वह (नारी) उसी के आधीन है, मनुष्य जो चाहे उसके साथ वही करे। पिछले साल में वही तो था :—

क्षुधा काम वश गत युग ने
पशु बल से कर जन शासित,
जीवन के उपकरण सदृश
नारी भी कर ली अधिकृत !

यह बात पंत को कतई पसंद नहीं। वे कह उठे :—

मुक्त करो जीवन संगिनि को,
जननि, देवि की आहत,
जग जीवन में मानव के संग,
हो मानवी प्रतिष्ठित।

यही नहीं अन्यत्र भी वे नारी-स्वातंत्र्य का शंख फूँकते हैं। वे तो यहाँ तक चाहते हैं कि नर नारी का भेद ही न रहे, वे दो शिविर ही न रहें जिसमें एक में नर-समाज और दूसरे में नारी-समाज बैठा रहे :—

छोड़ नहीं सकते यदि जन।
नारी मोह पुरुष की दासी उसे बनाना,
देह द्वेष औ काम क्लेश के दृश्य दिखाना।
तो अच्छा हो छोड़ दें अगर।
हम समाज में द्वन्द्व स्त्री-पुरुष में बँट जाना,
स्नेह युक्त सब रहें परस्पर।
नारी हो स्वतन्त्र जैसे नर॥
देव द्वार हो मातृ कलेवर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार नारी को 'पूर्ण स्वाधीन' कर 'प्रतिष्ठित' मानवी के लिए पंत ने कोई भी कसर नहीं छोड़ी है। जब कभी जहाँ भी उन्हें अवसर मिला है, उन्होंने नारी को पुरुष के बराबर बिठाने का प्रयत्न किया है। जहाँ तक प्रसादजी का प्रश्न है वे स्त्रियों को पहले से ही पुरुषों का उद्धारक मानते हैं, उसके समस्त प्रश्नों का उत्तर मानते हैं किंतु वे स्त्री को इतना स्वच्छन्द होने देना नहीं चाहते जितना पंत। यह निश्चित है कि पुरुष का उद्धार नारी से होगा, किन्तु नारी को भी सदैव पुरुष-साहाय्य अभीप्सित रहेगा—ऐसी उनकी धारणा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६—प्रसाद एवं पंत का प्रकृति चित्रण

"तुम लोगों ने नगर बना कर धोखे की टट्टियों और जालों का प्रसार किया है, तुम्हीं मुँह के बल गिरोगे। लौट चलो नैसर्गिक जीवन की ओर, क्यों कृत्रिमता के पीछे दौड़ लगा रहे हो ?"

—श्री जयशंकर प्रसाद
'एक घूँट' में।

प्रकृति मानव की चिर सहचरी रही है। आदि मानव ने जब आँख खोली होगी, प्रकृति के विभिन्न व्यापारों को अपने चारों ओर देखा होगा। "प्रारंभ से (ही) प्रकृति अपनी ममतामयी क्रोड़ में मानव को धारण करती और उसका पोषण करती आई है। वायु व्यंजन करता, निर्झरों का कल-कल शब्द संगीत सुनाता, नक्षत्रगण गुप-चुप कहानियाँ कहते, कलियाँ चुटकी बजाकर पास बुलातीं चंद्रिका खिल-खिलाकर हँस पड़ती, सूर्य अपनी ज्योति विकीर्ण कर देता और शीतल मंद सुगंधित समीर नवीन स्फूर्ति का संचार कर देता है।"[1] जब मानव बड़ा हुआ तब भी उसने अपने अपनी धातृ-प्रकृति को भुलाया नहीं। निस्संदेह उसने अपने साथी मानव को "सबसे सुन्दरतम" कहा, फिर भी कल-कल निनादिनी सरिताएँ, परी जगत की कथाएँ कहते हुए सितारे, अज्ञात लोक का रहस्य बतलाता हुआ चाँद, सुनहरे तीर बरसाती हुई जयलक्ष्मी-सी उषा, दिवसावसान का लोहित गगन, मेघमय आसमय से परी के समान धीरे-धीरे उतरती हुई संध्या-रानी, बहार की बयार, हठीली कलियों को मनाता हुआ नशीला भ्रमर, कहीं दूर टीले पर खड़ा हुआ

1—हिन्दी-काव्य में प्रकृति-चित्रण पृष्ठ ११।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पारिजात का वृक्ष कवि से अनदेखे नहीं रह सके। उसे आश्चर्य हो गया कि उसकी रंगिणि ने 'प्रमथ रश्मि का आना' जाना तो जाना कैसे ? बीच में मनु की संतान, स्वर्ण के पीछे बावली होगई। कवि कराह उठा—"आह ! हम दुनियाँ में कितने लिप्त हैं कि अपना समस्त समय कमाने-उड़ाने में ही व्यतीत कर देते हैं। हम अपनी प्रकृति को नहीं देखते—कैसी विडम्बना है, यह !"[1]

मनुष्यकृत कृत्रिम वस्तु व्यापारों के अतिरिक्त जो कुछ स्वाभाविक है उसे ही विद्वानों ने प्रकृति कहा है। प्रकृति अत्यंत विस्तृत है। संसार का कार्य हो प्रकृति के रंगमंच पर चलता है। मनुष्य से इतर बहुत से चेतन प्राणी हैं यथा पशु,पक्षी कीट आदि। इन चेतन मनुष्येतर प्राणियों के अतिरिक्त जड़ वस्तुएँ भी हैं यथा नदी, पर्वत, टीले, सूर्य, चंद्र, उषा आदि। साहित्य में, अतः प्रकृति का अर्थ यही मनुष्येतर चेतन प्राणी एवं अचेतन वस्तुएँ हैं।

यदि हिन्दी-काव्य-साहित्य पर दृष्टिपात किया जाय तो हम देखते हैं कि प्रत्येक काल में कवियों का दृष्टिकोण प्रकृति की ओर भिन्न भिन्न रहा है। वीर गाथा कालीन कवि अधिकांशतः योद्धा ही थे, अथवा भाट थे जो प्रकृति-क्षेत्र से दूर ही रहते थे, वे तो अपने सामंतों के एक कान को नूपुरों की रुनझुन एवं दूसरे को असि-झंकार सुनाने के लिए ही सामान जुटाते रहते थे।

भक्तिकाल में कवि प्रकृति की ओर कुछ अवश्य सरके। कृष्ण कवियों ने ब्रज के लता, कदम्ब करील, चन्द्रमा, कुँज आदि को अपने काव्य में स्थान दिया। राम-कवियों ने धूरजटी पंचवटी, सरजूतट, चित्रकूट आदि को निहारा। राम-कृष्ण की बाल लीलाओं

१—The world is too much with us; late and Soon.
In Getting and Spending we lay waste our powers.
Little do we see in Nature that is ours;
We have given our hearts away—a Sordid boon.
W. Wordsworth.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के उपमानों के लिए भी तुलसी-सूर प्रकृति की ओर मुड़ते दिखाई पड़ते हैं। जायसी ने उद्दीपन रूप में प्रकृति का यथेष्ट चित्रण किया, उन्होंने प्रकृति में अनन्त ज्योति का भी प्रतिविम्ब पाया।

रीतिकालीन कवि तो राजाश्रित थे अतः वे दरबारों में बैठकर ही प्रकृति को देख लेते थे। 'बार-बार कंचुकी उकासित कसति है" को बार बार निहारने के अतिरिक्त उन बेचारों को इतना अवकाश ही कहाँ था कि वे अपनी आँखों से स्वयं प्रकृति निरीक्षण करते। इतना ही नहीं केशव ने तो प्राकृतिक वस्तुओं की सूची दी है जिनका नाम ले देना ही प्रकृति-चित्रण है। उदाहरण के लिए—

देश, नगर, वन, बाग, गिरि, आश्रम, सरिता, ताल।
रवि, शशि, सागर, भूमि के भूषण ऋतु सब काल॥

इतना ही नहीं फिर उन्होंने एक-एक वस्तु में वर्णन की जाने वाली वस्तुओं की नामावली दी है। उनके अनुसार जहाँ कहीं भी वन-वर्णन हो वहाँ निम्न वस्तुएँ आवश्यक हैं:—

सुरभी, इभ, वन जीव बहु, भूत, प्रेत, भय भीर।
भिल्ल भवन, वल्ली, विटप दल वरनहु मतिधीर॥

यह था हमारे रीतियुग का प्रकृति-चित्रण। समूचे काल में यह परंपरा चलती रही। 'चन्दन न वने वने' को ताले में बंद कर दिया गया। उस समय तो विहार में भी "एला ललित लवंग संग पुङ्गीफल" सोहने लगे!

भारतेन्दु युग में कवियों ने रीति-कालीन कवियों की अपेक्षा प्रकृति को कुछ अधिक देर तक देखा। भारतेन्दु से भारत-दुर्दशा नहीं देखी गई अतः वे समस्त भारतियों के साथ मिलकर रोने का उपक्रम रचते रहे। हाँ, समय मिलने पर अपने 'श्यामा—श्याम' की केलि-क्रीड़ाओं के साथ साथ प्रकृति का वर्णन भी इन्होंने खूब किया। उद्दीपक और अलंकार रूप में इन्होंने प्रकृति का अधिक उपयोग किया। 'सत्य हरिश्चन्द्र' के 'नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति' एवं 'चंद्रावली' के 'तरनि तनूजा तट तमाल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तरुवर बहु छाए' से प्रारंभ होने वाले भागीरथी एवं यमुना के वर्णन अलंकरण मात्र रह गए—प्रकृति पर्दे के पीछे चली गई! इस काल में प्रकृति चितेरों में पं. श्रीधर पाठक का स्थान सर्वोच्च है। इन्होंने प्रकृति के आँगन में स्वयं जाकर उससे बातचीत की तब उसके चित्रण के लिए लेखनी उठाई 'काश्मीर सुषमा' नामक कविता हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण की अक्षय निधि है :—

प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति,
पल-पल पलटति भेस छनिक छवि छिन छिन धारति।
विमल अम्बु सर मुकुरन मँह मुख बिंब निहारति।
अपनी छवि पै मोहि आपही तन -मन वारित।

कवि ने निश्चय ही अपनी आँखों से प्रकृति को अपना रूप सँवारते देखा।

द्विवेदी युग में आकर प्रकृति ने कविता में विशिष्ट स्थान पा लिया। आचार्यजी की आज्ञानुसार "स्त्रियों की चेष्टाओं का वर्णन" त्यागकर कवि प्रकृति के क्षेत्र की ओर बढ़े। सर्व श्री मैथिलीशरण, उपाध्यायजी, रामनरेश त्रिपाठी, आचार्य शुक्ल सबने अपने-अपने काव्य में प्रकृति-वर्णन किया। यह दूसरा प्रश्न है कि वह चित्रण कैसा हुआ। आचार्य शुक्ल तो प्रकृति के अनन्य पुजारी थे—"मैं मिर्जापुर की एक एक झाड़ी, एक-एक टीले से परिचित हूँ; उसके टीलों पर चढ़ा हूँ, बचपन मेरा इन्हीं झाड़ियों की छाया में पला है।........लोगों की अंतिम कामना रहती है कि वे काशी में मोक्ष लाभ करें किंतु मेरी अंतिम कामना यही है कि अंतिम समय मेरे सामने मिर्जापुर का वही प्रकृति का दिव्य-खंड हो जो मेरे मन में, भीतर बाहर बसा हुआ है।" अतः इनके प्रकृति-वर्णन उद्दीपन एवं अलंकार की बेड़ियों से मुक्त हैं। वे प्रकृति के नैसर्गिक रूप के पुजारी थे, यही कारण है कि इनके प्रकृति-चित्रण में ग्राम्य वातावरण एवं वन्य दृश्यों के अधिक दर्शन होते हैं। यह कालिदास एवं वाल्मीकि की परंपरा में आते हैं। ऐसे वर्णन उनके 'बुद्ध-चरित'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में राशि राशि प्राप्त होते हैं। समूचे हिन्दी-साहित्य में ऐसे प्रकृति-चित्रण के दर्शन (बल्कि उससे भी अधिक) केवल "पार्वती" में ही प्राप्त होते हैं, अन्यत्र नहीं। उपाध्यायजी ने प्रकृति को चारों ओर से देखा, प्रकृति में इन्होंने अनुराग, सहानुभूति एवं सम्वेदना सन्देश ग्रहण एवं परम सत्ता के दर्शन किए। मैथिलीशरणजी ने भी प्रकृति की तस्वीरें खींची। पंचवटी, यशोधरा, साकेत आदि में प्रकृति-चित्रण का बाहुल्य है—वैसे प्रारंभ में "इनके प्रकृति-त्रिण यत्न साध्य हैं। कवि को चित्रण के लिए वस्तुयें एकत्रित करनी पड़ी हैं।"[1] अस्तु।

जैसा अन्यत्र लिखा जा चुका है द्विवेदी युग की स्थूल भौतिकता के समक्ष युवक कवि सहम जाते थे जिसके कारण उनकी कोमल भावनाओं का दम उनके मन में ही घुट जाता था। उधर अंग्रेजों के क्रूर दमन चक्र के कारण भारतीयों की दशा अत्यन्त दयनीय हो चली थी। फलतः प्रकृति की एक साथ ही दुहरी उपयोगिता हो गई। प्रथम कवि ने जगत की जलन के शमन हेतु प्रकृति के शीतल अंचल को थाम लिया, उसके शीतल कुंजों में शांति की साँस से कठोर जगत से जूझने के लिए बल प्राप्त किया, दूसरे इतिवृत्तिकालीन दबी हुई वैयक्तिक प्रणय-भावना की अभिव्यंजना के हेतु प्रकृति के रूप में उन्हें सबल माध्यम भी प्राप्त हो गया। इस युग में, अतः "प्रसादजी की काव्य धारा के पावन सलिल सिंचन से एक नवीन काव्यतरु विकसित हुआ। प्रसादजी का 'कानन-कुसुम' उनके मधुसिक्त काव्य-स्रोत से प्रस्फुटित 'झरने की लहर' में रहस्यवाद के शीतल सुरभित समीर से अठखेलियाँ करता हुआ पंत के मंजुल मृदुल पल्लवों के मध्य सुशोभित हुआ। निराला की ओजस्विनी वाणी ने शक्ति का संचार किया और महादेवी ने प्रकृति और पुरुष का एकीकरण किया।" छायावाद के

१—डा० किरण कुमारी गुप्ता (अपनी थीसिस में)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस युग में प्रकृति का दोनों हाथों से वर्णन किया गया। प्राचीन काव्य-कार प्रकृति के गोरे गात पर ही मर मिटे, उसके घूँघट को किसी ने भी नहीं उघाड़ा—यह क्रांतिकारी कार्य प्रसाद एवं पंत ने किया। आचार्य नंद नंददुलारे बाजपेयी के शब्दों में "साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि.......उन्होंने ही। (प्रसादजी ने) सर्वप्रथम उदय होती हुई ताराओं और खिलती हुई कलियों का सौंदर्य देखा।.......महाराणा प्रताप और अहिल्याबाई के नामों में ही सब कुछ नहीं है, इस विराट विश्व में उनके बाहर भी कुछ है, यह बात हिन्दी में प्रसादजी ने सबसे पहले हमें समझने दी।" उन्होंने प्रकृति के आवरण के भीतर मुसकाती हुई मानवी को निहारा। वह मानवी कल्पना की मानवी नहीं अपितु सच्ची मानवी से भी अधिक सच्ची थी। फिर क्या था? कवि उससे वार्तालाप करने लगे, अपने मन की कहने तथा उसके दिल की छिपी बात वे रोक टोक सुनने लगे, गुंजरित भ्रमर द्वारा लजाती हुई कली की छेड़छाड़ देखने लगे; शरमाती हुई शैफालिका के कपोलों पर शिशिर द्वारा छोड़े गए चुम्बन के चिन्ह देखने लगे, द्रुमों की मृदु छाया छोड़कर बाला के बाल-जाल में उलझने के लिए सर हिलाने लगे, मधुपकुमारी से मीठे गान सीखने की साधना करने लगे।

पन्त का तो शैशव ही प्रकृति के प्रांगण में खेला था अतः उन्हें कवि बनाने का श्रेय प्रकृति को ही है—"जब मैंने पहले लिखना प्रारंभ किया था तब मेरे चारों ओर केवल प्राकृतिक परिस्थितियाँ तथा प्राकृतिक सौंदर्य का वातावरण ही ऐसी सजीव वस्तुएँ थीं जिससे मुझे प्रेरणा मिलती थी।.......फलतः मेरी प्रारंभिक रचनाएँ प्रकृति की लीलाभूमि में लिखी गई हैं। पर्वत प्रान्त की प्रकृति के नित्य नवीन तथा परिवर्तनशील रूप से होकर मैंने स्वतः ही जैसे किसी अंतर्विवशता के कारण पक्षियों तथा मनुष्यों के स्वर में स्वर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिलाकर"""""पहले पहल गुनगुनाना सीखा है।"[1] उधर प्रसादजी ने भी प्रकृति में अपना जैसा ही स्पंदन देखा एवं वर्ड्सवर्थ की भांति किसी सत्ता की झलक प्राप्त की। इस प्रकार हमारे दोनों कवि प्रसाद एवं पंत अपने कैशोर्य से ही प्रकृति के अभिन्न सखा बन बैठे। अतः यदि कहा जाय कि प्रकृति का जितना सुघड़ एवं चारु चित्रण इन दो कवियों ने किया उतना समूचे हिन्दी साहित्य में नहीं हुआ तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

वैसे तो प्रकृति प्रत्येक कवि के लिए एक अलग ही संदेश लाती है, कवि की प्रकृति संबंधिनी चेतना एवं दृष्टिकोण भिन्न ही होते हैं फिर भी प्रकृति-चित्रण की, बा० गुलाबराय के अनुसार,[2] षट् विधाएँ हैं :—

(१) आलम्बन,
(२) उद्दीपन,
(३) अलंकार योजना,
(४) उपदेश ग्रहण,
(५) मानवीकरण एवं,
(६) ईश्वर संबंधी अभिव्यक्ति का माध्यम।

१. आलम्बन—संस्कृत कवियों ने वाल्मीकि, कालिदास आदि ने प्रकृति का चित्रण आलम्बन रूप में भूरि भूरि किया है। इसमें प्रकृति स्वयं साध्य बन जाती है। कवि प्रत्येक वस्तु का निरीक्षण करके उनकी ऐसी संश्लिष्ट तसवीर खींचता है कि पाठक को ऐसा जान पड़ता है। मानो वे समस्त वस्तुएँ उसके समक्ष प्रस्तुत हैं। इसमें कवि का प्रकृति के साथ सीधा रागात्मक संबंध हो जाता है और वह 'जो है सो है' में विश्वास करके अपनी भावनाओं का प्रकृति पर आरोप नहीं करता। उसे जैसी प्रकृति दीखती है वैसी

१—'मैं और मेरी कला'।
२—सिद्धान्त और अध्ययन (द्वि. सं.) पृ. ९३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की वैसी ही कागज पर उतार देता है। ऐसा करते समय कवि को कभी तो प्रकृति में अनिर्वाय कोमलता दिखाई पड़ती है, कभी अकह परुषता। आचार्य शुक्ल प्रकृति के शुद्ध वर्णनों के बड़े हामी थे। उन्होंने स्वयं इस प्रकार के वर्णन किए थे। उन्होंने 'आमंत्रण' नामक अपनी एक कविता में प्रकृति का यथार्थ चित्रण करते हुए लिखा है :—

कविता वह हाथ उठाए हुए, चलिए कविवृंद बुलाती जहाँ।

वे इस पंक्ति द्वारा हिन्दी कवियों से प्रकृति की ओर लौट चलने का आग्रह करते हैं। रूसो (Rousseau) भी तो प्रकृति को ओर वापस चलने को कहा करता था।[1] "(प्रकृति के नाना रूप जिन नाना भावों की सचमुच व्यजना कर रहे हैं उन्हें छोड़ अपने परिमित अंतःकोटर की वासनाओं से उन्हें छोपना एक झूठे खेलवाड़ के ही अन्तर्गत होगा। यह बात मैं स्वतन्त्र दृश्य विधान के संबंध में कह रहा हूँ। जिसमें दृश्य ही प्रस्तुत विषय होता है। जहाँ किसी पूर्व-प्रतिष्ठित भाव की प्रबलता व्यंजित करने के लिए ही प्रकृति के क्षेत्र से वस्तु-व्यापार लिए जायँगे वहाँ तो वे उस भाव में रंगे दिखाई ही देंगे। पद्माकर की विरहणी का यह कहना कि 'किंसुक गुलाब कचनार औ अनारन की डारन पै डोलत अंगारन में पुंज हैं" ठीक ही है। पर बराबर इसी रूप में प्रकृति को देखना दृष्टि को संकुचित करना है। अपने ही सुख-दुःख के रंग में रंगकर प्रकृति को देखा तो क्या देखा? मनुष्य ही सब कुछ नहीं है। प्रकृति का अपना रूप भी है।"[2] और प्रकृति के इस "अपने रूप" का ही अंकन आलम्बन रूप है। कुछ आलोचकों का विचार है कि प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन हो ही नहीं सकता। उनकी धारणा है कि प्रकृति-वर्णन केवल उद्दीपन रूप में ही संभव

१—Return to Nature, Back to Nature.

२—हि. सा. का इतिहास—पृ. ७१९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। कवि आलम्बन रूप में वर्णन करेगा ही कैसे ? उसकी भावना का झीना रंग प्रकृति पर पहले ही चढ़ जायगा। इस पर शुक्ल जी लिखते हैं—'वन, पर्वत, नदी, निर्झर, मनुष्य पशु, पक्षी इत्यादि जगत की नाना वस्तुओं का वर्णन आलम्बन और उद्दीपन दोनों ही दृष्टि से होता रहा है। प्रबंध काव्यों में बहुत से प्राकृतिक वर्णन आलम्बन रूप में ही है। कुमार संभव के आरम्भ का हिमालय वर्णन और मेघदूत के पूर्व मेघ का नाना प्रदेश वर्णन उद्दीपन दृष्टि से नहीं कहा जा सकता। इन वर्णनों में कवि ही आश्रय है जो प्राकृतिक वस्तुओं के प्रति अपने अनुराग के कारण उनका रूप विवृत करके अपने सामने भी रखता है और पाठकों के भी।"[1] इसमें सन्देह नहीं की प्रकृति का चित्रण आलम्बन रूप में भी हो सकता है और होता है। आचार्य शुक्ल के लिए तो ऐसा चित्रण ही रसात्मक है।

आधुनिक काल में आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण उतना नहीं हुआ जितना पिछले खेवे के कवियों द्वारा फिर भी प्रचुर है। प्रसाद ने प्रकृति के दर्शन उसकी प्रत्येक मुद्रा (mood) में किए हैं—वह कभी उन्हें ऋजु-सरल लगी है, कभी कुटिल-विकराल। प्रकृति का कोमल रूप देखिए :—

वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का
आज लगा हँसने फिर से।
वर्षा बीती हुआ सृष्टि में
शरद्-विकास नए सिरसे॥
नव कोमल आलोक बिखरता,
हिम संसृति पर भर अनुराग।
सित सरोज पर क्रीड़ा करता,
जैसे मधुमय पिंग पराग॥

१—काव्य में रहस्यवाद—पृ. २४-२५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंतिम पंक्ति को कवि ने अलंकार भी पहना दिया है।
प्रकृति का भव्य रूप निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है।

सबल तरंगाघातों से उस
क्रुद्ध सिंधु के विचलित सी।
व्यस्त महा कच्छप सी धरणी
ऊभ चूभ सी विचलित सी॥
करका-क्रंदन करती गिरती
और कुचलना था सबका।
पंचभूत का यह तांडवमय
नृत्य हो रहा था कब का॥

शरत्कालीन वष्य प्रकृति निहारिए:—

स्वर्ण शालियों की क़लमें थीं,
दूर दूर तक फैल रहीं।
× × ×
अचल हिमालय का शोभनतम,
लता कलित शुचि सानु शरीर॥

प्रकृति का विकराल रूप तो सर्व प्रसिद्ध ही है:—

हाहाकार हुआ क्रन्दनमय
कठिन कुलिश होते थे चूर।
हुए दिगंत विधर भीषण रव,
बार बार होता था क्रूर॥
दिग्दाहों से धूम उठे
या जलधर उठे क्षितिज तट के।
सघन गगन में भीम प्रकंपन,
झंझा के चलते झटके।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और प्रकृति का यह भीषण चित्र किसे नहीं याद होगा—

उधर गरजती सिंधु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों सी।
चली आ रहीं फेन उगलतीं।
फन फैलाए व्यालों सी॥

'सिंधु लहरियों' को 'फन फैलाए व्यालों सी' कहना कितना समीचीन है! इन भयावह लहरियों का चित्र मानस-चक्षुओं के समक्ष अनायास ही थिरक उठता है।

यदि वसन्त का यथातथ्य चित्र देखना हो तो 'कानन-कुसुम' के पन्ने उलट निकालिए, यह पंक्तियाँ आपको दीख जाएंगी।

पूर्णिमा की रात्रि सुखमा स्वच्छ सरसाती रही।
इन्दु की किरणें सुधा की धार बरसाती रही॥
युग्म व्योम व्यतीत है आकाश तारों से भरा।
हो रहा प्रतिबिम्ब पूरित रम्य यमुना जल हरा॥
कूल पर का कुसुम कानन भी महा कामनीय है।
शुभ्र प्रासादावली की भी छटा रमणीय है॥
है कहीं कोकिल सघन सहकार को कूजित किए।

इन पंक्तियों में कवि ने आचार्य शुक्ल की उस बात का कि "प्रकृति का अपना रूप भी है" पूर्णतः अनुवाद कर दिया है। वसंत में कवि ने जो कुछ, जैसा भी निहारा है, अंकित कर दिया है। अपने भावों से उस वर्णन को कवि ने रँगा नहीं है। 'चित्राधार' के पराग-खण्ड में भी प्रकृति आलम्बन रूप में ही दिखाई देती है।

पन्त मूलतः 'सुन्दर' के ही कवि हैं। जगत की कठोरता की ओर डग बढ़ाते उन्हें सदैव संकोच-सा रहा है। प्रकृति में भी उनका मन उन्हीं में अधिक रमता है जहाँ कोमलता एवं सुषमा का साम्राज्य होता है। प्रसाद की भाँति उनकी दृष्टि प्रकृति के कठोर से कठोर दृश्य निहारने के लिए तैयार नहीं या शायद समर्थ नहीं। दूसरे उनके द्वारा प्रणीत किसी प्रबंध-काव्य के अभाव में उनके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वारा संश्लिष्ट चित्रण कम ही प्राप्त हैं। पक्षियों का वर्णन देखिए:

बालू के साँपों से अंकित
गंगा की सतरंगी रेती।
सुन्दर लगती सरपत छाई
तट पर तरबूजों की खेती॥
अँगुली की कंघी से बगुले
कलँगी सँवारते हैं कोई।
तिरते जल में सुरखाब, पुलिन
पर मगरौठी रहती सोई॥
डुबकियाँ लगाते सामुद्रिक
धोती पीली चोंचें धोबिन।
उड़ अबाबील, टिटहरी, बया
चारा चुगते कर्दभ, कृमि, तृन॥

निम्न पंक्तियों में चिड़ियों का चित्र देखिए जो कवि ने ज्यों का त्यों उतार दिया है :

बाँसों का झुरमुट—
संध्या का झुटपुट।
हैं चहक रही चिड़ियाँ
टी-वी-टी-टुट्-टुट्!

पन्त ने अपने 'आधुनिक कवि' में जो प्रथम कविता दी है उसका चित्रण भी आलम्बनरूप से ही है। इसमें कवि ने प्रकृति-माया को नारी प्रेम से श्रेष्ठतर बताया है :—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से माया,
बाले, तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?
भूल अभी से इस जग को।
तज कर तरल तरंगों को,
इन्द्र धनुष के रंगों को,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तेरे भ्रूभंगों से कैसे बिंधवा दूँ निज मृग-सा मन ?
भूल अभी से इस जग को। आदि।

'पर्वत प्रदेश में पावस' में 'पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश' का वर्णन आलम्बन रूप से ही है :—

मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बार बार
नीचे जल में निज महाकार,
जिसके चरणों में पला ताल
दर्पण-सा फैला है विशाल।

ज़रा बादल की भी बात सुन लीजिए :—

सुरपति के हम ही हैं अनुचर
जगत्प्राण के भी सहचर;
मेघदूत की सजल कल्पना,
चातक के चिर जीवनधर;
× × ×

आगे 'ग्राम्या' में भी 'ग्राम्य श्री' के वर्णन में यथातथ्य चित्रण का सौंदर्य है :

रँग रँग के फूलों में रिलमिल
हँस रही संखिया मटर खड़ी,
मखमली पेटियों से लटकी
छीमियाँ, छिपाए बीज लड़ी।
× × ×

महकें कटहल, मुकुलित जामुन,
जंगल में झरबेरी झूली,
फूले आड़ू, नींबू, दाड़िम,
आलू, गोभी, बैंगन, मूली॥
× × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गंजी को मार गया पाला,
अरहर के फूलों को झुलसा,
हाँका करती दिन भर बंदर,
अब मालिन की लड़की तुलसा।

× × ×

इसके अतिरिक्त इस रचना में न जाने कितनी प्राकृतिक वस्तुओं का वर्णन है। इस वर्णन में एक और विशेषता है—वह यह कि पूर्व की भाँति इसमें कवि की दृष्टि 'सुन्दर' तक ही नहीं गई है, उसे असुन्दर वस्तुएँ भी सुन्दर लग निकली हैं।

'चाँदनी' 'झंझा' में नीम' 'खद्योत' आदि भी ऐसी ही रचनाएँ हैं जिनमें प्रकृति का आलंबन रूप से वर्णन किया गया है—हाँ, उनमें अलंकरण एवं मानवीकरण अवश्य सरक आए हैं।

२. *उद्दीपन*—शृंगार में हमारे यहाँ उद्दीपन का बड़ा महत्व रहा है। आदि कवि वाल्मीकि से लेकर आजतक प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन होता आ रहा है। यह जीवन का सनातन सत्य है कि हमें अपने दुख में किसी की प्रसन्नता नहीं रुचती, इसी प्रकार जब हम सुखी होते हैं तो समझते हैं कि धरती की प्रत्येक वस्तु प्रसन्न हैं; आँसू भी हंसता है। आदि काल से मानव जड़ चेतन से स्वभावनाओं का आदान-प्रदान करता आया है। प्रसन्नता में उसे चन्द्र-ज्योत्सना, मलय पवन, अधखिली कली उसकी प्रसन्नता को बढ़ाने वाले लगते हैं एवं दुःख में बिना गोपाल के कुन्जें भी बैरिन लगती हैं,[१] चाँदनी शरीर को झुलसाती प्रतीत होती है। केशव तो यहाँ तक कहते हैं :—

फूल ना दिखाव सूल फूलत हैं हरि बिनु
दूर कर वाला माला ब्याल सी लगति है।

१—बिनु गुपाल बैरिन भई कुंजैं।
तब यह लागति अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुन्जैं॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चँवर चलाव जनि, बीजन डुलाव जनि,
'केसव' सुगंध-वायु वाय सी लगति है ॥[१]

कोलरिज (S. T. Coleridge) ने ठीक ही लिखा है कि हम मानवी में वही पाते हैं जो उसे देते हैं।[२]

हिन्दी काव्य में प्रकृति के उद्दीपन रूप में चित्रण करने में पन्ने के पन्ने रँगे गए हैं। रीतिकाल के कवियों ने तो प्रकृति चित्रण की इसी विधा की अर्चना की। यदि उनकी नायिका के 'वे' कहीं चले गए होते थे तो कवि बारहमासा गाने में कभी नहीं चूकते थे। प्रत्येक मास विरहिणी की दयनीय दशा को उद्दीप्त करता, तुलसी के राम को भी तो सीताजी के बिना नवघटाएँ तड़पाती प्रतीत होती थीं।[३] वियोगियों को (वियोगिनियों को भी) वसंत पागल बना देता एवं ग्रीष्म ?—ओह! इसका तो कहना ही क्या! इसके विपरीत संयोग में षट्ऋतुओं का सुखद वर्णन होता। जायसी की 'धनि' के लिए तो भौंरा एवं काग उसी के जलने के धुएँ के लग जाने से काले हो गए।[४] प्रश्न यह उठता है कि मानव को अपना जैसा भाव प्रकृति में कैसे भासित होता है ? इसका उत्तर प्रकृति के लाड़िले पुत्र विलियम वड्सवर्थ (W. Wordsworth) पहले ही दे गए हैं। उन्होंने लिखा है कि "उन्हें ऐसा भान होने लगा कि मानव एवं प्रकृति एक ही आत्म-तंतु से जुड़ी हुई है।[५]"

१—रसिकप्रिया।

२—"Lady, we receive but what we give."

३—घन घमण्ड घन गरजत घोरा।
प्रियाहीन तड़पत मन मोरा॥

४—पिउ सौं कहेउ संदेसड़ा हे भौंरा, हे काग।
सो धनि विरहै जरिमुई तिहिक धुँ आहम लाग।

५—To her fair works did nature like.
The human soul that through me ran.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसाद के मनु काम विह्वल हैं, वे प्रयास करने पर भी अपने को नहीं रोक पाते, उनके इस भाव को प्रकृति भी तो उद्दीप्त करने पर तुली हुई हैं :

भुज लता पड़ी सरिताओं की,
शैलों के गले सनाथ हुए।

एवं—

शिथिल अलसाई पड़ी छाया निशा की कांत।
सो रही थी शिशिर कण की सेज पर विश्रांत ॥

प्रकृति की ऐसी अवस्था देखकर किसका मन नहीं मचल उठेगा, किसकी मन-वगिया में प्रेम-कोयल नहीं कूक उठेगा ? इतना ही नहीं जब उन्होंने देखा कि प्रकृति में दो-दो वस्तुयें मिलकर एक हो गई हैं तो उनकी वासना और भी उद्दीप्त हो उठती है। उन्हें प्रकृति का प्रत्येक व्यापार गलवाहीं डाले प्रतीत होता है :

देवदारू निकुंज गह्वर सब सुधा में स्नात।
सब मानते एक उत्सव जागरण की रात ॥
आ रही थी मधुर भीनी माधवी की गन्ध।
पवन के वन घिरे पड़ते थे बने मधु अन्ध ॥
देख लो ऊँचे शिखर का व्योम-चुंबन व्यस्त।

संयोग समय मनु को प्रकृति कितनी सुन्दर दिखाई देती है—

निश्चिंत आह ! वह था कितना,
उल्लास काकली के स्वर में।
आनंद प्रतिध्वनि गूँज रही,
जीवन दिगंत के अम्बर में।
लतिका घूँघट से चितवन की,
वह कुसुम दुग्ध सी मधुधारा।
प्लावित करती मन अजिर रही,
था तुच्छ विश्व वैभव सारा।

उन्हें अपने मिलन के समय सर्वत्र मिलन दिखाई पड़ता है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनु निरखने लगे ज्यों-ज्यों यामिनी का रूप,
वह अनन्त प्रगाढ़ छाया फैलती अपरूप।
बरसता था मदिर कण-सा स्वच्छ सतत अनंत,
मिलन का संगीत होने लगा था श्रीमंत।

मिलन-वेला में मनु को विरह-संगीत कहाँ से सुनाई पड़ता ? जब मनु श्रद्धा के भयानक सौंदर्य पर अपनी हस्ती मेंटने के लिए तैयार होते हैं तो उन्हें प्रकृति में भी वही भाव गोचर होते हैं—

मधु बरसती विधु किरन है काँपती सुकुमार।
पवन में है पुलक मंथर चल रहा मधुभार॥

किंतु आगे देखिए। मनु बेचारे खिन्न हैं। प्रकृति की भी तो दशा देखिए—

पवन चल रहा है रुक रुक कर,
खिन्न भरा अवसाद भरा।

मनु की अनधिकार चेष्टा करने पर जनता तो क्रुद्ध हो ही उठती है, प्रकृति भी कुछ कुछ वैसी ही हो जाती है—

उधर गगन में क्षुब्ध हुई सब,
दैव शक्तियाँ क्रोध भरी।
रुद्र नयन खुलगया अचानक,
व्याकुल काँप रही नगरी॥

Rajani Jain
15.6.67.

निरमोही मनु के चले जाने पर श्रद्धा को प्रकृति का प्रत्येक व्यापार कचोटता सा लगता है। कोकिल की काकली उसके कर्ण कुहरों में प्रतप्त तेल सी प्रतीत होती है, शीतल समीर शरीर को झुलसाता सा लगता है। निदान कह ही उठती है वह—

""न परागों की वैसी है चहल पहल जो थी पहले।
इस तपझड़ की सूनी डाली और प्रतीक्षा की संध्या।

कविवर सुमित्रानन्दन पंत के लिए भी प्रकृति सुखद एवं दुखद दोनों रूपों में आई है। प्रसाद की भांति इनके लिए भी प्रकृति भावोद्दीपन का माध्यम बनी है। प्रसन्नता में प्रकृति भी दिखाई देती है :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डोलने लगी मधुर मधु वात ।
हिला तृण व्रतति कुञ्ज तरुपात,
डोलने लगी प्रिये ! मृदु वात,
गुञ्ज मधु गंध धूलि हिम गात ।

वियोगावस्था में यही मधुर वात नागिन के समान डसने आती है। विरहिणी को प्रकृति के मंजुल व्यापारों में कुछ भी तो रस नहीं आता इतना ही नहीं यह उसे और जलाते हैं :—

देखता हूँ जब उपवन,
पियालों में फूलों के।
प्रिये भरभर अपना यौवन,
पिलाता है मधुकर को।
नवोढ़ा वाल—लहर,
अचानक उपकूलों के।
प्रसूनों के ढिंग रुककर,
सरकती है सत्वर।
अकेली आकुलता सी प्राण,
कहींतब करती मृदु आघात।
सिहर उठता कृश गात,
ठहर जाते हैं पग अज्ञात।

—आँसू

जब कवि देखता है कि उपवन फूलों के प्यालों में भर भर कर अपना यौवन-रस मधुकरों को पिलाता है, नवोढ़ा लहरिया तट के समीप रुककर शीघ्र आगे बढ़ जाती है अर्थात् चारों दिशाओं में मिलन ही मिलन है तो उसका हृदय हूक उठता है। फिर भी पन्त का कवि अन्य कवियों से निश्चय ही उच्चतर आसन पर बैठ जाता है। उसके वियोगी हृदय को बसन्त जलाकर खाक कर देता है:

काली कोकिल सुलगा उर में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वरमयी वेदना का अंगार
आयाव सन्त घोषित दिगन्त,
करती, भर पावक की पुकार।

एवं—

धधकती है जलदों से ज्वाल,
बन गया नीलम व्योम प्रवाल,
आज सोने का संध्या काल
जल रहा जतुगृह सा विकराल।

× × ×

तथा—

अरे अब जल-जले नवल प्रवाल
लगाते रोम-रोम में ज्वाल।
आज बौरे रे तरुण रसाल,
भौंर मन मंडरा गई सुवास।

श्याम यौवन के कवि नरेन्द्र को भी तो प्रकृति तमाचा-सा लगाती जान पड़ती है:—

अपनी बात कहूँ क्या, मेरी
भाग्य--लीक प्रतिकूल हुई;
हरियाली को देख आज फिर
हरे हुए दिल के फोले,

एक क्षण वह भी आता है जब पंत का विरही कवि कह उठता है :—

मेरा पावस ऋतु-सा जीवन,
मानस-सा उमड़ा अपार मन;
गहरे, धुंधले, धुने, साँवले,
मेघों से मेरे भरे नयन।

फिर भी पन्त को प्रकृति से ईर्ष्या नहीं। वह अपने प्रिय से नहीं मिल पा रहा है तो क्या वह यह चाहे कि छाया अपने प्रिय जन से दूर बनी रहे ? शैवालिनि, चंद्रिका, अनिल आदि अपने प्रेमियों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को न चूम सकें? नहीं, वह तो ऐसा नहीं चाहता, वह अकेला ही अपनी विरह-ग्रंथि सुलझाता रहेगा :—

शैवालिनि ! जाओ मिलो तुम सिंधु से
अनिल ! आलिंगन करो तुम गगन का,
चंद्रिके ! चूमो तरंगों के अधर,
उडुगणों ! गाओ पवन वीणा बजा ।

मानववादिता (Philanthropy) का इससे बड़ा उदाहरण अन्यत्र मिलना दुर्लभ है !

इस प्रकार हमने देखा कि उद्दीपन चित्रण में प्रकृति अपना निज का महत्त्व खो बैठती है। शुक्ल जी ने जो "प्रकृति का अपना रूप भी है" लिखा वह तो आलम्बन वर्णन में ही प्राप्त होता है। इसमें तो मनोगत भावों का ही साम्राज्य रहता है, प्रत्येक दिशा में इसी की चलती है। दूसरे इन महाराज का स्वभाव भी बड़ा अजीब है—उन्हें चन्द्रमा असिधार लगता है, कोयल की पुकार भी तप्त तैल के समान लगती है, फूल तो शूल बन ही जाता है—राजहठ जो ठहरा। हमारे भाव अलैग्जैण्डर सैल्कर्क (Alexander Selkrik) की ही भाँति ऊंची मूँछ करके कह सकते हैं कि—"जहाँ तक मेरी दृष्टि जाती है, मैं ही सबका स्वामी हूँ। मेरे अधिकार में कोई भी व्यविधान नहीं हो सकता।"[1] इस प्रकार प्रकृति बेचारी भाव सम्राट् की महारानी बन जाती है—ऐसे सम्राट् की जो अपनी समस्त रानी को उसके ओंठ खोलने की भी आज्ञा नहीं देता।

३. अलंकार—मानव-मन सदैव से अलंकारानुरागी रहा है। न जानते हुए भी वह अलंकार का प्रयोग करता आया है। मानव-

१—I am Monarch of all I survey,
My right there is none to dispute;
From the centre all round to the sea,
I am lord of the fowl and the brute.
W. Cowper

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृति कटु सत्य कहने के एवं स्वीकार करने में सदा से हिचकती आई है। यही कारण है कि अपनी विष-सी बात को अमृत-सम बनाने के लिए उसे अलंकारों का सहारा लेना पड़ा है। लाला भगवानदीन के अनुसार मनुष्य का "वाह्य और अन्तर्जीवन अलंकारमय है।" ग्रामीण एवं अनपढ़ व्यक्ति भी इसका अपवाद नहीं हैं, फिर कवि का तो कहना ही क्या? वह तो अपनी सौंदर्यानुभूति सुन्दरतम शब्दों में बाँधने के लिए लालायित रहता है। वह अपने कथन को श्रोता के हृदय में उतारना चाहता है अतः कभी वह अपनी बात की किसी से समानता करता है कभी किसी से वैषम्य दिखाता है। न जाने कब से कविगण अपनी कामिनियों के मुखों को चंद्रमा, चंप्पाओं को कदली का तना, नैनों को मृग एवं खंजन के नयन कहता आया है। साम्य एवं वैषम्य दिखाने के लिए प्रकृति से अधिक और कौन सी वस्तु कवि के समीप होती है, अतः इसकी निगाह प्रकृति पर सदैव से जाती रही है। हमारे प्रसाद एवं पंत का तो कहना ही क्या? इन्होंने तो प्रकृति का अलंकार रूप में प्रचुर प्रयोग किया है।

प्रसाद का पन्त की ही भाँति सौंदर्य-प्रेम सर्वविदित है। प्रारंभ से ही इनमें अपनी अभिव्यक्ति प्रकृति के माध्यम द्वारा सबल एवं सुन्दर बनाने की भावना रही है। अलंकारों में इन्हें ही क्यों समस्त छायावादी ग्रुप को, उपमा रूपक एवं मानवीकरण अत्यन्त प्रिय रहे हैं। नेत्रों का नलिन उपमान तो इतना ही प्राचीन है जितना मुख का कमल। 'झरना' की कतिपय पंक्तियाँ देखिए:—

नील नलिन से नेत्र चपल मद से भरे,
अरुण राग रंजित कोमल हिम खण्ड से,
सुन्दर गोल कपोल.........।

एवं 'आँसू' की वे पंक्तियाँ—

मुख कमल समीप सजे थे
दो किसलय दल पुरइन के।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जल बिन्दु सदृश ठहरे कब,
उन कानों में दुख किनके !

कवि प्रसाद ने यहाँ मुख को कमल माना है—यह उपमान तो आदि काल से साहित्य-हाट में चलता आया है। इसकी चमक चली गई है, घिसन तो आ ही गई है किन्तु कानों को पुरइन के पात कहना सर्वथा नवीन वस्तु है। पुरइन एवं कानों का रूप-सादृश्य तो है ही, गुण सादृश्य भी है। पुरइन पर आप जल डालिए, वह वहाँ बिखरा-बिखरा न रहकर बिंदु की आकृति धारण कर उसे दूर चले जाने के लिए मचल उठेगा। ठीक उसी प्रकार कवि प्रसाद के प्रिय के कानों में उनके दुःख की बूँदें नहीं ठहर पातीं। वे भी दूर चली जाती हैं। यदि यहाँ सीधी शब्दावली में यह कह दिया जाता कि प्रिय के कानों में कवि का दुःख नहीं ठहरता तो पाठक पर इतना प्रभाव नहीं पड़ सकता था जितने प्रकृति से अलंकार माँग कर। इस सम्बन्ध में एक बात और है—इनके रूपक इसी प्रकार दो-दो, चार-चार पंक्तियों में ही समाप्त हो जाते हैं, सूर की भाँति वे अधिक लम्बे नहीं होते हैं। कुछ और पंक्तियाँ देखिए :—

मनोवृत्तियाँ खग कुल सी थीं सो रहीं,
अन्तःकरण नवीन मनोहर नीड़ में,
नील गगन सा शांत हृदय भी हो रहा,
बाह्य आंतरिक प्रकृति सभी सोती रही।

उपमा एवं रूपक द्वारा प्रसाद जी ने इनमें अपने अमूर्त अंतःकरण की मूर्त मनोहर नीड़' से तुलना की है। अंतःकरण को नीड़ मानकर मनोवृत्तियों को खगकुल मानना कितना उपयुक्त है! और हृदय ?—वह तो नील गगन है ही। किस कौशल से कवि ने 'बाह्य आंतरिक प्रवृत्ति' को एक ही थपकी से सुला दिया है।

श्रद्धा के सौंदर्यांकण के समय कवि ने प्रकृति के अनन्त क्षेत्र को निहारा है :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग;
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ वन बीच गुलाबी रंग।
आह वह मुख! पश्चिम के व्योम
बीच जब घिरते हो घनश्याम,
अरुण रविमण्डल उनको भेद,
दिखाई देता हो छविधाम।

संभव है हिन्दी पाठक को इस वर्णन से संतोष न हो, कवि इस विषय में भी सजग है। उसकी प्रकृति का कोष इतने से ही रिक्त नहीं हो गया, वहाँ क्या कमी है। अतः बिना साँस लिए ही कवि फिर कह निकलता है:—

या कि, नव इन्द्र नील लघु शृंग,
फोड़ कर धधक रही हो कान्त,
एक लघु ज्वाला मुखी अचेत।
माधवी रजनी में अश्रान्त॥ आदि।

पंत ने तो अलंकरण में प्रकृति की पग-पग पर उंगली पकड़ी है। मानव के सौंदर्याभिव्यंजन के लिए इन्होंने प्रकृति को ही माध्यम चुना। मुख को कमल कहना वह भी नहीं भूले:—

कमल पर जो चारु खंजन, प्रथम
पंख फड़फड़ाना नहीं थे जानते,
चपल चोखी चोटी कर पंख की,
वे विकल करने लगे हैं भ्रमर को।
—ग्रंथि।

इसको लाक्षणिकता का तो कहना ही क्या? मुख को कमल एवं नेत्रों को खंजन तो कवि न जाने कब से मानते आए हैं किंतु यहाँ तक कोई नहीं पहुँचा कि प्रारम्भ में शिशु खंजन सारल्य का मानवीकरण होता है किंतु कुछ दिनों उपरांत ही वह भी फड़फड़ाना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सीख लेता है और उसी के साथ भ्रमर को विकल करने की कला में निपुण हो जाता है। इन लाक्षणिक प्रयोगों से वस्तुतः कथन में कितना वैशिष्ट्य आ गया है, घिसे वर्तन पर कितनी चमकदार मुरादावादी कलई कर दी है उन्होंने।

क्या आप बता सकते हैं कि पंत जी की पत्नी (मेरा मतलब है उनकी 'भावी पत्नी') के नेत्रों को कौन प्रफुल्ल बना गया है? उनमें गहन नीलिमा कहाँ से रंग आई है? उन्हें चांचल्य का पाठ किसने पढ़ा दिया है? एक शब्द में उनका अलंकरण किसने किया है? सोचिए। सोच लिया? नहीं बता सकते? तो चलिए पन्त जी से ही पूछें। लीजिए वह बता निकले :—

मुग्ध स्वर्ण किरणों ने प्रात,
प्रथम खिलाए वे जलजात।
नील व्योम ने ढल अज्ञात,
उन्हें नीलिमा दी नवजात।
आकुल लहरों ने तत्काल,
उन में चंचलता दी ढाल।

—गुंजन

लीजिए आपकी ग्रंथि खुल गई। अब आप जान गए कि उनकी भावी पत्नी के नयनों को प्रफुल्ल, नीला एवं चंचल प्रकृति ने ही बनाया है—किरण ने, गगन ने, आकुल लहरों ने।

कवि अपने खिन्न जीवन की तुलना पावस-ऋतु से करता है—और ठीक ही करता है :—

मेरा पावस ऋतु सा जीवन,
मानस-सा उमड़ा अपार मन;
गहरे, धुँधले, धुले, साँवले
मेघों-से मेरे भरे नयन!
कभी उर में अगणित मृदुभाव
कूजते हैं विहंगों-से हाय!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अरुण कलियों-से कोमल घाव—
कभी खुल पड़ते हैं असहाय।

—आँसू।

यह पावस-ऋतु सा जीवन चित्र प्रकृति का अलंकार रूप में अत्यंत ही सुन्दर चित्र है।

कवि का मन उसके प्रेम-पात्र पर यूँ ही रीझ उठता है। इस चित्र को गहरा रँगने के लिए कवि प्रकृति से एक रूपक उधार ले लेता है:—

तुम्हारी आँखों का आकाश,
सरल आँखों का नीलाकाश।
खो गया मेरा खग अनजान,

कवि ने देखा होगा कि पखेरू अनंत आकाश में किस प्रकार भटक जाता है, बस प्रकृति की इसी बात को उसने अपने मन पर लागू कर दिया। इतना ही नहीं पन्त ने प्रकृति के और भी बहुत से कार्य देखे हैं, उन्होंने देखा है आवर्त में पड़कर नाव का सही सलामत तट पर पहुँच जाना असंभव-सा है। ऐसा ही साम्य उसे जीवन में प्राप्त होता है। नयन की नाव न जाने कितनी बार, गुलाबी कपोलों के ताल में आई हुई सौंदर्य-बाढ़ में डूबी है:—

लाज की मादक सुरा सी लालिमा
फैल गालों में, नवीन गुलाब से
छलकती थी बाढ़ सी सौंदर्य की
अधखुले सस्मित गढ़ों से, सीप से।
इन गढ़ों में—रूप के आवर्त से—
घूम फिर कर, नाव से किसके नयन,
हैं नहीं डूबे, भटक कर, अटक कर,
भार से दब कर तरुण सौंदर्य के ?

—ग्रंथि,

पन्त ने देखा कि घन बार बार ऊपर उठता है किंतु बार बार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नीचे गिर पड़ता है। उधर उसके स्वयं के हृदय में प्रिय की मंजुल स्मृति बार-बार उठती है एवं कुछ समय के लिए वह उसे भूल जाता है। बस, साम्य मिल गया, लेखनी दौड़ निकली :—

घिरती नीरव नयनों में
छाया छवियाँ मनमोहन।
फिर फिर विलीन होने को,
ज्यों घिर-घिर उठते हों घन॥

—गुँजन

महादेवी वर्मा की दृष्टि से भी घनों के कार्य ओझल नहीं रह सके। निम्नलिखित चार पंक्तियाँ निहारिए जिनका प्रभाव धोने से भी नहीं धुल सकता—

तरल मोती से नयन भरे,
मानस से ले उठे स्नेह घन।
कसक विद्यु पुलकों के हिमकण,
सुधि स्वाती की छाँह पलक की सीपी में उतरे,

—दीपशिखा

प्रसाद एवं पन्त दोनों ने प्रकृति का अलंकार रूप में प्रचुर प्रयोग किया है—पन्त ने कुछ अधिक किन्तु प्रसाद ने कुछ कम नहीं।

४. उदेपश ग्रहण—पुनीत भारत सदैव से महात्मताओं का मेला रहा है। आज भी यत्र-तत्र ऐसे साधु-सन्यासी प्राप्त हो जायेंगे। जो आपके न चाहते हुए भी सेंतमेंत आपको उपदेश देने लग जायेंगे। किन्तु सबसे कठिन एवं नीरस कार्य यदि विश्व में कोई है तो यही है कि हम किसी को उपदेश दें। इसका प्रमुख कारण यह है कि जिसे उपदेश दिया जाता है वह यह समझ बैठता है कि उपदेशक उसे घृणा की दृष्टि से देख रहा है अतः वह यह कहने से नहीं चूकता कि उपदेशक ज्येष्ट भावना-ग्रंथि (Superiority complex) का आखेट है। फलतः हमारे आचार्यों ने 'कान्ता सम्मत उपदेश' का ही महत्व माना है। इसका अर्थ यह है कि उपदेश इस प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिया जाय कि व्यक्ति को यह भान ही नहीं हो पाए कि उसे उपदेश दिया जा रहा है। यह बात छोटी छोटी कथा कहानियों द्वारा अत्यन्त आसानी से हो जाती है। कहानी की समाप्ति पर पाठक स्वयमेव सोच लेता है कि हमें ऐसा नहीं करना चाहिए अन्यथा ऐसा फल मिलेगा। अथवा ऐसा करना चाहिए ताकि ऐसा शुभ फल प्राप्त हो सके। कवियों ने उपदेश देने के लिए सबसे अच्छा माध्यम प्रकृति को चुना। प्रकृति के प्रत्येक व्यापार के रूप में उन्हें ऐसी राह मिल गई जिसके द्वारा वे अपने मन की बात अभिव्यक्त कर सकें। प्रकृति द्वारा उपदेश की प्रवृति श्रीमद्भागवत तक में प्राप्य है। उदाहरणार्थ यह श्लोक :—

गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः।
अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाऽधोक्षज चेतसः॥

—श्रीमद्भागवत १०—२०—१५,

वर्षा की बड़ी बूंदें पर्वत शृंगों पर गिरती हैं किन्तु उन पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसी प्रकार भगवान के ध्यान में लगे हुआ महात्मा संकटों से कभी विचलित नहीं होते। इस प्रकार भागवतकार ने पर्वत के व्याज से यह उपदेश दिया कि व्यथायें पड़ने पर धीर व्यक्ति को भी टस से मस नहीं होना चाहिए। पाठक पर इसका कुछ तो प्रभाव पड़ेगा ही—हाँ यही उपदेश यदि सीधे दे दिया जाता तो निश्चय ही श्रोता के कर्ण कुहर अन्तर्द्वार एवं बहिर्द्वार सिद्ध होते। तुलसीदास तो महात्मा थे ही, अतः उन्हें यदि प्रकृति ने उपदेशमाला दी तो अचरज नहीं—

बरषहिं जलद भूमि नियराए।
जथा नवहिं बुध विद्या पाए॥
बुन्द अघात सहहिं गिरि कैसे।
खल के बचन संत सहें जैसे॥
दामिनि दमक रही घन माहीं।
खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

× × ×

आगे चलकर प्रकृति से कवियों ने अन्योक्तियों द्वारा उपदेश ग्रहण किया। बिहारी का दोहा तो अभी आपको याद ही होगा:-

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही सौं बँध्यौ, आगे कौन हवाल॥

कहा जाता है कि राजा जयसिंह अपनी नई सलौनी के साथ विलास में इतने निमग्न हो गए थे कि वे अहर्निश प्यार की जंजीर में ही बंधे रहते। उन्हें पूजा की चिन्ता छू तक नहीं गई। फल यह हुआ कि जनता की व्यथाओं की वृद्धि आकाश चूमने लगी किन्तु महाराज को राज-काज देखने का उपदेश देकर कौन अपने मस्तक को कटाने की जोखिम में डालता। बिहारी ने उक्त दोहे को, प्रकृति का वाहन बना महाराज के समीप भेज दिया। निशाना ठीक बैठा महराज के अन्तर्चक्षु खुल गए एवं वे राज काज में भाग लेने लगे। कुनैन भी खिलादी गई किन्तु शक्कर में लपेटकर; क्वाथ भी पिला दिया गया किन्तु मधु का लेविल लगाकर; उपदेश भी दे दिया गया किन्तु 'कांता सम्मत'।

हमारे कवि तो विशुद्ध कवि हैं। उन्हें उपदेशों से क्या? प्रकृति द्वारा उपदेश दिलाकर वे कला की हत्या नहीं करना चाहते। फिर भी यत्रतत्र उन्होंने प्रकृति से कुछ बात सीखी है। शुष्क वृन्त पर मुसकराती कली मानो पन्त को उपदेश देती हैं कि जीवन में कितना ही पतझर क्यों न आवे, सदैव मुस्कराते रहना चाहिए, एवं दूसरों को भी अपनी भलाई द्वारा हंसाने का प्रयास करना चाहिए:-

हंस मुख प्रसून सिखलाते।
पलभर भी तो हंस पाओ।
अपने उर की सौरभ से।
जग का आँगन भर जाओ।

इसी प्रकार ओस-बिंदु कितने मुसकराते हैं किन्तु शीघ्र ही उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। ऐसा लगता है कि इसमें मानवजीवन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की क्षण भंगुरता का उपदेश निहित है। महादेवी वर्मा भी फलों को इतना शीघ्र मुरझाते देखकर सोच बैठती हैं :—

विकसते मुरझाने को फूल।
उदय होता छिपने को चन्द।
यहाँ किसका अनन्त यौवन।

छाया एवं कुसुम से पन्त यह उपदेश पाते हैं कि मानव को सेवा में रत रहना चाहिए। छाया दुखियों का कितना उपकार करती है। इसी प्रकार कुसुम भी अपना सौरभ सेंत-मेंत ही विकीर्ण कर देता है। 'अनित्य जग' का उपदेश भी कवि ने प्रकृति से ही ग्रहण किया है :—

वही मधुऋतु की गुंजित डाल,
झुकी थी जो यौवन के भार।
अकिंचनता में निज तत्काल,
सिहर उठती जीवन है भार।
आज पावस नद के उद्गार,
काल के बनते चिह्न कराल।
प्रात का सोने का संसार,
जला देती संध्या की ज्वाल।

इतना ही नहीं—

विपुल मणि रत्नों का छवि जाल,
इन्द्र धनु की सी छटा विशाल।
विभव की विद्युत जाल,
चमक छिप जाती है तत्काल।
मोतियों जड़ी ओस की डार,
हिला जाता चुपचाप बयार।

चींटी के माध्यम से पंत ने बहुत बड़ा उपदेश दिया और वह था—अथक परिश्रम का :

चींटी को देखा ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

× × ×

देखो ना किस भांति।

काम करती वह संतत,

\+ + +

दिनभर में वह मीलों चलती,

अथक कार्य कार्य से कभी न टलती।

\+ + +

चिर सक्रिय वह नहीं स्थाणु,

चींटी का अहर्निश कार्य देखकर ही तो कवि मानव से कह उठा—

हाँ मानव !

देह तुम्हारे ही है, रे शव।

तन की चिंता में घुल निशदिन,

देहमात्र रह गए—दबा तिन।

प्राणि प्रवर॥

हो गये निछावर

अचिर धूलि पर !!

निद्रा, भय, मैथुनाहार

—ये पशु लिप्साएँ चार

हुई तुम्हें सर्वस्व सार ?

अंत में तो कवि यहाँ तक कह देता है :—

धिक्-मैथुन-आहार-यंत्र।

कामायनी की श्रद्धा भी कलियों से उपदेश पाती है— वह यह कि मुक्त दान परमावश्यक है। यदि कलिकाएं अपने सौरभ को ही बन्द रक्खें, अपने तक ही सीमित रक्खें तो ?—

ये मुद्रित कलियाँ दल में सब

सौरभ बन्दी कर लें,

सरस न हो मकरन्द बिन्दु से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खुल कर तो ये भर लें।
सूखें, झड़े और तब कुचले
सौरभ को पाओगे;
फिर आमोद कहाँ से मधुमय
वसुधा पर लाओगे ?

कहने का तात्पर्य है कि—

सुख अपने संतोष के लिए
संग्रह मूल नहीं है,
उसमें एक प्रदर्शन जिसको
देखें अन्य वही है।

श्रद्धा इसीलिए मनु को समझा रही है,

औरों को हँसते देखो मनु,
हँसो और सुख पाओ।

× × ×

सुख को सीमित कर अपने में,
केवल दुख छोड़ोगे।

कामायनी ने मनु को प्रकृति के व्याज से कितना बड़ा उपदेश दिया। कलियों का जगत सौरभ विकीर्ण करना धर्म है, मानव का दूसरों को सुख-दान करना मोक्ष।

५-मानवी करण—वृन्त पर मुसकराते कुसुम को देखकर कवि का हग आगे नहीं बढ़ सकेगा—हठात् उसके मुँह से निकल जायगा—"वाह ! इसे तो स्वयं सौंदर्य ने ही संवारा है। कला देवी ने अपने हाथों से ही इसका निर्माण किया है। राहगीरों को अपनी पंखुड़ियों से बुलाकर सौरभ दे रहा है।" यदि उसका साथी ललक कर उसे तोड़ने चलेगा तो वह एक दम कह उठेगा—"ना ! ना !! यह तो निहारने की ही वस्तु है, छूने की नहीं।"[1] इस प्रकार वह अपलक

[1]—Beauty is only to see, not to touch.
J. Keats.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नयनों से उसकी आभा का पान करता रहेगा। दूसरी ओर यदि कोई वनस्पति विज्ञान का बन्दा वहाँ आ पहुँचे तो वह उस कुसुम की ओर निहारने की कृपा नहीं करेगा। यदि उसके साथी ने उसकी ओर इंगित कर दिया तो वह उस डाल की ओर चलेगा—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार वह अब तक चला आ रहा था—रूखा-रूखा सा, उखड़ा-उखड़ा सा, एवं भावों में बिना परिवर्तन लाये उसे बिना तोड़े नहीं रह सकेगा। ऐं! यह क्या?—तोड़ा ही नहीं वह तो उसके आंतरिक निरीक्षण (Observation) की सोच रहा है। लीजिए उसने उसकी अंखड़ियों (Sepals) एवं पंखड़ियों (Petals) का विश्लेषण कर दिया तथा उसके उत्पादक अंगों (Reproduction Parts) को देखने लगा। अब क्या है? उस वैज्ञानिक ने मासूम कुसुम के सौंदर्य को पूर्णतया विनष्ट कर दिया, सत्य एवं वास्तविकता की झोंक में लजीले सुमन की जीवन-नैया डुबो दी—उसने तो मारने के लिए ही विश्लेषण किया।[1] उसके लिए 'सुन्दर' का—जो सतत आह्लाद की वस्तु है[2] मूल्य ही क्या? वह तो 'सत्य' का खोजक है। विज्ञान का पुजारी तो महाकवि प्रसाद की इड़ा के समान है जिसके विषय में श्रद्धा नें कहा था:—

सिर चढ़ी रही पाया न हृदय।

हृदय की सौगात तो जगन्नियन्ता ने कवि को ही भेजी है। इस प्रकार हमने देखा कि एक ही वस्तु के प्रति कवि एवं वैज्ञानिक की पहुँच (Approach) नितान्त भिन्न है। कुसुम के हृदय की बात हृदय वाला कवि ही सुन सकता है, बुद्धिवादी वैज्ञानिक नहीं। अतः उससे तादात्म्य भी कवि ही कर सकता है, वह उससे बात करने निकलता है, उसके सुख-दुख की पूछ निकलता है। उसके लिए

१—'We murder to dissect;
—W. Wordsworth

२—'A thing of beauty is a joy for ever;
J. Keats

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुमन वैज्ञानिक भाई के समान अचेतन नहीं, यदि हो भी तो वह उस पर चेतनता का आरोप जो कर देगा—और प्रकृति चेतनता का यही आरोप ही मानवीकरण (Personification) है।

मानवीकरण का अफसाना वैसे तो इतना पुराना है जितना महाकवि कालिदास। उन्होंने भी यक्ष के मन की बात उसकी 'प्राणों की प्राण' तक मेघ द्वारा पहुँचवाई है! संभव है इसी से प्रभावित होकर कवितर 'हरिऔध' ने साँवरी की बात साँवरिया तक पवन द्वारा ही भेजी है।[1] फिर भी उसमें वह बात नहीं आ पाई जो आज के कवियों में है। हमें मानना पड़ता है कि मानवीकरण छायावाद की ही कमाई है। आज के मानवीकरण की सजीवता, माधुर्य एवं सौंदर्य उसमें कहाँ? प्राचीन कवियों में तो वह भूले भटके हो जाता था किन्तु छायावाद की अभिव्यंजना का तो यह परमावश्यक (Indispensable) तत्व है। इसका एक कारण, जैसा कि पूर्व ही संकेत किया जा चुका है, यह भी है कि द्विवेदीकाल में कवियों को अपनी मधुर भावनाओं को व्यक्त करने की सर्वथा मनाही थी. फलतः वे अपनी भावनाओं को प्रकृति के वस्त्र पहनाकर हिन्दी-बाजार की सैर कराने लगे, किसी को संदेह नहीं हो सका कि प्रकृति की चोली के नीचे कवियों की भावनाओं का ही साकार रूप है। ऐसे समय में कवि ने यदि 'जूही की कली' में तरुणी को रख दिया, 'चाँदनी' में मुग्धा नायिका की स्थापना करदी, रजनी को 'मुसक्याती' मानवी मान लिया तो क्या पाप किया?

यह सत्य है कि भारत-भारती भवन पर मानवीकरण की पताका सर्वप्रथम छायावाद ने ही फहराई है किंतु ऐसी ही पताका हमें पहले ही गोचर होती है। रंग भी कुछ कुछ ऐसा ही है, फहरन भी ऐसी ही है और रचना? वह तो ऐसी है ही। पर उसका काम भिन्न है और वह है समासोक्ति।

१—प्रियप्रवास में पवनदूत।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यालिंग विशेषणैः ।
व्यवहार समारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुतः ॥

अर्थात् जहाँ प्रस्तुत में समान कार्य एवं लिंग वाले विशेषणों द्वारा अन्य वस्तु का आरोप कर दिया जाता है वह समासोक्ति अलंकार है। वस मानवीकरण एवं समासोक्ति एक ही विन्दु को चूम लेते हैं। यदि उनके मध्य में वहुत ही पतली लकीर खींची जा सकती है तो वह यह है कि मानवीकरण में हम प्रकृति के समीप खड़े रहते हैं पर यह नहीं भूल जाते कि प्रकृति पर मानव-भावों का आरोप किया जा रहा है किंतु समासोक्ति में वहुधा ऐसी स्थिति आ जाती है कि प्रकृति विल्कुल पृष्ठभूमि में चली जाती है, आँखों से ओझल हो जाती है एवं अप्रस्तुत का चित्र वहुत ही गहरे रंगों में उभर आता है। 'चाँदनी' का मानवी-करण देखिए जो समासोक्ति के पनघट पर खड़ा मिलता है।

नीले नभ के शतदल पर
वह वैठी शारद-हासिनि,
मृदु करतल पर शशि-मुख धर,
नीरव, अनिमिष, एकाकिन !
वह स्वप्न-जड़ित नत चितवन
छू लेती अग जग का मन,
श्यामल, कोमल चल चितवन
जो लहराती जग-जीवन !

इसके पढ़ने से हम यह सोच लेते हैं—और ठीक ही सोच वैठते हैं—कि कवि चाँदनी का नहीं अपितु किसी मुग्धा नायिका का चित्र खींच रहा है। 'मृदु' करतल पर शशि मुख' नायिका ही रख सकती है। द्वितीय छन्द की चाँदनी की 'चितवन' तो पंतजी ही समझ पाते हैं। इसी प्रकार और भी वहुत सी रचनाएँ हैं। यह कहना ग़लत नहीं होगा कि प्राचीन समासोक्ति एवं नवीन मानवीकरण चाहे एक न हों पर दो नहीं हैं। अस्तु।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आइए अब अपने आलोच्य कवियों प्रसाद एवं पन्त के मानवीकरण पर थोड़ा सा विचार करें :—

महाकवि प्रसाद के लिए प्रकृति उद्दीपक मात्र नहीं अपितु मानव के समान ही चेतन है अतः उसी के समान वह हँसती है, रोती है, जागती है, सोती है, हाथ-मुँह धोती है, गलबाहीं डालकर अभिसार करती है। महाकवि की सर्वप्रथम वह पंक्ति देखिए जो अमर है :—

बीती विभावरी जाग री।
अम्बर पनघट में डुबो रही,
ताराघट ऊषा नागरी

इन पंक्तियों में कवि ने प्रभात का जीता जागता चित्र प्रस्तुत किया है। इसमें कवि ने गगन को पनघट एवं ऊषा की कामनी बाला है जो तारा रूपी घटों को डुबो रही है। छोटी सी बात को कवि ने कितना मीठा बना दिया है। प्रातः का ही मानवीकरण एक स्थान पर और देखिए :

उषा सुनहरे तीर बरसती,
जय लक्ष्मी सी उदित हुई
उधर पराजित काल रात्रि भी,
जल में अंतर्निहित हुई।

पराजित वीर किस प्रकार अपना मुँह ढँक लेता है एवं विजयी वीर किस प्रकार अपना मस्तक ऊँचा कर लेता है। इसी बात को तो महाकवि ने उषा पर घटा दिया है। उषा अपने किरणों के बाण लेकर आई है जिसके भय से उसकी विपक्षी रात्रि हार गई है फलतः वह हया से अपना मुँह ढँक लेती है। इसमें मानवीकरण तो है ही किन्तु एक और विशेष बात है और वह यह है कि यह पंक्तियाँ पृष्ठभूमि का भी कार्य कर रही हैं। उषा-सौंदर्य एवं आशा की प्रतीक है, रात्रि कष्ट, भय, दुख एवं नैराश्य की। पाठक जान लेता है कि अब मनु के हृदय-गगन में रात्रि का साम्राज्य नहीं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उषा का है, आशा का है, सुख का है। इसी से कुछ आगे पंक्तियाँ देखिए।

धीरे धीरे हिम आच्छादन,
हटने लगा धरातल से,
जगीं वनस्पतियाँ अलसाई
मुख धोती शीतल जल से।
नेत्र निमीलन करती मानो
प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने,
जलधि लहरियों की अँगड़ाई
बार बार जाती सोने।

(कामायनी पृ. २३)

नीचे की पंक्तियों में धारा पर नव-वधू के व्यापारों का ही तो आरोप है। नववधू ,जो प्रथम वार अपने प्रीतम की पर्यंकशायिनी होती है, प्रातः ही चुपचाप धीरे-धीरे उठ जाती है एवं शीतल जल से मुंह धोकर, नेत्र निमीलन-उन्मीलन करती हुई, अंगड़ाई लेती हुई उठती है। इसी प्रकार धरणी प्रलयोपरान्त चुपचाप जलागार से निकल रही है। और हाँ, यदि प्रियतम प्रथय रात्रि को ही जन्म जन्म की इच्छाओं का कार्य में अनुवाद कर दे तो उस वेचारी अछूती ललना की क्या दशा हो जायगी ! क्या प्रातः वह उतनी प्रसन्न हो सकती जितनी होना चाहिए ? इसके दो उत्तर नहीं हो सकते। प्रातः से ही वह मान करके ऐंठकर अपने उनसे दूर जा बैठेगी—बस वही तो धरा-वधू कर रही है, प्रथम बार ही प्रलय ने उसे झकझोर डाला, कचोटती स्मृतियाँ दे डाली उसे—

सिंधु सेज पर धरा वधू अब
तनिक संकुचित बैठी सी,
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में,
मान किए सी, ऐंठी सी।

(कामायनी पृ. २४)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस समासोक्ति, मानवीकरण, मूर्तीकरण, सांग रूपक पर कौन भर मिटेगा ?

विश्व कमल की मृदुल मधुकरी रजनी' को संबोधित करके कह उठा :—

विकल खिलखिलाती है क्यों तू ?
इतनी हंसी न व्यर्थ बिखेर,

एवं—

घूंघट उठा देख मुसकाती
किसे ठिठकती सी आती।

(कामायनी पृ० ३६)

ऐसा लगता है कि सचमुच ही कोई कोमल नारी कुछ खिलखिलाती सी, कुछ ठिठकी ठिठकी सी, अवगुंठन को ऊपर करती बढ़ी चली आ रही है। कवि को प्रकृति हंसती हुई भी दिखाई देती है :—

वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का,
आज लगा हंसने फिर से।

(कामायनी पृ० २३)

रजनी का रुदन भी कवि से अनोखा नहीं रह सका है—

रजनी की रोई आँखें,
आलोक विन्दु टपकातीं।
तम की काली छलनाएं,
उनको चुपचुप पी जातीं॥

(आँसू, ४७)

चन्द्रिका को धरती पर उतरते हुए भी कवि ने देखा है—

तार हीरक हार पहनकर, चन्द्रमुख
दिखलाती उतरी आती थी चांदनी
शाही महलों के ऊंचे मीनारों से
जैसे कोई पूर्ण सुन्दरी प्रेमिका
मंथर गति से उतर रही हो सौध से।

(महाराणा का महत्त्व)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवि पन्त की चांदनी के विषय में तो पूर्व ही कह दिया गया है। निराला जी ने तो उतरती हुई संध्या को बिल्कुल परी ही बना दिया है—

दिव सावसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है,
वह संध्या सुन्दरी परी सी
धीरे—धीरे—धीरे।
तिमरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर—
किंतु जरा गंभीर—नहीं है उनमें हास-विलास।

(परिमल पृ० १३५)

चित्र बेजोड़ है। 'धीरे—धीरे—धीरे' कहने से ज्ञात हो निकलता है कि कोई अत्यंत ही धीरे से, नमित नयनों से वढ़ा चला आ रहा है। साथ साथ सुश्री महादेवी जी की रजनी का भी मानव-रूप अवलोक लीजिए—

धीरे धीरे उतर क्षितिज से
आ बसंत रजनी।
तारकमय नव वेणी बंधन
शीश फूल-कर शशि का नूतन।
रश्मिवलय सित घन अवगुंठन
पुलकती आ वसन्त रजनी।

(नीरजा, ३)

महादेवी की रजनी भी निराला की रजनी की ही भाँति क्षितिज से धीरे धीरे ही उतर रही है। शैलों से निस्सरित सरिता को निहार कर कवि को एक दम मानव से गले में पड़ी हुई मानवी की भुजा की स्मृति हो आती है, बस उसी व्यापार का आरोप वह सरिता एवम् शैल पर कर देता है—

भुजलता पड़ी सरिताओं की,
शैलों के गले सनाथ हुए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसाद की शैल-श्रेणियों को भी तो जरा देखिए। वे किस प्रकार छींट तथा किरीट पहने सभा कर रही है। संभव है उनकी मंत्रणा गोपनीय हो अतः कृपया जरा दूर ही रहिए:—

संध्या घन माला की सुन्दर,
ओढ़े रंग विरंगी छींट,
गगन चुंबिनी शैल श्रेणियाँ
पहने हुए तुषार किरीट।
विश्व मौन, गौरव, महत्त्व की
प्रतिनिधियों सी भरी विभा,
इस अनन्त प्रांगण में मानो
जोड़ रही है मौन सभा।

कामायनी में ही (पृ० २०५) ग्रहों का मानवी-करण अत्यन्त भव्य है—

उल्काधारी प्रहरी से ग्रह
तारा नभ में टहल रहे।

टहलते हुए प्रहरी का चित्र सामने आ जाता है।

इससे अधिक कोई क्या मानवीकरण कर सकता है कि कवि ने चिंता, आशा, वासना, लज्जा जैसे भावों का भी मानवीकरण किया है। चिन्ता के विषय में कवि कहता है—

हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल लेखा,
हरी भरी सी दौड़ धूप ओ
जल-माया की चल रेखा!

कवि की 'लज्जा' क्या कह रही है :—

लाली बन सरल कपोलों में
आँखों में अंजन सी लगती।
कुंचित अलकों सी घुंघराली
मन का मरोर बन कर जगती॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली,
मैं वह हलकी सी मसलन हूँ;
जो बनती कानों की लाली।

(कामायनी पृ० १०३)

सरल कपोलों में लाली वस्तुतः लज्जा ही बन जाती है, कानों की लाली तो वह है ही और सौंदर्य की पहरेदार कौन है?— प्रसाद जी की लज्जा ही तो है।

प्रकृति के प्रिय पुत्र पंत अपनी माँ को अचेतन मान लेते—यह कैसे संभव था? जिसने उन्हें इतना बड़ा बनाया उसको वे चाहते हुए भी तो नहीं भूल सकते थे। उन्होंने अपने चारों ओर देखा। यह क्या? चारों ओर उन्हें पुष्प ही पुष्प दिखाई दिए, मधुमास की थिरकन ने उनके हृदय को अभिभूत कर दिया, आश्चर्य में निमग्न हो वह कह ही तो उठे :—

लो, चित्र-शलभ सी पंख खोल
उड़ने को है चित्रित घाटी,
यह है अल्मोड़े का बसन्त
खिल पड़ी निखिल पर्वत पाटी।

कौन ऐसा नैनसुख है जिसे अल्मोड़े की यह घाटी उड़ती न दिखाई दे।

कवि पन्त ने देखा कि जिस छाया में उसने अपने पसीने की बूंदें सुखाई हैं वह बेचारी वृक्ष के तले किस प्रकार लेटी हुई है। नहीं रहा गया उससे, पूछ ही तो बैठा वह :—

कौन पड़ी हो दमयंती सी,
क्यों तरु के नीचे सोई।
हाय तुम्हें भी त्याग गया क्या,
अलि! नल-सा निष्ठुर कोई।

कवि को वृक्ष के तले पड़ी हुई छाया को देखकर दमयंती की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

याद ठीक ही हो आती है। किन्तु यह है कौन? कवि की जिज्ञासा और भी बढ़ जाती है। उसे निहार कर उसी के सदृश कवि को न जाने कितनी वस्तुयें स्मृत हो आती है। वह एक ही साँस में पूछ उठता है—

कौन-कौन तुम परहित वसना,
म्लान मना भूपतिता सी।
वात हता विच्छिन्न लता सी,
रति श्रांता व्रज वनिता सी।
धूल धूसरित मुक्त कुंतला,
किसके चरणों की दासी।

अंत में कवि जान जाता है कि उसमें और छाया में कुछ भी तो अन्तर नहीं:—

अहा! अभागिन हो तुम मुझसी,
सजनि ध्यान में अब आया।
तुम तरुवर की छाया हो,
मैं उनके पद की छाया।

—(पल्लविनी पृ० २५)

किंतु फिर कवि को ध्यान आता है कि विरहिणी छाया तो जरा-सा अन्धेरा पाते ही अपने प्रियतम से लिपट जाती है किन्तु विरही मानव? आह!

संध्या की आभा देखकर कवि उसका परिचय पाने के लिए मचल उठता है:—

कौन तुम रूपसि कौन,
ग्रीव तिर्यक चंपक द्युतिगात।
नयन मुकुलित नत मुख-जल जात।
देह छवि छायामें दिन रात,
कहाँ रहती तुम कौन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिस प्रकार पन्त को ज्ञात नहीं कि संध्या कहाँ रहती है इसी प्रकार प्रसाद भी नहीं जानते कि रजनी किस दिशा से आती है :–

विश्व कमल की मृदुल मधुकरी,
रजनी तू किस कोने से।
आती चूम चूम चल जाती,
पढ़ी हुई किस टोने से।

पंत के बादल तो शैले (P. B. Shelley) के 'दक्लाउड' (The cloud) एवं टेनिसन (Lord Tennyson) के 'द ब्रुक' (The Brook) के समान अपना अफसाना स्वयं सुनाते हैं—

सुरपति के हम ही हैं अनुचर,
जग त्प्रण के भी सहचर।
मेघदूत की सजल कल्पना,
चातक के चिर जीवन धर।

आपने द्रुतगामी एवं झूमते दोनों प्रकार के बादल देखे हैं। पंत के बादल कभी मृग के समान भागते हैं कभी हाथी के समान झूमते हैं, कभी बहुत धीरे चलते हैं, कभी संसार को डराते हैं—

कभी अचानक भूतों का सा,
प्रकटा विकट महा आकार।
कड़क-कड़क जब हँसते हम सब,
थर्रा उठता है संसार।

'परिवर्तन' तो 'शत शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर' करता हुआ धरा के वक्षस्थल पर अपने लाखों चरण, चिह्न छोड़ता चलता है। बादलों की भांति पंत की लहरें भी अपनी कहानी स्वयं कहती हैं—

अपने ही सुख से चिर चंचल,
हम खिल खिल पड़ती हैं प्रतिपल।
जीवन के फेनिल मोती को,
ले ले चल करतल में टलमल।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गंगा का मानवीकरण निहारिए। गर्मी के कारण बेचारी दुर्बल हो गई है। चाँदनी रात में सिकुड़ी साड़ी पहने वह 'तन्वंगी गंगा' किस प्रकार लेटी है :—

शांत स्निग्ध, ज्योत्सना उज्ज्वल।
अपलक अनंत नीरव भू—तल ॥
सैकत शैय्या पर दुग्ध-धवल तन्वंगी गंगा ग्रीष्म-विरल,
लेटी हैं श्रांत, क्लांत, निश्चल!
तापस-बाला गंगा निर्मल शशि मुख से दीपित मृदु करतल,
लहरें उर पर कोमल कुन्तल।
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर लहराता तार-तरल सुन्दर,
चंचल अन्चल सा नीलाम्बर।
साड़ी की सिकुड़न-सी जिस पर शशि की रेशमी विभा से भर,
सिमटी हैं वर्तुल मृदुल लहर।

कवि को हथेली पर मुंह रखने की मुद्रा अत्यंत ही भाती है अतः उसकी गंगा ही नहीं चाँदनी भी करतल पर शशिमुख रखे बैठी है :—

नीले नभ के शतदल पर,
वह बैठी शारद-हासिनि।
मृदु करतल पर शशि मुख धर,
नीरव, निमेष, एकाकिनि।

शरद-ऋतु का मानवीकरण निहारिए—

तुम फिर स्वप्नों का पट बुनती,
ले जीवन से छाया प्रकाश।
फिर गीत स्वरों का जाल गूँथ,
उलझाती सुख दुख अश्रु हास।
तुम खोल देह मन के बंधन,
चेतना बन गई फिर उज्ज्वल।
उमगा प्राणों का मेघ, लिपट,
निखरी तुम-अब बादल ओझल,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार मानवीकरण की प्रसाद एवं पंत की यह जोड़ी अमर है। दोनों कवियों ने प्रकृति पर मानव व्यापारों के आरोपण से सजीवता ला दी है। दोनों के लिए ही प्रकृति हंसती रोती है दोनों के लिए ही वह मानव की ही भांति सुख दुख का अनुभव करती है।

६. *ईश्वर सत्ता की अभिव्यक्ति का माध्यम*—डा० गुलाबराय प्रकृति का छटा एवं अन्तिम चित्रण इस प्रकार का बताते हैं। इसमें कवि की दशा कबीर की सी हो जाती है जो कह उठते थे—

लाली मेरे लाल की जित देखौं तित लाल।

उसे अपने चारों ओर की वस्तुयें एक ही चेतन शक्ति से अनुप्राणित दीखती हैं, विश्वात्मा के सौंदर्य से ही अनुरंजित दीखती हैं उसे कहीं भी द्वैत दिखाई नहीं पड़ता। तुलसी को समस्त जगत 'सियाराममय' जान पड़ता था। अतः वे सबको 'प्रनाम' करते थे। वेदानुसार भी ईश्वर कण कण में व्याप्त है, निश्चय ही वह केवल देवल मसजिद काबा या काशी में ही नहीं है। भगवान कृष्ण स्वयं श्रीमुख से कहते हैं कि संसार में जो कुछ भी चराचर स्थावर जंगम हैं, उन सब में मैं व्याप्त हूँ—

यच्चापि सर्व भूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १०-३९)

वास्तव में उस परम सत्ता का एक ही तन्तु आकाश वायु, अग्नि आदि में पिरोया हुआ है—

खं वायुरग्निं सलिलं महीं च, यातीशं द्रव्यानि दिशां द्रुमादीन।
सरित् समुद्रांश्च हरे शरीरम् यत्किंचदेतद् प्रणमेदनन्य॥

कविवर वर्डसवर्थ को भी, इसी प्रकार एक ही सत्ता सर्वत्र व्याप्त दीखती थी—अस्त होते हुए सूर्य के प्रकाश में सरिता में सागर में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वायु में आकाश में मानव मस्तिष्क में प्रत्येक गोचर वस्तु में।[१] प्रत्येक महाकवि अपने चारों ओर परम तत्व का आभास पाता आया है और अनजाने ही थोड़ा सा (दार्शनिक) रहस्यवादी बनता आया है। वह कवि ही क्या जो थोड़ा बहुत दार्शनिक न हो ?[२]

प्रसाद जी के लिए तो काव्य का प्रधान तत्त्व आध्यात्मिक ही है। प्रकृति से इन्हें अतीव प्रेम है। वह इनके लिए सजीव है, सप्राण है, सचेतन है। प्रकृति-प्रेम का यही प्राचुर्य कवि में जिज्ञासा भाव उत्पन्न कर देता है। उनमें अचानक प्रश्न उठ खड़ा होता है, वे कुतूहल से भर जाते हैं यह देखकर कि सूर्य, चंद्र, नक्षत्र आदि समय पर उदय-अस्त होते हैं, पौधे लहलहा उठते हैं—क्यों ? कोई महान् शक्ति प्रकृति के पर्दे के पीछे बैठी डोरी खींच रही है :—

विश्वदेव, सविता या पूषा
सोम, मरुत, चंचल, पवमान,

---

१. And a have felt.
A presence that disturbs me with the joy,
Of elevated thoughts; a senes sublime,
Of something far more deeply inter fused.
Whose dwelling is the light of the setting suns.
And the round Ocean and the living air.
And the blue sky and in the mind of man.
A motion and a spirit that impels.
All thinking things all objects of all thoughts.
And rolls through all things.
—W. Wordsworth—"Lines·······Tintern Abbey"

२—"No man was ever yet a great poet without being at the Same time a profound philoso pher."

—S. T. Coleridge.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वरुण आदि सब घूम रहे हैं,
किसके शासन में अम्लान ?
× × ×
महानील इस परम व्योम में
अंतरिक्ष में ज्योतिर्मान
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्कण,
किसका करते थे सँधान ?

कवि के आनंदवाद का भी एक रहस्य यह है कि उसे प्रकृति के कण-कण में अपने ब्रह्म की वयाप्ति प्रतिभासित होती है फिर उसे ईश्वर-विरह का दुख ही क्या ?—

प्रियतम मय यह विश्व निरखना
फिर उसको है विरह कहाँ ?
फिर तो वही रही मन में,
नयनों में प्रत्युत जग भर में ॥

एक अन्य कवि ने ऐसा ही लिखी है। उसका प्रियतम तो सर्वत्र व्याप्त है, अतः उसे पाती भी किस प्रकार भेजी जा सकती है ?—

पाती तो दूर वाले को ही लिखी जाती है :—
प्रीतम को पतियाँ लिखूँ, जो कहुँ होइ विदेश।
तन में, मन में रमि रहा ता कहै कहा संदेस ?

महादेवी भी ऐसा ही कहती हैं :—
'प्रिय मुझी में खो गया, अब दूत किसके पास भेजूँ ?
—दीपशिखा !

प्रसाद जी अपनी प्रेयसी की आभा निम्न शब्दों में व्यक्त करते हैं :—

चंचला स्नान कर आवे,
चंद्रिका पर्व में जैसी।
उस पावन तन की शोभा,
आलोक मधुर थी ऐसी ॥
—आँसू !

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब धरती का प्राणी ऐसा शोभावान है तो ब्रह्म का सौंदर्य तो वर्णनातीत होगा; उसे सीधे शब्दों में कैसे बाँधा जा सकता है, कवि प्रकृति की ओर निहारकर कह उठता है :—

तुम्हारा स्मित हो जिसे निरखना,
वो देख सकता है चंद्रिका को।
तुम्हारे हँसने की धुन में नदियाँ,
निनाद करती ही जा रही हैं।

कानन कुसुम !

कामायनी में भी कवि यही कह देता है? कोई सत्य है अवश्य—

कुछ हो ऐसा होता भान।

किंतु क्या है, उसकी आकृति कैसी है, उसका रूप कैसा है ?—
यह बात बताने के लिए कवि कहाँ से शब्द उधार ले :—

हे अनंत रमणीय ! कौन तुम ?
यह मैं कैसे कह सकता।
कैसे हो ? क्या ? इसका तो,
भार विचार न सह सकता ॥

कबीर भी तो बहुत सोच-विचार के उपरांत 'जैसा है तैसा रहा' कह देते हैं। अंत में प्रसाद जी की भी वही स्थिति हो जाती है जो वर्ड्सवर्थ की थी। उन्हें 'रवं वायुरग्निं' सभी में उसी के दर्शन हो निकलते हैं :—

लीला का स्पंदित आह्लाद,
वह प्रभा पुँज चितिमय प्रसाद,
आनन्द पूर्ण ताण्डव सुन्दर,
झरते थे उज्ज्वल श्रम सीकर,
बनते तारा, हिमकर, दिनकर,
उड़ रहे धूलिकण से भूधर,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संहार सृजन से युगल पाद-
गतिशील, अनाहत हुआ नाद।
—(कामायनी पृ. २५३)

प्रसाद जी की ही भाँति पंत जी भी प्रकृति के अभिन्न सखा रहे हैं। उन्होंने उसे एकांत में बैठकर घण्टों निहारा है। प्रसाद की ही भाँति पंत के लिए भी प्रकृति सजीव एवं सप्राण है। प्रकृति नटी के पल-पल परिवर्तित रूप को निहारकर प्रसाद जी की ही भांति पंत के हृदयाकाश में भी उत्कण्ठा के न जाने कितने भाव-घन उमड़े हैं जो इन शब्द—बूँदों में बरस पड़े हैं :—

मैं चिर उत्कण्ठा तुर
जगती के अखिल चराचर,
यौं मौन मुग्ध किस के बल ?

जुगुनुओं को इतस्ततः दौड़ते देख देख कर कवि ठीक ही तो अनुमान लगा लेता है कि वे किसी की खोज में व्यस्त हैं, अतः पूछ बैठता है :—

इस पीपल के तरु के नीचे
किसे खोजते हो अज्ञात ?

छाया को भी कवि किसी की पद-छाया समझ बैठता है। वर्ड्सवर्थ एवं प्रसाद की भाँति पंत भी उसी के प्रकाश को सब में व्याप्त मानते हैं :—

एक छवि के असँख्य उड़गन।
एक ही सब में स्पंदन ॥

एवम्—
एक ही तो असीम उल्लास,
विश्व में पाता विविधाभास.
तरल जलनिधि में हरित विलास,
शरत अम्बर में नील विकास,
वही उर उर में प्रेमोच्छ्वास,
काव्य में रस, कुसुमों में बास।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवि को विश्वास हो जाता है कि उसी परम सत्ता की छवि सब में व्याप्त है। ऊषा की मृदु मुस्कान, पक्षियों की काकली, सरिता का कल कल निनाद, वसंत का यौवन, सघन रजनी, सितारों की आभा, पल्लव की सुकुमारता—प्रकृति के कण-कण में कवि उसी की आभा देखता है, वह उसके दर्शन के लिए तड़प उठता है—न जाने वह कब उसका साक्षात्कार करेगा जिसका प्रतिबिम्ब प्रकृति में पड़ा हुआ है :—

मां ! वह दिन कब आएगा जब—
मैं तेरी छवि देखूँगा,
जिसका यह प्रतिबिंब पड़ा है—
जग के निर्मल दर्पन में ?

माँ अपने बालक से कितना स्नेह करती है, प्रत्येक संतान में उसका कितना ममत्व है, वह अपनी संतति का कितने प्रेम से पालन करती है—इसकी तुलना के लिए परम-ममतामयी मा ही है, अन्य उदाहरण नहीं अतः पंत ने प्रकृति में निहित शक्ति को माँ जैसे प्रेम लपेटे शब्द से संबोधन किया।

'मौन निमंत्रण' में तो न 'जाने कौन' उन्हें नक्षत्रों, सौरभ, खद्योत आदि से बुलावा दे रहा है :—

न जाने कौन, अये छविमान !
जान मुझको अबोध, अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूक देते छिद्रों में गान;
अहे सुख दुख के सहचर मौन !
नहीं कह सकती तुम हो कौन ?

इस प्रकार हमारे प्रसाद एवं पंत ने प्रकृति-सुन्दरी को न जाने कितनी ओर से निहारा एवं संतप्त जगत को स्वरचनाओं के माध्यम से प्रकृति की ओर लौट चलने का उपदेश दिया। निठुर काल द्वारा प्रसाद के असमय छिन जाने एवं पंत के दिशान्तर से प्रकृति का न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाने कितना और क्षेत्र अदेखा रह गया। जो कवि अपनी कवि-यात्रा के प्रारंभिक मीलों में प्रकृति से यहाँ तक मोह प्रदर्शित करता था कि कामिनी का सौंदर्य उसे नहीं डिगा सकता था :—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूं लोचन!

वही जीवन के पुलिन पुलिन पर हाहाकार सुनकर चात्कार कर उठा :—

कहाँ मनुज को अवसर देखे मधुर प्रकृति मुख?
भव अभाव से जर्जर प्रकृति उसे देगी सुख?

पन्त की सौंदर्यानुभूति के इस विपर्यय से प्रकृति-बाला के कफ़न में बहुत बड़ी कील ठुक गई किन्तु युग-थपेड़ों से प्रताड़ित कवि अब भी उस कफ़न की ओर देख उठेगा—इसमें सन्देह नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०–प्रसाद एवं पंत का दार्शनिक चिन्तन

उत्तिष्ठ जाग्रत वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्या,
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥
कठोपनिषद् १-३-१४।

"अर्थात् उठो, जागो और श्रेष्ठ बातें जानो। विद्वान कहते हैं कि वह पथ अत्यन्त कठिन है, छुरे को धार है (Razor,s Edge) है अतः उसका पार करना अत्यन्त कठिन है।"

मैथ्यू आर्नल्ड (matthew Arnold) ने काव्य की परिभाषा में लिखा है कि यह जीवन की आलोचना (Criticism of life) है। दर्शन का भी कार्य तो जीवन की व्याख्या करना है। इस प्रकार साहित्य और दर्शन दोनों जीवन की आलोचना करने के लिए घर से वाहर निकलते हैं, हाँ दोनों के दृष्टि कोण भिन्न हैं। साहित्य का जीवन के प्रति भावात्मक दृष्टि कोण है एवं दर्शन का बौद्धिक। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि भाव एवं बुद्धि के मध्य में एक ऐसी दीवाल खड़ी कर दी जाती है कि एक दूसरे की ओर किसी प्रकार भी न झाँक सके। साहित्य की भावात्मकता में बुद्धि का समावेश हो ही जाता है, इसी प्रकार दर्शन की बौद्धिकता में भाव का। यह भी होता है कि प्रारम्भ में हृदय का अधिक भाग रहता है एवं उपरान्त बुद्धि का।

संसार में जो कुछ भी गोचर होता है उसे दो प्रधान तत्वों में बाँटा जाता है—चेतना (Consciousness) एवं पदार्थ (Matter) कोई दार्शनिक चेतना को प्रधान तत्व एवं पदार्थ को गौड़ मानता है अथवा उसे बिल्कुल मिथ्या मानता है—यथा हीगेल एवं शंकर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूसरे प्रकार के दार्शनिक वे हैं जो पदार्थ को ही सब कुछ मानते हैं। उनके लिए चेतना पदार्थ की ही उपज है। मार्क्स (K. Marx) यही कहते हैं। इस प्रकार दार्शनक दो शिविरों में विभिक्त किए जा सकते हैं—प्रथम वे जो चेतना के समक्ष पदार्थ को कुछ भी नहीं समझते; दूसरे वे जिनके लिए पदार्थ के सामने चेतना का कुछ भी मूल्य नहीं। सीधे-सादे शब्दों में हम प्रथम को अध्यात्मवादी एवं द्वितीय को भौतिकवादी कहते हैं।

प्रसाद एवं पंत का अध्ययन अत्यन्त ही विशाल रहा है। यदि प्रसाद ने प्राच्य-ग्रंथों का मंथन किया तो पंत ने पाश्चात्य ग्रन्थों का मनन। यदि प्रसाद जी शैव दर्शन में बहुत समय तक टिके रहे तो पन्त मार्क्स दर्शन में जीवनानन्द खोजते रहे। यदि प्रसाद जी ने मार्क्स एवं फ्राइड को चखा तो पंत भी उपनिषद्, गाँधी, अरविन्द के समक्ष नतमस्तक हुए। प्रसाद जी की प्रौढ़तम कृति कामायनी में उनके दार्शनिक विचार बिखरे पड़े हैं। जहाँ तक पंत का सम्बन्ध है वे आद्यन्त किसी एक दर्शन से प्रभावित नहीं रहे अतः किसी पुस्तक में उनके जीवन-दर्शन की खोज करना अपनी मूर्खता का ही परिचय देना होगा। कामायनी में मानव-जीवन का सनातन सत्य अभिव्यक्त हुआ है। कामायनी पर विचार करते समय आचार्य विनय मोहन शर्मा ने लिखा है—"आध्यात्मिक साधना मनुष्य की वासनाओं, की तृप्ति के पश्चात संम्भव होती है—सफल होती है। प्रारम्भ में ही संसार से एकदम आँख मूँदकर 'भीतर का रहस्य' नहीं दिखाई पड़ता। 'बाहर' आँख खोलकर देख चुकने पर ही अन्तर के पट खुलते हैं और 'शिव' के 'दर्शन' होते हैं।" कवियों को सारी सृष्टि में एक ही चेतन सत्ता का भान हुआ। पंत जी ने 'पल्लव' की भूमिका में लिखा—"प्रकृति के प्रत्येक कार्य, रात्रि, दिवस की आँख मिचौनी, षड्ऋतु परिवर्तन, सूर्य शशि का जागरण शयन, ग्रह-उपग्रहों का अशान्त नर्तन, सृजन, स्थिति, संहार सब कुछ एक अनंत छंद, एक अखंड संगीत में ही होता है।" यह 'अखण्ड' सत्ता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परम वह्म है जो हीगेल के अनुसार 'विचार तत्व' एवं शैवागम आनन्दवाद के यह 'शिव' है। काण्ट के अनुसार भी सापेक्ष वस्तुओं के परे एक निरपेक्ष अज्ञात सत्ता है। निश्चय ही इसी को ध्यान में रखकर प्रसाद जी कामायनी के प्रारम्भ में लिखते हैं :—

नीचे जल था, ऊपर हिम था,
एक तरल था एक सघन।
एक तत्व की ही प्रधानता,
कहो उसे जड़ या चेतन।

यही बात पन्त जी ने भी कही है :—

चिन्मय प्रकाश से विश्व उदय,
चिन्मय प्रकाश में विकसित लय।
रवि शशि ग्रह उपग्रह तारा चय,
अग जग प्रकाशमय है निश्चय।

प्रसाद में यही ऊपर वाला शैवदर्शन है जिसका वैशेष्य 'सामरस्य' है। कामायनी में ही नहीं अपने साहित्य में अन्यत्र भी प्रसाद जी ने 'समरसता' का शब्द प्रयुक्त किया है। यह समरसता है क्या? स्वर में दो भिन्न वस्तुओं के द्वंद्व का अभाव ही समरसता है। 'आगम' में अद्वैत का अर्थ दो की नित्य समरसता है। सच पूछा जाय तो कामायनी का प्रणयन ही श्रद्धामूलक आनन्दवाद की प्रतिष्ठा के लिए हुआ है जो (आनन्दवाद) केवल समरसता से प्राप्त हो सकता है। समरसता के अभाव में न तो जीवन ही सुखी रह सकता है और न समाज। कामायनी के प्रारम्भ में ही मनु अपने अतीत पर सिर धुन रहे हैं, आत्मा की पूर्णता बाहर खोज रहे हैं, अपने अन्तर्जगत के विषय में वे सर्वथा अनजान हैं। श्रद्धा आकर उन्हें समरसता का पाठ पढ़ाती है :—

दुःख की पिछली रजनी बीच,
विकसता सुख का नवल प्रभात।
एक परदा यह झीना नील

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छिपाये है जिसमें सुख गात ॥
नित्य समरसता का अधिकार,
उमड़ता कारण जलधि समान।
व्यथा से नीली लहरों बीच
उमड़ते सुख मणिगण द्युतिमान ॥

वास्तविकता तो सुख की ही है, दुख तो उस झीनी चादर के समान है जो कुछ काल पश्चात ही समाप्त हो जाती है। आगे मनु के जीवन का एक और उदाहरण मिलता है जहाँ वे समरसता के अभाव में वेचारे भटकते रहते हैं। उन्हें आनन्द मूर्ति शिव का ताण्डवनृत्य तभी दिखाई पड़ता है जब उनके एवं श्रद्धा के जीवन में समरसता आ जाती है :—

तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में
कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता है सम्बन्ध बनी,
अधिकार और अधिकारी की ॥

अधिकार और अधिकारी, में समरसता का अभाव सारस्वत प्रदेश में दिखाई पड़ता है। जब तक मनु एवं इड़ा में समरसता रही वहाँ तक सब कुछ ठीक रहा किन्तु ज्यों ही मनु ने इड़ा पर एकाधिकार करना चाहा तभी वहाँ भयंकर संग्राम छिड़ गया। इसी को ध्यान में रखकर श्रद्धा अपने पुत्र को जोर जोर से समरसता सिखलाती है :—

सबकी समरसता कर प्रचार
मेरे सुत ! सुन माँ की पुकार।

समरसता के अभाव में समाज ही क्यों जीवन में भी तो कुछ भी प्राप्त नहीं होता। मानव-जीवन का लक्ष्य आनन्द प्राप्त करना है—ऐसा आनन्द जिसकी प्राप्ति के पश्चात् फिर किसी इतर वस्तु की आकांक्षा न रहे—'य प्राप्ये नेतरम् कांक्षति।' यह आनन्द तभी प्राप्त होता है जब कर्म, ज्ञान, एवं इच्छा में श्रद्धा द्वारा समरसता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ना दी जाती है। प्रसाद जी ने 'रहस्य' नामक सर्ग की निम्न पंक्तियों में इसी बात को यों कहा है :—

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की,
एक दूसरे से न मिल सके,
यह विडम्बना है जीवन की।

इच्छा, क्रिया एवं ज्ञान—इन तीनों का न मिलना ही जीवन की विडम्बना है। इच्छा ज्ञान विना अन्धी है और कर्म के विना लँगड़ी फिर किस प्रकार अपने लक्ष्य-आनन्द को प्राप्त कर सकती है। आनन्द तो इन तीनों के समीकरण से ही प्राप्त हो सकता है। यदि किसी ने इस 'रहस्य' को जान लिया फिर तो आनन्द ही आनन्द है। कामायनी में रहस्य सर्ग के उपरान्त ही तो आनन्द सर्ग है जो श्रद्धा द्वारा इन तीनों के समन्वय के उपरान्त प्राप्त हो सका है। फिर तो वहाँ पुरुष एवं प्रकृति की पूर्ण समरसता है, 'अहं' का 'इदं' में पूर्ण पर्यवसान है, फिर तो सभी में—जड़ चेतन में—समरसता है अतः सभी आनन्दित हैं :—

शापित न यहाँ है कोई
तापित पापी न यहाँ है।
जीवन वसुधा समतल है
समरस है जो कि यहाँ है।

इसी आनंद की खोज में मानव आदिकाल से चला आ रहा है। वैदिक काल से ही आर्य लोगों का साध्य यही आनंदवाद रहा है। आर्यों को इसकी प्रेरणा इन्द्र के आत्मवाद द्वारा प्राप्त हुई थी। उपनिषद् में आत्मा को आनंद स्वरूप माना गया है·· 'अयमात्मा परमानंदः।' और आनंदमय आत्मा की उपलब्धि श्रद्धा से ही हो सकती है, गीता की भाँति बुद्धि द्वारा नहीं। मुण्डकोपनिषद् के अनुसार भी :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नायमात्मा प्रवचेन लभ्यः न मेधया न बहुना श्रुतेन यमेव एष वृणुते तेन लभ्यः।

यदि कोई तर्क, मेधा आदि से उसे प्राप्त करना चाहे तो यह उसकी मूर्खता ही होगी :—

सब बातों में खोज तुम्हारी
रट सी लगा हुई है।
किंतु स्पर्श से तर्क-करों से
बनता छुई मुई है॥

वर्तमान युग तो तर्क एवं बुद्धि से ही आनंद प्राप्त करना चाहता है, इसीलिए वह इतना दुखी है—"बुद्धिवाद के विकास में अधिक सुख की खोज में, दुःख मिलना स्वाभाविक है।"[1] आज के मानव ने बुद्धिवाद के विकास द्वारा भाँति भाँति की वस्तुओं की खोज की किंतु शांति मिल सकी, क्या सुख प्राप्त हो सका, क्या वह आनंद मिल सका जिसकी प्राप्ति के पश्चात् किसी भी इतर वस्तु की आवश्यकता नहीं रह जाती? इसके दो उत्तर नहीं हो सकते। एक वस्तु की प्राप्ति उसे दूसरी वस्तु की राह पर डाल देती है। उसे पूर्ण सुख नहीं मिलता, इतना ही नहीं, उसे अत्यन्त दुख प्राप्त होता है। कामायनीकार का विश्वास है कि श्रद्धा के अभाव में आनंद-प्राप्ति मृग-मरीचिका है। बुद्धिवाद के अधिक विकास का अर्थ है संघर्ष, अशांति, वैषम्य, दुःख। इसका अर्थ यह नहीं कि प्रसादजी बुद्धि के नितांत विरोधी हैं—नहीं, वे बुद्धि के विरोधी नहीं अपितु बुद्धिवाद की अति के विरोधी हैं। थोड़ी बहुत बुद्धि का तो महत्व है, किंतु वे उसे श्रद्धा से गौण स्थान ही देते हैं। मनु सारस्वत प्रदेश में जाते हैं। वहाँ श्रद्धा तो है ही नहीं अतः समस्त नियम बुद्धि (इड़ा) ही बनाती है किंतु श्रद्धा के अभाव में मन (मनु) उन नियमों का पालन नहीं कर सकता। "अगर बुद्धि

१—कामायनी 'आमुख'—पृ० ७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(श्रद्धा) ही सब कुछ होती तो वह जो कुछ कहती वह मन मान लेता, पर उसमें कुछ कमी है जिससे उसकी बातों को मन (मनु) नहीं मानता। जिस बात को कोई हृदय (श्रद्धा) से माने बैठा है उसे बुद्धि द्वारा सैकड़ों तर्क उपस्थित किये जाने पर भी वह उसे नहीं छोड़ सकता। ऐसा होते हुए भी जो बुद्धि से विशेष सुख की इच्छा करता है वह मनु के समान दुख पाता है। सारांश यह है कि आनंद की प्राप्ति श्रद्धा रहित बुद्धि द्वारा कभी नहीं हो सकती जैसा कि हम इस युग में देख रहे हैं। इस प्रकार प्रसादजी के आनंदवाद में बुद्धिवाद का घोर विरोध है पर बुद्धि का नहीं क्योंकि आनंद प्राप्ति के मूल उपादान श्रद्धा में उतनी बुद्धि आ ही जाती है जिससे विशृंखलता न उत्पन्न हो।"

यही कारण है कि प्रसादजी ने श्रद्धा का स्थान अत्यंत उच्च माना है। यह कामायनी में हृदय की उदात्त भावनाओं ममता, विश्वास, माया, सहानुभूति दया आदि की प्रतीक है, वह 'कल्याण भूमि' एवं 'अमृतधाम' है जिसके अभाव में संसार की दशा कुछ से कुछ हो जाती है।

स भवेत सर्वतो हीनो यः श्रद्धा रहितो नरः।
श्रद्धा वैधूर्ययोगेन विनश्येज्जगताम् स्थितिः।

—त्रिपुरा रहस्य, ज्ञानखण्ड।

इतना ही नहीं 'भव आतप से जले' हुआ को श्रद्धा ही शीतलता प्रदान करती है। जीवन-तिमिर को चीर देने वाली भी श्रद्धा ही है:—

घने प्रेम-तरु तले।
बैठ छाँह लो भव-आतप से तपित और जले।
छाया है विश्वास की श्रद्धा सरिता कूल।[1]

—स्कंदगुप्त

१—सुन्दर विश्वासों से ही
बनता रे सुखमय जीवन! —पंत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिस प्रेम तरु से विश्वास की घनी छाया प्राप्त हो सकती है उसे सींचने के लिए वह सरिता आवश्यक है जिसके तट श्रद्धा के हैं। मनु भी शिव-दर्शन श्रद्धा द्वारा ही तो कर सकते हैं, महाकवि तुलसी भी स्वान्तस्थमीश्वर' का दर्शन श्रद्धा बिना असंभव मानते हैं।

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वासरूपिणौ।
याभ्याम् विना न पश्यंति स्वान्त स्थमीश्वरम्॥
—रामचरितमानस, बालकाण्ड।

पंत के लिए भी श्रद्धा-विश्वास अत्यंत आवश्यक हैं :—

सुन्दर विश्वासों से ही
बनता रे सुखमय जीवन।
ज्यों सहज सहज सांसों से
चलता उर का मृदु स्पंदन॥

प्रसादजी शांकर मत से बस यहीं अलग हो जाते हैं। शांकर अद्वैत में ज्ञान की प्रधानता है, प्रसाद के अद्वैत में श्रद्धा की। संभवत; इसी प्रकार शांकरमत आत्मवाद की दुख मिश्रित धारा है जब कि प्रसाद के आत्मवाद में विशुद्ध आनंद की। शंकर के लिए जगत 'मिथ्या' है जबकि प्रसाद के लिए सत्य। शांकर मत के लिए माया एक आवरण है जबकि प्रसादजी के लिए ईश्वर की कर्तृत्व शक्ति। शंकर इसी माया के कारण ही जगत को त्याग ने का आदेश देते हैं जबकि प्रसाद माया एवं जगत को सत्य मानकर उसका पूर्ण आनंद लेने में जीवन की सार्थकता मानते हैं। वे बौद्धों अथवा सांख्य की भाँति जगत को क्षणिक एवं दुखमय कदापि नहीं मानते :—

'कौन कहता है जगत है दुःखमय,
यह सरस संसार सुख का सिंधु है।'

शैव-दर्शन ने जहाँ प्रसादजी के दार्शनिक विचारों में समरसता ला दी है वहाँ उन्हें बहुत बड़ा नियतिवादी भी बना दिया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के साहित्य में यत्र-तत्र समरसता शब्द के साथ-साथ नियति भी प्रयुक्त हुआ है। शैवागमों में ३६ तत्त्व माने गए हैं जिनमें नियति भी एक तत्त्व है जो जीव की स्वातंत्र्य शक्ति को वीटो कर देता है। किंतु प्रसादजी का नियतिवाद विख्यात उपन्यासकार टामस हार्डी (Thomas Hardy) के नियतिवाद से सर्वथा भिन्न है। हार्डी का नियतिवाद मानव को सिर धुनने के लिए छोड़ देता है, जब कि प्रसाद का कर्म में जुटा देता है। प्रथम निवृतिमार्ग का द्वार बन्द कर देता है, दूसरा प्रवृत्तिमार्ग का मैदान खोल देता है। आनंद-प्राप्ति के लिए नियतिवाद परमावश्यक है क्योंकि नियतिवादी व्यक्ति यह सोच लेता है कि जो होना है वह तो होगा ही अतः वह न तो अपने साफल्य पर अभिमान करता है और न वैफल्य पर दुख क्योंकि वह स्वयं को किसी कार्य का कर्त्ता नहीं मानता, साधनमात्र समझता है। इस प्रकार उसका जीवन संतोषमय हो जाता है। यदि उसके कार्य का परिणाम उल्टा भी होता है तब भी वह आकुल नहीं होता—'जो कुछ लिखा लिलार गुसाईं' कहकर वह संतोष कर लेता है एवं 'हुइ है सोई जो राम रचि राखा' कहकर पुनः जीवन समर में कूद पड़ता है। वह जीवन से मुँह नहीं मोड़ता क्योंकि उसे विश्वास है कि कर्मफल तो स्वयं समीप आते हैं। पहले से ही उनसे भागकर कोई बच नहीं सकता।"[1] संभवतः इसीलिए, जैसा कि उनके जीवन वृत्त में लिखा जा चुका है, अन्तिम समय में क्षय से पीड़ित होने पर भी प्रसादजी काशी त्याग कर अन्य किसी स्थान पर नहीं गए। उनका दृढ़ विश्वास था कि "भागकर कोई बच नहीं सकता।" नियति में ऐसा अडिग विश्वास धन्य है। अन्य किसी में ऐसी संभावना कहाँ?

(मनु एवं श्रद्धा आगे बढ़ते जा रहे हैं। मनु अत्यन्त आनन्दित

१—जनमेजय का नागयज्ञ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं किन्तु नियति उनमें संशय भर देती है, वे कह उठते हैं :—

निराधार हैं, किंतु ठहरना,
हम दोनों को आज यहीं है।
नियति खेल देखूँ न, सुनो अब
इसका अन्य उपाय नहीं है॥"
कर्म चक्र सा घूम रहा है
यह गोलक, बन नियति प्रेरणा,
सब के पीछे लगी हुई है
कोई व्याकुल नई एषणा।

यही बात कवि 'आँसू' में कहता है—

नचती है नियति नटी सी
कंदुक क्रीड़ा सी करती।
इस विश्व व्यथित आँगन में
अपना अतृप्त मन भरती॥

नियति वस्तुतः नटी है जो मानव-भाग्य को कंदुक के समान उछालती, पटकती रहती है। उस समय बेचारा मानव 'नियति का दास" हो जाता है। वह गेंद की भाँति कभी ऊपर चला जाता है, कभी धूल से चूमने के लिए विवश हो जाता है, किंतु वह रहता सदैव आनन्दित ही है—प्रसाद जी की ही भाँति। उसका अडिग विश्वास हो जाता है कि मानापमान, लाभ-हानि, जय-अजय, सुख-दुख आदि सब किसी न किसी अच्छाई के लिए ही प्राप्त होते हैं। इसी दिव्य दृष्टि एवं विश्वास के प्राप्त होने पर मनुष्य दुख में सुख के साधन, असफलता में सफलता के तत्त्व, अपमान में मानवर्द्धन की शक्ति. विघ्नों में सुविधा प्रदान करने के लक्षण, हानि में लाभ के सन्देश, रोग में स्वास्थ्य लाभ की साधना का दर्शन करने लगता है, जगत की सभी ज्वालाओं एवं अभिशापों को ईश का छिपा हुआ वरदान समझने लगता है। इस प्रकार नियति की वास्तविक अनुभूति मनुष्य में समरसता की दृष्टि लाती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है।" मानव ही नहीं प्रसाद जी की शक्ति के समक्ष देवतागण भी निस्तेज हो जाते हैं। उसके इंगित पर वे कठपुतली के समान नाचते रहते हैं। जल प्लावन के अनन्तर नियति का ही तो शासन रह जाता है। मनु की इच्छा नहीं है कि वे कुछ कार्य करें किन्तु नियति चैन लेने दे तब न। इसीलिए—

उस एकांत नियति शासन में,
चले विवश धीरे धीरे।
एक शांत स्पंदन लहरों का,
होता ज्यों सागर तीरे।

एक बात और है—कामायनी की नियति आँसू को नियति से अच्छी है। वह सचेतन एवं कल्याणमयी है जबकि आँसू की जड़ एवं अकल्याणमयी। सारांश यह है कि "प्रसाद जी के लिए आनन्द एक ऐसी वस्तु है जिसकी प्राप्ति के पश्चात मनुष्य कामना रहित हो जाता है। उसमें अन्य किसी वस्तु की इच्छा नहीं रहती। प्रसाद जी के लिए आनन्द प्राप्ति की अवस्था प्रपंचातीत या विषयातीत अवस्था है। उनके लिए आनन्द ही योग है, आनन्द ही मोक्ष तथा आनन्द ही ब्रह्म है। वे विवेकवादी नहीं, श्रद्धावादी हैं। उनके दर्शन में आध्यात्मिकता ही नहीं, व्यापारिकता भी है। दर्शन में तर्क की प्रधानता रहती है. वह ईश्वर का अस्तित्व "....तर्क द्वारा सिद्ध करता है; कवि अनुभूति द्वारा उसका प्रत्यभिज्ञान करता है अतएव कवि दर्शन की श्रेय बातों को मानव भूमि पर लाकर प्रेय बना देता है। प्रसाद जी ने दर्शन को अनुभूति की कसौटी पर परखकर कविता से आवद्ध कर श्रेय को प्रेम बना दिया है। साहित्य तथा दर्शन का सुन्दर सामंजस्य करने का श्रेय संस्कृत में जिस प्रकार अभिनवगुप्ताचार्य को है तद्वत हिन्दी में प्रसाद जी को। कामायनी में जहाँ कहीं दार्शनिक विवेचना है वहाँ मानव-जीवन तथा इतिहास की पीठिका वर्तमान है। जिससे उसका दर्शन बहुत ही व्यवहारिक तथा मनोवैज्ञानिक हुआ है। सचमुच प्रसाद जी ने दर्शन से जीवन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को देखा है और जीवन से दर्शन को। इसीलिए वे कामायनी की दार्शनिक पीठिका पर मानव जीवन का आनन्दपूर्ण भवन निर्माण करने में सफल हुए हैं।"[१]

जहाँ तक पन्त जी के दार्शनिक चिंतन का प्रश्न है वे एक अर्थ में प्रसाद जी से सर्वथा भिन्न हैं—प्रसाद जी जीवन की ऊषा से सांझ तक शैव रहे अतः वे श्रद्धामूलक आनंदवाद, समरसता एवं नियतिवाद से तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्हें भारतीय संस्कृत से अत्यन्त मोह था। पन्त में यह बात नहीं। उन्होंने वीणा से लेकर युगान्त, ग्राम्या, स्वर्णधूलि तथा उत्तरा तक न जाने कितने चोले बदले। इस बीच में उन्हें कभी तो उपनिषद् ने आकर्षित किया कभी अद्वैतवाद ने। कभी स्वामी विवेकानन्द ने उनका मन मोहित किया तो कभी महर्षि मार्क्स ने; कवि ने कभी तो महात्मा गांधी के शिविर में झांककर देखा कभी अरविन्द के आश्रम में। इस प्रकार पन्त का दार्शनिक जीवन अत्यन्त ही गत्यात्मक रहा है। उन्हें पूर्णतया न तो अध्यात्मवाद है। अपने दायरे में बनाए रख सका है और न भौतिकवाद। उनका मन न तो गाँधीवाद की छाँह में ही अधिक देर तक विरम सका है और न अरविन्दवाद की ही में। पंत जी को तो प्रत्येक दार्शनिक सिद्धान्त छोड़कर प्रत्येक सिद्धांत अच्छा लगता है। उन्हें प्रत्येक दर्शन की अच्छी अच्छी बातें पसंद हैं। और इस प्रकार वे स्वमनोनुकूल नवीन दर्शन बनाना चाहते हैं। डा० रामविलास शर्मा को इसीलिए तो कहना पड़ा है कि "पंत जी दर्शन में सबसे कच्चे" हैं।[२]

पंत जी प्रारम्भिक रचनाओं में किसी दार्शनिक तत्त्व की खोज करना मूर्खता ही होगा। उस समय कवि प्रकृति-रानी के सौंदर्य पर बुरी तरह किया था। प्रकृति-छवि को छोड़कर वह मानव-सुघरता

१—कामायनी—अनुशीलन—पृ० १७६–१८०।
२—आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना पृ. १६०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ों और किसी भी दशा में देखने के लिए तैयार नहीं था । शैशव में उससे गहन चिन्तन की आशा की भी कैसे जा सकती है—हाँ, उसके प्रार्थना पर गीतों में यत्र तत्र जिज्ञासा अवश्य दिखाई पड़ती है। 'ग्रंथि' में तो कवि बेचारा अपने असफल प्रेम की असमय में पड़ी हुई गांठ को ही संभालता रहा है। 'पल्लव' में कवि ने (चाहे कल्पना के ही सहारे सही)[1] कुछ चलना सीख लिया, कुछ इधर उधर देखना भी जान लिया और साथ की ही कुछ सोचना भी कतिपय रचनाएँ कल्पना प्रधान हैं, कतिपय भाव प्रधान, कतिपय दोनों का ख़द संकर।

हां, एक कविता ऐसी है जिसकी चमक सबसे अलग ही है। इसमें कवि का अब तक का चिन्तन-धन एक ही स्थान पर रखा मिल जाता है, आलोचक-चोर आसानी से उसे ले सकता है। इस रचना से कवि के जीवन में एक नवीन ही मोड़ आ जाता है। मेरा आशय उनके 'परिवर्तन' से है। कवि को संसार की अनित्यता का ज्ञान होता है और वह चीत्कार कर उठता है :—

आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरता सूनी सांस !
वही मधु ऋतु की गुंजित डाल
झुकी थी जो यौवन के भार,
अकिंचनता में निज तत्काल
सिहर उठती-जीवन है भार !

× × ×

गूंजते हैं सबके दिन चार,
सभी फिर हाहाकार
आज बचपन का कोमल गात
जरा का पीला पात

१—देखिए निराला का 'पंत और पल्लव'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चार दिन सुखद चांदनी रात,
और फिर अंधकार अज्ञात।

कवि को विश्वास हो गया कि यदि किसी को कुछ समय सुख प्राप्त भी हो जाय तो कुछ ही दिनों पश्चात् ऐसा दुख आता है कि बस मानव की कमर ही टूट जाती है :—

किसी को सोने के सुख साज
मिल गए यदि क्षण भी कुछ आज;
चुका लेता दुख कल ही व्याज
काल को नहीं किसी की लाज !

× × ×

खोलता इधर जन्म लोचन
मूंदती उधर मृत्यु क्षण क्षण

अपने चारों ओर जगत की यह दशा निहार कवि ने जगत के समस्त कार्यों को तीन लघु शब्दों में बांध दिया :—

यही तो है असार संसार,
सृजन, सिंचन, संहार !

कवि कराह उठता है यह देखकर कि चारों ओर हाहाकार का रव व्याप्त है। निष्ठुर परिवर्तन ऐसा थपेड़ा लगाता है कि धरा-तल हिल उठता है। यह अनित्यता कवि को चिंता में डाल देती है। वह सोच निकलता है कि आखिर संसार में अंधकार ही अंधकार है अथवा कहीं सुख का धवल प्रकाश भी ? कवि अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि 'अनित्य जग' में ही 'नित्य जग' है :—

मूँदती नयन मृत्यु की रात
खोलती नव जीवन की प्रात,
शिशिर की सर्व प्रलयंकर वात
बीज बोती अज्ञात !

कवि को निश्चय हो जाता है कि दुख के पश्चात सुख अवश्यं-भावी है :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आज का दुख कल का आह्लाद।

ऐसा ही प्रसाद जी ने कामायनी में सोचा है :—

दुख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात।
एक परदा यह झीना नील,
छिपाए है जिसमें सुख-गात ॥

फिर तो कवि को दुख भी अनिवार्य वस्तु लग निकलती है :—

बिना दुख के सब निस्सार,
बिना आंसू के जीवन भार।

इस प्रकार 'परिवर्तन' पंत जी के चिंतन का ज्वलित दीप है। पं॰ शांतिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में इसकी दार्शनिकता पर विवेकानंद एवं रवीन्द्र बाबू के दर्शन का प्रभाव है।

'गुंजन' में आकर 'पल्लव' का अल्हड़ कवि अत्यन्त संयत हो गया। वह हृदय का नहीं अपितु आत्मा का 'उन्मन गुंजन' है। इसमें पंत जी के चिंतन एवं मनन का नवनीत है इसीलिए इसके गीत छोटे-छोटे हैं। कवि 'पल्लव' में सर्वत्र त्राहि त्राहि सुनता है, 'गुंजन' में वह अपने मन को उसी ज्वाला में जलाकर अकलुष एवं निष्कलंक बनाना चाहता है:—

तप रे मधुर-मधुर मन !
विश्व-वेदना में तप प्रतिपल
जग-जीवन की ज्वाला में गल,
मन अकलुष, उज्ज्वल औ कोमल
तप रे विधुर विधुर मन !

पल्लव का कवि सोचता है कि क्या सभी दुखी हैं ? यह जानने के लिए वह प्रत्येक के हृदय की डाली देखता है और इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सभी दुखी नहीं हैं, सुखी भी हैं—

देखूं सब के उर की डाली—
किसने रे क्या चुने फूल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जग के छवि उपवन से अकूल ?
इसमें कलि, किसलय, कुसुम, शूल !

वह यह भी देखना चाहता है कि

किसने ली पिक की विरह-तान !
किसने मधुकर का मिलन-गान ?
या फुल्ल-कुसुम, या मुकुल-म्लान ?

और अन्त में कवि देखता है कि—

सब में कुछ सुख तरुण-फूल
सब में कुछ दुख के करुण शूल,
सुख-दुख न कोई सका भूल।

कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि :—

जग पीड़ित है अति-दुख से,
जग पीड़ित रे अति-सुख से।

दूसरे शब्दों में—

अविरत दुख है उत्पीड़न,
अविरत सुख भी उत्पीड़न।

इसीलिए कवि चाहता है कि—

मानव जग में बँट जावें
दुख सुख से औ सुख दुख से।

यह जीवन का समन्वयवादी दृष्टि-कोण है जो सुख दुख का समझौता कराता है। उनके स्वयं के शब्दों में "गुंजन में मेरी बहिर्मुखी प्रकृति सुख दुख में समत्व स्थापित कर अन्तर्मुखी बनने का प्रयास करती है।" इतना ही नहीं कवि की धारणा हो चली है कि—

अस्थिर है जग का सुख दुख
जीवन ही नित्य चिरन्तन।
सुख दुख के ऊपर, मन का
जीवन ही रे अवलम्बन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसे सुख और दुख दोनों क्षणिक प्रतीत होते हैं—केवल आत्मा ही शाश्वत है, चिरंतन है। और आत्मा को, जैसा श्रीमद्भगवद्गीता भी कहती है, सुख दुख कभी नहीं सताते। यह विशुद्ध भारतीय दृष्टिकोण है :—

सुन्दर से अति सुन्दरतर
सुन्दरतर से सुन्दरतमम
सुन्दर जीवन का क्रम रे
सुन्दर सुन्दर जग-जीवन

यह बात निश्चित है कि अब तक कवि-चिंतन किसी एक वाद विशेष में इस प्रकार नहीं बँध पाया है कि यह कह दिया जाय कि इन रचनाओं में कवि अमुक वादी है। कहीं कहीं वह अद्वैतवादी है जैसे 'एक तारा' में :—

चिर अविचल पर तारक अमंद !
जानता नहीं वह छन्द-बन्ध !
वह रे अनंत का मुक्त मीन, अपने असंग सुख में विलीन,
स्थित निज स्वरूप में चिर-नवीन।
निष्कम्प शिखा-सा वह निरुपम, भेदता जगत-जीवन का तम,
वह शुद्ध, प्रबुद्ध, शुक्र, वह सम !

इसमें शुक्र तारे के साथ साथ मुक्त पुरुष का भी वर्णन किया गया है। जिस प्रकार दीप अन्धकार को दूर कर देता है उसी प्रकार मुक्त पुरुष सांसारिक जंजीरों को और इस प्रकार वह अनंत ब्रह्म में विलीन हो जाता है। कहीं कहीं पंत द्वैतवादी है :—

सुनता हूँ इस निस्तल जल में
रहती मछली मोती वाली
पर मुझे डूबने का भय है
भाती तट की चल-जल माली।
आयेगी मेरे पुलिनों पर
वह मोती की मछली सुन्दर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं लहरों के तट पर बैठा
देखूँगा उसकी छवि जी भर।

कवि को "ईश्वर पर चिर विश्वास" है किंतु उसका ईश्वर अद्वैत वादी ब्रह्म नहीं है जिसकी प्राप्ति के लिए 'निस्तल जल' में जाना होता है। वे तो द्वैत चाहते हैं ताकि चुपचाप बैठे बैठे अपने ईश्वर की अनुपम माधुरी निहारते रहें। वे उस 'मोती वाली' मछली की आकांक्षा नहीं करते जिसके लिए जीवन की अतल गहराई में डुबकी लगानी पड़े।

'गुंजन' 'पल्लव' का नैराश्य एवं करुणा नहीं है। कवि को जीवन में अत्यन्त आस्था हो गई है अतः वह आशामयी वाणी में कह उठता है:—

इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम,
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम।
शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजत-हास
शाश्वत लघु-लहरों का विलास।
हे जग-जीवन के कर्णधार! चिर जन्म-मरण के आरपार
शाश्वत जीवन-नौका विहार।
मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण
करता मुझको अमरत्व दान।

अब कवि को प्रकृति एवं जीव नश्वर नहीं ज्ञात होते। यदि इन्हें नश्वर मान लिया जाय तब तो समस्त संसार ही असार हो जायगा, तब तो व्यक्ति विरक्त हो जायगा किन्तु पंत प्रसाद की ही भांति जीवन-धारा को शाश्वत मानते हुए मानव को जीवन की प्रत्येक लहर से खेलने के लिए कहते हैं—

जीवन की लहर लहर से,
हंस खेल खेल रे नाविक;
जीवन के अन्तस्तल में
नित बूड़ बूड़ रे नाविक!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब कवि यों नहीं कहता—

हाय री दुर्बल भ्रांति !
कहाँ नश्वर जगती में शांति ?
सृष्टि ही का तात्पर्य अशांति।
जगत अविरल जीवन-संग्राम,
स्वप्न है यहाँ विराम—

इतना ही नहीं अब कवि जगती को 'नश्वर' न माने अपितु वह अनश्वर मानता है, उसके लिए जड़ और चेतन में कोई भेद नहीं। उसे सर्वत्र एक ही चेतन्य के दर्शन होने हैं जो विलियम वर्ड्सवर्थ के सर्वात्मवाद (Pantheism) के अत्यंत समीप हैं :—

आत्मा है सरिता के भी,
जिससे सरिता है सरिता
जल जल है, लहर लहर रे,
गति गति, सृति सृति, चिर भरिता।

उन्हें 'चराचर' में आत्मा की उपस्थिति दिखाई पड़ती है—

मैं चिर उत्कण्ठातुर
जगती के अखिल चराचर;
यों मौन-मुग्ध किसके बल।

'युगांत' में आकर पंत में न तो पल्लव का सौंदर्यान्वेषण है और न गुंजन जैसा समन्वयवाद। कवि 'जगती के कानन' में 'नव मधु का प्रभात' लाने की आकांक्षा करता है। उसे निश्चय है : कि निश्चय जगत में सुख-सूर्य उगेगा :—

जो सोए स्वप्नों के तम में,
वे जागेंगे यह सत्य बात।
जो देख चुके जीवन निशीथ,
वे देखेंगे जीवन-प्रभात।

प्रारम्भ में ही कवि प्राचीन को शीघ्र ही समाप्त हो जाने के आतुर दिखाई पड़ता है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पात्र,
हे सुस्त ध्वस्त हे शुष्क-शीर्ण।
हिम ताप पीत मधुवात भीत,
तुम वीतराग जड़ पुराचीन।

उसने इसी बात को सीधे शब्दों में कहा है—युगांत में निश्चय रूप से इस परिणाम पर पहुँच गया था कि मानव सभ्यता का पिछला युग अब समाप्त होने को है और नवीन युग का प्रादुर्भाव अवश्यभावी है। जिन प्रेरणाओं से प्रभावित होकर यह कहा था उसका आभास 'ज्योत्स्ना' में पहले ही हो चुका है।' कवि सामंत एवं पूंजीवाद का युगांत करना चाहता है इसीलिए युगांत युगवाणी एवं ग्राम्या में कवि पर दो विचार धाराओं का स्पष्ट प्रभाव है—गाँधीवाद एवं मार्क्सवाद का। २०वीं सदी में दो महान विभूतियाँ—लेनिन एवं गाँधी—धरती के अश्रु पौंछने के लिए अवतरित हुई। दोनों ही हृदय से मानव जाति की कल्याण कामना करते थे। इस प्रकार दोनों का साध्य एक ही था किन्तु साधन भिन्न भिन्न थे। गाँधी की दृष्टि में साध्य के समान साधन भी पवित्र होना चाहिए था जबकि लेनिन के लिए साध्य ही मुख्य था, साधन कुछ भी हो, कैसा भी हो। पन्त इसी सी-सौ (See saw) पर बहुत दिनों तक झूलते रहे। उनमें किसी एक सिरे पर रुकने की अभिलाषा नहीं थी, शायद सामर्थ्य भी नहीं थी। वे निश्चय नहीं कर पाए कि इनमें से-लेनिन द्वारा गृहीत मार्क्सवाद एवं गाँधीवाद में से-किसके द्वारा जीवन का कल्याण सम्भव है। कभी गाँधीवाद उसे अपनी ओर खींच लेता है तो कभी मार्क्सवाद। कभी कवि आध्यात्मवाद की रामनामी ओढ़े आता है तो कभी मार्क्सवाद का खद्दर लपेटे कभी दोनों को एक साथ लपेट लेता है तो कभी दोनों को एक ही साँस में उतार फेंकता है। भौतिकवादियों के लिए पंत की फटकार सुन लीजिए :—

आत्मवाद पर हंसते हो भौतिकता का रट नाम?
मानवता की मूर्ति गढ़ोगे तुम संवार कर चाम?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्तुवाद ही सत्य मृषा सिद्धान्तवाद आदर्श ?
बाह्य परिस्थिति पर आश्रित अन्तर जीवन उत्कर्ष ?

निम्न पँक्तियों में कवि की आध्यात्मवाद के प्रति अवस्था देखिए:—

बापू ! तुमसे सुन आत्मा का तेजराशि आह्वान,
हँस उठते हैं रोम हर्ष से पुलकित होते प्राण ।

\+ \+ \+

सुख भोग भोगने आते सब,
आए तुम करने सत्य खोज ।
जग की मिट्टी के पुतले जन,
तुम आत्मा के मन के मनोज ।

\+ \+ \+

तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल—

\+ \+ \+

आए तुम मुक्त पुरुष कहने,
मिथ्या जड़ बन्धन सत्य राम ।
नानृतं जयति सत्यं मा भैः,
जय ज्ञान ज्योति तुमको प्रणाम ।

उपरोक्त पंक्तियों में पंत ने गाँधी और उनके व्याज से अध्यात्मवाद का गुणगान किया है । अब जरा यह पंक्तियाँ भी पढ़ लीजिए जिनके आगे प्रश्नवाचक चिह्न लगे हैं—

आत्मा की महिमा से मंडित होगी नव मानवता ?
प्रेम शक्ति से चिर निरस्त्र हो जावेगी पाशवता ?

युगांत में मानववादी पंत ने लिखा था—

इस भस्म-काम तन की रज से,
जग पूर्ण-काम नव जगजीवन ।
बीनेगा सत्य अहिंसा के,
तानों बानों से मानव पर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्होंने ही युगवाणी में लिखा--

सत्य अहिंसा से अलौकिक होगा मानव का मन ?
अमर प्रेम का मधुर स्वर्ग बन जावेगा जगजीवन ?

इतना ही नहीं कवि गाँधी-दर्शन की पराजय में जगत का कल्याण देखता है। पहले गांधीवाद के विषय में कवि कहता है:-

ये राज्य, प्रजा ; जन साम्य तंत्र,
शासन, पालन के कृतक मान।
मानस, मानुषी, विकास शास्त्र,
हैं तुलनात्मक सापेक्ष ज्ञान।
भौतिक विज्ञानों की प्रसूति,
जीवन-उपकरण चयन प्रधान।
मथ सूक्ष्म-स्थूल जग बोले तुम,
मानव मानवता का विधान।

फिर गांधी पर नुकीले बाण देखिए--

गत आदर्शों का अभिभव ही मानव आत्मा की जय,
अतः पराजय आज तुम्हारी जय से चिरलोकोज्वल।
+ + +
विजित आज तुम नर वरेण्य गणजन विजयी साधारण।
+ + +
किए प्रयोग नीति सत्यों के तुमने जन जीवन पर,
भावादर्श न सिद्ध कर सके सामूहिक-जीवन-हित।
अधोमूल अश्वत्थ विश्व शाखाएँ संस्कृतियां वर,
वस्तुविभव पर ही जन गण का भावविभव अवलंबित।

गाँधीवाद के प्रवल शास्त्र कवच अहिंसा पर भी पंतजी के विचार सुनिए।

हिंसा विनाश यदि नहीं अहिंसा मात्र सृजन,
वह लक्ष्य शून्य अब भर न सकी जन में जीवन;
निष्क्रिय उपचेतन ग्रस्त एक देशीय परम,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सांस्कृतिक प्रगति गति से रहित आज जन हित दुर्गम।
हैं सृजन विनाश सृष्टि के आवश्यक साधन
यह प्राणि शास्त्र का सत्य नहीं, जीवन-दर्शन।

एक स्थान पर आप लिखते हैं :—

नहीं जानता युग विवर्त में होगा कितना जन क्षय,
पर मनुष्य को सत्य अहिंसा इष्ट रहेंगे निश्चय।

पर पन्त के अनुसार अहिंसा तभी ठीक है जब मानव पूर्ण विकसित हो जाय, इस समय तो अहिंसा 'बंधन' है।

बंधन बन रही अहिंसा आज जनों के हित,
वह मनुजोचित निश्चित कब ? जब जन हो विकसित।

इतना ही क्यों पंत मार्क्स को भी नमस्कार करते हैं :—

धन्य मार्क्स ! चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर,
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।

× × ×

साम्यवाद के साथ स्वर्ण युग करता मधुर पदार्पण,
मुक्त निखिल मानवता करती मानव का अभिवादन !

अब आप पंत को गाँधीवादी कहेंगे अथवा मार्क्सवादी अथवा दोनों ?

मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गाँधीवाद
सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद।

यदि आप चाहें तो उन्हें न तो अध्यात्मवादी कह सकते हैं और न भौतिकवादी।

"जिस प्रकार हमारे मध्ययुगीन विचारकों ने आत्मवाद से प्रकाश-अन्ध होकर मानव-चेतना के भौतिक (वास्तविक) धरा-तल को माया-मिथ्या कहकर भुला देना चाहा......उसी प्रकार आधुनिक विज्ञान दर्शनवादी......और विशेषकर मार्क्सवादी भौतिकता के अधिकार में और कुछ भी न सूझने के कारण मन (गुण) तथा संस्कृति (सामूहिक अन्तर्चेतना) आदि को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पदार्थ देना चाहते हैं जो मान्यताओं की दृष्टि से ऊर्ध्व तथा समतल दृष्टिकोणों में सामंजस्य स्थापित न कर सकने के कारण उत्पन्न भ्रांति हैं।"[१]

एक स्थान पर और देखिए—"मैं अध्यात्म और भौतिक, दोनों दर्शनों के सिद्धान्तों से प्रभावित हुआ हूँ, पर भारतीय दर्शन की सामंतकालीन परिस्थितियों के कारण जो एकांत परिणति व्यक्ति की प्राकृतिक मुक्ति में हुई है (दृश्य जगत एवं ऐहिक जीवन के माया होने के कारण उसके प्रति विराग आदि की भावना जिसके उपसंहार मात्र हैं) और मार्क्स के दर्शन की पूँजीवादी परिस्थितियों के कारण जो वर्गयुद्ध और रक्त-क्रांति में परिणति हुई है ये दोनों परिणाम सांस्कृतिक दृष्टि से उपयोगी नहीं जान पड़े।"[२]

इस प्रकार पंत गांधीवादी होते हुए भी गांधीवादी नहीं हैं वस्तुवाद का समर्थन करते हुए भी वे वस्तुवादी नहीं हैं। प्रसाद की ही भाँति पंत की धारणा है कि यह बौद्धिक उत्कर्ष का परिणाम है कि मानव-मानव के बीच वर्गों की इतनी चौड़ी खाई आ गई है।

आज चतुर्दिक घृणा द्वेष,
स्पर्धा से जग जीवन परितापित
आज एकता के मंदिर में
अहम्मन्य जड़ समता स्थापित।

पंत को विश्वास हो चला कि निरी भौतिकवादी प्रगति से मानव संतुष्ट नहीं हो सकता। अतः वस्तुवाद से एक बार पुनः वे अन्तमन की ओर मुड़ गए।

सामाजिक जीवन से कहीं महत् अन्तर्मन,
वृहत विश्व इतिहास चेतना गीता किंतु चिरंतन।

१—'उत्तरा' की भूमिका।
२—आधुनिक कवि—पर्यालोचन पृ० ३२--३१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनके गद्य के शब्दों में—"आधुनिक भौतिकवाद हमें मध्ययुगीन भारतीय दार्शनिकों के आत्मवाद की तरह अपने युग के लिए एकांगी तथा अधूरा लगता है। मानव-जीवन के रूप को अखण्डनीय ही मानना पड़ता है, उसके टुकड़े नहीं किए जा सकते। सांस्कृतिक संचरण न राजनीति की तरह सबल संचरण है और न धर्म तथा अध्यात्म की तरह ऊर्ध्व संचरण। वह उन दोनों का मध्यवर्ती पंथ है।" किन्तु प्रगतिवाद के अनंतर जो धार्मिक लिबास पंत जी ने पहना है वह नगेन्द्र के शब्दों में 'मनोवैज्ञानिक है। इसका संबंध सूक्ष्म चेतना से है। पंतजी का आत्मा की सत्ता में अटल विश्वास है परन्तु वे आत्मा को चेतना का सूक्ष्म रूप मानते हैं, अपने में सर्वथा निरपेक्ष भौतिक जीवन एकांत अविष्कृत उसका अस्तित्व नहीं है और स्पष्ट शब्दों में मानव-हृदय का पूर्णतम विकसित रूप आत्मा है। अतएव उसमें मानव-हृदय की विभूतियों का चरम विकास मिलता है। उनसे रहित शुद्ध-बुद्ध अथवा निर्लिप्त रूप, नकारात्मक एवं निवृत्ति-मूलक पंत को अग्राह्य है। उन्होंने जिस आध्यात्मिक चेतना की कल्पना की है उसमें भौतिकता का परिष्कार है, तिरस्कार नहीं, उन्नयन है दमन नहीं है।'[१] वे चाहते हैं।

आज हमें मानव मन को करना आत्मा के अभिमुख लेकिन साथ ही।

वही सत्य कर सकता मानव जीवन का परिचालन,
भूतवाद हो जिसका रज तन प्राणिवाद जिसका मन,
औ अध्यात्मवाद हो जिसका हृदय गंभीर चिरंतन।

कवि ने चारों ओर हाहाकार का अट्टहास सुना। उसने देखा कि आज का जीवन भौतिकता के पीछे इतना बावला है कि उसने आत्मा की सर्वथा उपेक्षा कर रक्खी है। जीवन में संतुलन नहीं

१—सुमित्रानंदन पंत—पृ० १६६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रह गया है फलतः वह आज अत्यन्त विषण्ण है। पन्त अन्तर्जीवन एवं वहिर्जीवन के इसी असामंजस्य पर रो उठते हैं :—

बहिर्चेतना जाग्रत जग में, अन्तर्मानव निद्रित।
वाह्य परिस्थितियाँ जीवित, अन्तर्जीवन मूर्छित, मृत।

कवि की धारणा है कि इस अन्तर एवं बहिर्जीवन के सामंजस्य के अभाव में जीवन का दैन्य एवं विषाद तिरोहित नहीं हो सकता। "....भविष्य में हम जिस मानवता अथवा लोक संस्कृति का निर्माण करना चाहते हैं उसके लिए हमें वाहर भीतर दोनों ओर से प्रयत्न करना चाहिए. सूक्ष्म और स्थूल—दोनों शक्तियों से सामंजस्य करना चाहिए।"[1] पंत ने दर्शनों का अध्ययन मन की शांति के लिए किया। वे लिखते हैं—"दर्शन शास्त्र और उपनिषदों के अध्ययन ने मेरे रागतत्व में मंथन पैदा कर दिया और उसके प्रभाव की दिशा वदल दी। मेरी निजी इच्छाओं के संसार में कुछ समय तक नैराश्य और उदासीनता छा गई.........किंतु दर्शन का अध्ययन विश्लेषण की पैनी धार से जहाँ जीवन के नाम, रूप गुण के छिलके उतार कर मन की सून्य परिधि में भटकता है वहाँ छिलके के फल के रस की तरह व्याप्त एक ऐसी सूक्ष्म संश्लेषणात्मक सत्य के आलोक.......से भी हृदय को स्पर्श करता है कि उसकी सर्वातिशयता चित्र को आनन्द से मुग्ध और विस्मित कर देती है। भारतीय दर्शन ने मेरे मन को अस्थिर कर दिया।" उसके मन की यह अस्थिरता अरविन्द दर्शन से बहुत कुछ दूर हो गई। १६४७ में 'स्वर्णकिरण' के प्रकाशन के साथ-साथ ही पंत के जीवन-दर्शन में नया मोड़ आया। 'ग्राम्या' 'युगवाणी' में भौतिकता की पृष्ठभूमि पर कवि अपने विचारों का (भावों का नहीं) गद्यमय पद्य में उच्चार कर दलितों के प्रति अपनी 'बौद्धिक सहानुभूति' दिखा रहा था। उपरांत उसने भविष्य का कल्याण

१—उत्तरा की भूमिका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राचीन दर्शन की आध्यात्मिकता में देखा, भौतिकता की सीमायें दीख गई उसे अतः मानवता के कल्याणार्थ उर्ध्व सांस्कृतिक संचरण को वह अनिवार्य समझने लगा। स्वर्ण किरण से उत्तरा तक कवि का यही ऊर्ध्व सांस्कृतिक संचरण है जो अरविंद में बहुत कुछ प्राप्त होता है, और इसीलिए उनके स्वर्ण-काव्य में अरविन्द के दर्शन के प्रति उनकी आस्था के बार-बार दर्शन होते है—"श्री अरविन्द के प्रति मेरी कुछ विनम्र रचनायें भेंट रूप में 'स्वर्ण किरण' 'स्वर्णधूलि' तथा 'युगपथ' में पाठकों को मिलेंगी। श्री अरविन्द को मैं इस युग की अत्यंत महान् तथा अतुलनीय विभूति मानता हूँ। उनके जीवन-दर्शन से मुझे पूर्ण संतोष प्राप्त हुआ। उनसे अधिक व्यापक ऊर्ध्व तथा अतलस्पर्शी व्यक्तित्व जिनके जीवन दर्शन में अध्यात्म का सूक्ष्म, बुद्धि अग्राह्य सत्य नवीन ऐश्वर्य तथा महिमा से मंडित हो उठा है मुझे दूसरा कहीं देखने को नहीं मिला। विश्व कल्याण के लिए मैं श्री अरविंद की देन को इतिहास की सबसे बड़ी देन मानता हूँ। उसके सामने इस युग के वैज्ञानिकों की अणुशक्ति की देन भी अत्यन्त तुच्छ है। उनके दान के बिना शायद भूत विज्ञान का बड़े से बड़ा दान भी जीवन्मृत मानव जाति के भविष्य के लिए आत्म पराजय तथा अशांति ही का वाहक बन जाता।[१] कवि ने 'स्वर्णधूलि' में अरविंद के प्रति अपनी श्रद्धा के फूल इन शब्दों द्वारा चढ़ाए हैं।

श्री अरविंद, सभक्ति प्रणाम !
विश्वात्मा के नव विकास तुम,
परम चेतना के प्रकाश तुम,
ज्ञान भक्ति श्री के विलास तुम,

पूर्ण प्रकाश,
सकर्म प्रणाम !

१—वही।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'उत्तरा' में भी पंत पर योगिराज का प्रभाव प्रचुर है :—

नव जीवन शोभा के ईश्वर
अमर प्रीति के तुम वर,
स्वर्ण शुभ चेतना मुकुल से
खिलते उर में सुन्दर !
शांत अभय हो जाता अन्तर
ध्यान तुम्हारा स्नेह मौनधर,
श्रद्धा पावन हो उठता मन
हर्ष प्रणत चरणों पर !

इस प्रकार स्वर्ण-काव्य उत्तरा आदि परवर्ती काव्यों में पंत नव संस्कृति के गीत गा निकले हैं। उनकी सांस्कृतिक चेतना एवं नव-मानववाद अरविंद की ही देन है। पन्त का नव-मानव महर्षि का ही नव-मानव है। श्री अरविन्द के अनुसार अन्तिमन (Super-mind) के उदय हो जाने पर जीवन एवं संसार को मिथ्या कह देना सरासर ग़लती है, उच्च मूल्यों की प्राप्ति के अनंतर निम्न मूल्यों को हेय ठहराना मूर्खता है। एक शब्द में अध्यात्मवाद एवं भूतवाद, सूक्ष्म एवं स्थूल का सामंजस्य ही नव मानववाद है—"भविष्य में हम जिस मानवता अथवा लोक संस्कृति का निर्माण करना चाहते हैं उसके लिए हमें बाहर भीतर दोनों ओर से प्रत्यन करना चाहिए।" इन पंक्तियों में पंत अध्यात्मवाद एवं मार्क्सवाद को लांघ कर अरविंदवाद की छाँह में साँस ले निकलते हैं। उनके अनुसार मानव-संस्कृति की विकृति का कारण मानव की बहिरँतर शक्तियों का पारस्परिक द्वन्द्व है पंत के अनुसार 'बाहर भीतर दोनों ओर से' संस्कृति का निर्माण ही मानवता को समुन्नत कर सकता है :—

बहिर्नयन विज्ञान हो महत्,
अन्तर्दृष्टि ज्ञान से योजित !

अब पन्त को लोक संगठन के साथ-साथ सांस्कृतिक आंदोलन भी अभीष्ट है। 'इन्द्रधनुष' नामक एक कविता में वे लिखते हैं:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऊर्ध्व संचरण में रे ! व्यक्ति
निखिल समाज का नायक,
समदिक् गति में सामाजिकता
जनगण भाग्य विधायक,
ऊर्ध्व चेतना को चलना भू पर
धर जीवन के पग,
समदिक मन को पंख खोल चिद्
नभ में उठना व्यापक।

यहाँ पंत एवं प्रसाद एक ही स्थान पर आ खड़े होते हैं। प्रसाद जी भी सामंजस्य, समन्वय, समरसता को आनंद का सुनिश्चित पथ मानते थे। पंत जी भी अन्त में. अपनी परवर्ती रचनाओं में समन्वय चाह निकलते हैं—वहिर्मन एवं अंतर्मन का, अध्यात्म एवं भूत का, जड़ एवं चेतन का, स्वर्ग एवं पृथ्वी का, अद्वैत एवं मार्क्स का :—

आकाश झुक रहा धरती पर,
बरसा प्रकाश के उर्वर कण,
धरती उसके उर में बुनती,
छाया का सतरंग सम्मोहन !
हो रहा स्वर्ग से धरणी का,
जड़ का चेतन से रहस मिलन।
भू स्वर्ग एक हो रहे शनैः,
सुरगण नर तन करते धारण।

इस समन्वय के उपरांत पंत का भावी समाज देखिए :—

युग्म प्रीति के लिए प्राण आहुति
फिर करें निरूपित,
अजित पंचशर के हित मोहक,
ज्योति व्यूह रच विस्तृत।
फूलों के वाणों से जीवन का,
मधु हो चिर संचित,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यौवन के शोभा तोरण में
युवति युवक विचरें स्मित।

संभव है युगवाणी-ग्राम्या का पाठक अचरज में पड़ जाय, अतः पन्त जी 'उत्तरा' की भूमिका के प्रारंभ में ही लिख देते हैं- "बाहरी दृष्टि से उन्हें (पाठकों को) 'युगवाणी' तथा 'स्वर्णकिरण' काल की रचनाओं में शायद परस्पर विचार-धाराओं का समावेश मिले पर वास्तव में ऐसा नहीं है।" क्योंकि " 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में यदि ऊर्ध्व मानों का समधरातल पर समन्वय हुआ है तो 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' में समतल मानों का ऊर्ध्व धरातल पर, जो तत्वतः एक ही लक्ष्य की ओर निर्देश करते हैं।"

पन्त के उत्तरकालीन रचनाओं के नवीन दर्शन इन पंक्तियों में देखिए—

वही सत्य कर सकता, मानव जीवन का परिचालन।
भूतवाद हो जिसका रज तन प्राणिवाद जिसका मन॥
औ! अध्यात्मवाद हो जिसका हृदय गँभीर चिंतन।
× × × ×
आज जगत में उभय रूप तम में गिरने वाले जन,
ज्योति केतु ऋषि दृष्टि करे उन दोनों का सँचालन।
बहिरंतर की सत्यों का जगजीवन में कर परिणय,
ऐहिक आत्मिक वैभव से जन मँगल हो निःसंशय।
× × × ×
बदल रहा अब स्थूल धरातल,
परिणत होता सूक्ष्म मनस्तल,
× × विस्तृत होता बहिर्जगत अब,
विस्तृत अन्तर्जीवन अभिमत।
× ×

—और पन्त के नवीन जीवन-दर्शन का यही 'ऊर्ध्व संचरण' है जो मानव को देवोत्तर बनाने के लिए—'सबसे सुँदरतम' कर देने के लिए - कृति निश्चय है!

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११ प्रसाद एवं पंत की भाषा तथा शैली

"जिस प्रकार चित्र के लिये रेखाएँ और मूर्ति के लिए प्रस्तर की काट-छाँट अनिवार्य है। उनके विना चित्र और मूर्ति की सत्ता ही नहीं हो सकती, उसी प्रकार भाषा के विना साहित्य का अस्तित्व भी संभव नहीं है।"

—बा० श्यामसुन्दरदास–'साहित्यालोचन' पृ० ६७।

तब इन्सान इन्सान नहीं था, हाँ पशु से कुछ अवश्य ऊँचा था। क्षण-क्षण उसके मस्तिष्क में विकास होता जा रहा था, पल-पल उसकी बुद्धि में वृद्धि होती जा रही थी, धीरे-धीरे वह उस अवस्था में आ गया जब छोटे-छोटे भाव उसे अभिभूत करने लगे। वह चाहने लगा कि उसके संगी-साथी भी उसके हृदय की सुन लें एवं, विनिमय में, वह भी उन की सुन ले। बस आभ्यंतरिक विचारों के व्यक्तीकरण के लिए वह संकेत करने लगा, नैनों से बातें करने लगा, इंगितों से ही अपनी कहने एवं दूसरों की सुनेन लगा। शनैः शनैः वे इंगित, वे इशारे, वे सकेत स्थायी बन गए, 'बोली' बन गए। यही बोली जरा और निखार पाकर 'भाषा' के पुनीत आसन पर जा बैठी। मनु की संतान ने उसे निखारा, और निखारा एवं अपनी संतति के लिए अपनी बात, अपना ज्ञान, अपने अनुभव छोड़ जाने की उत्कट इच्छा से पत्थर, दीवाल, पत्ता जो कुछ उसे मिला, गोद डाला उसने। फिर तो भावों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा ही सबल माध्यम बन गई।

यदि भाव प्राण हैं तो भाषा शरीर! दोनों की महत्ता समान है—एक के बिना दूसरा व्यर्थ है। प्राण के बिना शरीर शव है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी प्रकार शरीर के बिना प्राण वायु मात्र। प्राणहीन समलंकृत शरीर भी किस काम का? इसी प्रकार बिना शरीर के प्राण की प्रतिष्ठा ही कहाँ होगी? कुछ का मत है कि भाव सुन्दर होना चाहिए, भाषा कैसी भी हो—

भाव अनूठो चाहिए, भाषा कैसी होइ।

इससे भिन्न कुछ का विचार है कि भाषा ही—शरीर ही सब कुछ है, भाव-प्राण कुछ नहीं। ऐसे लोग शब्दों को सजा-सजा कर ताज महल बना देते हैं, उन्हें यह चिंता नहीं रहती कि उन द्वारा निर्मित उस महल के भीतर सप्राण भाव नहीं, शवमात्र रखा गया है। प्रथम के उदाहरण ब्राउनिंग, कबीर एवं द्वितीय के पोप (Alexander Pope), टैनिसन (Lord Tennyson) आदि हैं। वर्तमान युग के हिन्दी के बीसियों खद्योत इसी श्रेणी में आते हैं जिनके पास सिवाय वाग्जाल के, अर्थ-हीन शब्द-सौंदर्य के, कुछ भी नहीं है। प्रथम प्रकार के कवि अर्थात् जिनके लिए भाव ही सब कुछ हैं यह चिंता नहीं करते कि वे जो कुछ कह रहे हैं कैसे कह रहे हैं, उन्हें तो वजन से, भाव से, प्रयोजन है तुक चाहे मिले अथवा नहीं। दूसरे प्रकार के कवि अर्थात् जो भावाभिव्यंजन पर फिदा हैं एक-एक शब्द पर ध्यान देते हैं। पोप ने तो स्वयं कहा था कि बातें तो पहले भी कही गई हैं किन्तु उनकी अभिव्यंजना मुझसे अच्छी कोई नहीं कर सका।[1] वह किसी भी रचना को उस समय तक छपने नहीं भेजता था जब तक उस पर वर्षों विचार न कर ले। 'काता और ले दौड़े' वाली बात उसे नहीं रुचती थी। अपने इसी अथक परिश्रम से वह अँगरेजी के ईंटों के काव्य-भवन को संगमरमर का बना सका था।[1] वह ऐसे ऐसे शब्दों को खोज कर लाता था कि भावाभिव्यक्ति स्वयमेव हो जाय। उसने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ

1. What oft was thought but ne'er so well expressed.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समालोचना पर निबंध' (Essay on Criticism) में लिखा है में लिखा है कि काव्य-भाषा के लिए यही आवश्यक नहीं है कि उसमें श्रुति कटुत्व न हो अपितु यह भी आवश्यक है कि शब्द-ध्वनि से ही भाव-प्रतिध्वनित हो जाय।[२] सच पूछा जाय तो इन भाववादी एवं कलावादी दोनों को ही कबीर की इस सबल पंक्ति से फटकारा जा सकता है :—

अरे ! इन दोऊ राह न पाई।

सुन्दर काव्य वही है जिसमें भाव की गरिमा के साथ साथ अभिव्यंजना का सौष्ठव हो, भाषा की उच्चता के साथ-साथ भावों की महानता हो, शरीर के सौंदर्य के साथ-साथ प्राणों की निष्क-लुषता हो। एक को रोता छोड़ कर दूसरे का शृंगार करते रहना कम से कम हमें तो नहीं रुचता।

वस्तुतः भाषा ही वह साधन है जिसकी उँगली पकड़ कर कवि अपने हृदय के उफान को अपने साथियों को दिखा पाता है। जिस कवि के पास सबल भाषा होती है उसकी अभिव्यक्ति सबल होती है एवं जिसकी भाषा में बल की न्यूनता होती है उसका भाव भी पाठक तक पंगु होकर ही पहुँचेगा। भाषा की सबलता से मेरा मतलब यह नहीं कि कवि कुछेक एक ऐसे शब्दों को घोट ले जो क्लिष्ट तो हों किन्तु सारहीन हों,[३] अर्थात् जिनमें खाली कनस्तर की भाँति आवाज ही आवाज हो और उन्हीं का बार-बार प्रयोग करे। कोई भी व्यक्ति शब्द घोट कर ही कवि नहीं बन सकता। भाषा की सबलता का अर्थ है कि कवि यह जानता हो कि अमुक भाव की अभिव्यक्ति के लिए अमुक प्रकार की भाषा उपयुक्त रहेगी एवं अमुक प्रकार की शब्दावली में अमुक प्रकार का भाव ही सुन्दरता से व्यक्त किया जा सकता है। कवि को बोध होना चाहिए कि मिश्री के स्थान पर नमक नहीं डाला जा सकता ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि नमक के स्थान पर शक्कर नहीं। कवि के कान प्रत्येक समय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खुले रहना चाहिए ताकि वह प्रत्येक शब्द की आवाज आसानी से सुन सके। शब्द-शब्द की आत्मा से उसकी जान पहचान होना चाहिए। इन्हीं सब बातों के अभाव में भाषा निर्बल हो जायगी एवं कवि का अभीप्सित प्रभाव नहीं पड़ेगा।

प्रसाद एवं पंत के आविर्भाव से पूर्व हिन्दी का समस्त साहित्य ब्रजभाषा में था। भारतेन्दु ने खड़ी बोली में लिखने का प्रयास तो किया किन्तु उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली। 'भारत-दुर्दशा' में उन्होंने लिखा—"पश्चिमोत्तर देश की कविता की भाषा ब्रजभाषा है—यह नियत हो चुकी है और प्राचीन काल से लोग इसी भाषा में कविता करते आते हैं परन्तु यह कह सकते हैं कि यह नियम अकबर के समय से पूर्व नहीं था क्योंकि मुहम्मद जायसी और चंद की कविता विलक्षण ही है और वैसे ही तुलसीदास ने भी ब्रजभाषा का नियम भंग कर दिया। जो हो मैंने स्वयं कई बेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊँ पर वह मेरे चित्तानुसार नहीं बनती।" द्विवेदी जी ने भी भारतेन्दु परम्परा को आगे बढ़ाया। उन्हें यह नहीं रुचा कि वही भाषा "वही तुक, वही छन्द, वही शब्द वही उपमा, वही रूपक" प्रयोग में लाए जाँय। इतना ही नहीं ब्रज-भाषा के "कवित्त, सवैये, दोहे, सोरठे" भी उन्हें अत्यंत अरुचिकर प्रतीत हुए। अतः उनके युग के कवि—बा० मैथिलीशरण, हरिऔध, रामचरित उपाध्याय, वे स्वयं—ब्रज भाषा का मोह छोड़ कर खड़ी बोली में लिखने लगे। इन कवियों ने—विशेषतः गुप्त एवं हरिऔध जी ने—खड़ी बोली का बहुत कुछ परिमार्जन किया किंतु वे उसमें

1—"He found English poetry to be of bricks and left it to be of marbles."

2—It is not enough, no harshness gives offence.
The sound must seem an echo to the sense.

3—High sounding words.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उतना मिठास नहीं ला सके जितना ब्रजभाषा में था। यह कार्य प्रसाद जी एवं उससे भी अधिक पंत जी ने किया। वास्तविकता यह है कि द्विवेदी युग खड़ी बोली का प्रयोग-काल ही था, उसका पूर्ण विकास छायावाद युग में प्रसाद एवं पंत ने किया। द्विवेदी जी का युग भावों में तो दीन था ही, मराठी के प्रभाव से भावाभिव्यक्ति में भी अत्यन्त रंक था। भाषा की आर्द्रता, मसृणता, स्निग्धता, प्रांजलता क्या होती है—यह तब तक वे नहीं जानते थे। उनके युग एवं प्रसाद पंत निराला युग के बीच एक अत्यन्त मोटी लकीर खिंच जाती है—इनके भावों के अनूठेपन के कारण, भाषा के रंगीलेपन के कारण। द्विवेदी युगीन भाषा के खद्दर को प्रसाद एवं पंत ने रेशम बना के छोड़ा।

प्रारम्भ में तो प्रसाद जी भी ब्रजभाषा के सवैये रचते थे। सन् १६०५ में उन्होंने अपनी कृति-'प्रेम पथिक'—ब्रजभाषा में प्रकाशित कराई थी किन्तु कवि बड़ा सजग था। वह युग की धड़कन सुन रहा था, जमाने की हवा का रुख निहार रहा था। इस भय से कि युग कहीं उसकी इस रचना को विस्मृति-कक्ष में न फेंक दे, १६१३ ई० में इन्होंने इसे फिर प्रकाशित कराया किन्तु अब के ब्रजभाषा में नहीं अपितु खड़ी बोली में। पंत जी ने प्रारम्भ से ही खड़ी बोली में लिखा उन्हें ब्रजभाषा क्यों नहीं रुची? खड़ी बोली से उन्हें इतना मोह क्यों हुआ?—इसका उत्तर उन्होंने ५८ पृष्ठों के पल्लव के 'प्रवेश' में दिया है। इसमें इन्होंने ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली की तुलना करके अपना निर्णय खड़ी बोली की ओर दिया है। प्रथम तो वे भाषा के विषय में ही लिखते हैं—"भाषा संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है—यह विश्वास ही हृदतंत्री की झंकार है जिसके स्वर में यह अभिव्यक्ति पाता है।" पल्लव के 'प्रवेश' में आप लिखते हैं—"हिन्दी ने अब तुतलाना छोड़ दिया, वह 'पिय' को 'प्रिय' कहने लगी है। उसका किशोर कण्ठ फूट गया, अस्फुट अंग कट-छँट गए, उनकी अस्पष्टता में एक स्पष्ट स्वरूप की झलक आ गई; वह विशाल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा उन्नत हो गया ; पदों की चंचलता दृष्टि में आ गई ; हृदय में नवीन भावनाएँ, नवीन कल्पनाएँ उठने लगीं, ज्ञान की परिधि बढ़ गई।......... विश्व जननी प्रकृति ने उसके भाल में स्वयं अपने हाथ से केशर का सुहाग—टीका लगा दिया, उसके प्राणों में अक्षय मधु भर दिया है।.......... मुझे तो इस तीन चार सौ वर्षों की वृद्धा (अर्थात ब्रजभाषा) के शब्द बिल्कुल रक्त माँस हीन लगते हैं; जैसे भारती की वीणा की झंकारें बीमार पड़ गई हों, उसके उपवन के लहलहे फूल मुरझा गए हों; जैसे साहित्याकाश का 'तरणि' ग्रहण लग जाने से निष्प्रभ 'तरनि' बन गया हो ; भाषा के प्राण चिरकाल से पीड़ित तथा निःशक्त होकर अब 'प्रान' कहे जाने योग्य रह गए हों.......... और 'थान' जैसे बहुत दिनों से लिपा-पुता न हो, श्री हीन बिछाली बिछा हुआ, ढोरों के रहने योग्य ; वैसे ही ब्रजभाषा की क्रियाएँ भी—'कहत' 'लहत' 'हरहु' 'भरहु'—ऐसी लगती हैं जैसे शीत या किसी अन्य कारण से मुँह की पेशियाँ ठिठुर गई हों, अच्छी तरह खुलती न हों अतः स्पष्ट उच्चारण करते न बनता हो ; पर यह सब खड़ी बोली के शब्दों को सुनने, पढ़ने, उनके स्वर में सोचने आदि का आभास पड़ जाने से।" वे इसी भूमिका में आगे भी लिखते हैं—"खड़ी बोली आगे की स्वर्णाशा है, उसकी बाल-काल में भावी की लोकोज्ज्वल पूर्णिमा छिपी है। वह हमारे भविष्याकाश में स्वर्गगंगा है, वह समस्त भारत का हृत्कंपन है। हमें भाषा नहीं, राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है ; पुस्तकों की नहीं मनुष्यों की भाषा ; जिसमें हम हँसते रोते, खेलते, कूदते, लड़ते, गले मिलते, साँस लेते और रहते हैं। जो हमारे देश की मानसिक दशा का मुख दिखलाने के लिए आदर्श हो सकें ; जो कालानिल के ऊँच-नीच, ऋजुकुंचित, कोमल-कठोर घात प्रतिघातों की ताल पर विशाल समुद्र की तरह शत शत स्पष्ट स्वरूपों में तरंगित-कल्लोलित हो, आलोड़ित-विलोड़ित हो, हँसती गरजती, संकुचित-प्रसारित होती, हमारे हर्ष-रुदन, विजय-पराभव, चीत्कार-किलकार, संधि-संग्राम को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिध्वनित कर सके, उसमें स्वर भर सके। यह अत्यन्त हास्यजनक तथा लज्जा स्पद है कि हम सोचें एक स्वर में, प्रगट करें दूसरे स्वर में। हमारे मन की वाणी न हो; हमारे गद्य का कोष भिन्न, पद्य का भिन्न हो; हमारी आत्मा के सा रे गम प्रथक हों, वाद्ययंत्र के प्रथक, हमारी भावतन्त्री और शब्द-तंत्री के स्वरों में मेल न हो। मूर्धन्यष की तरह हमारे साहित्य को हृदय वेश की आत्मा, एक कृत्रिम दीवार देकर दो भागों में बाँट दी जाय।"

इन पंक्तियों में पंत ने ब्रजभाषा पर कई दिशाओं से आक्रमण किया है। उनके अनुसार ब्रजभाषा कृत्रिम है, उसमें सौंदर्य एवं माधुर्य तो है किंतु महाप्राणता एवं व्यापकता नहीं और सबसे बड़ा दोष तो यह है कि वह लोक व्यवहार की भाषा नहीं।

इसी स्टेटमेंट (Statement) के अनुसार पंत एवं प्रसाद ने खड़ी बोली का परिमार्जन करके अपने अपने सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं सबलतम भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।

संस्कृत में भाषा के तीन गुण माने गए हैं—माधुर्य, ओज एवं प्रसाद—

गुणामाधुर्यमोजोऽथ प्रसाद इति ते त्रिधा।[1]

'माधुर्य' वह गुण है जिसके सुनने से मन द्रवीभूत हो जाय।
काव्य में यह गुण तभी लाया जा सकता है जब टवर्ग का सर्वथा वहिष्कार कर दिया जाय। पं० विश्वनाथ के अनुसार—

चित्त द्रवी भाव मयोह्लादो माधुयमुच्यते,
संभोगे करुणे विप्रलंभे शान्तेऽधिकं क्रमात्।[2]

अर्थात्—चित्त को द्रवित करने वाले आह्लाद को माधुर्य कहते हैं। यह संभोग, करुण, विप्रलंभ एवं शांत रस में क्रम से अधिकाधिक होता जाता है। यही बात आचार्य मम्मट कहते हैं:

आह्लादकत्वं माधुर्यं शृंगारे द्रुतिकारणम्;
करुणे विप्रलंभे तच्छान्ते चाति शयान्वितम्।[3]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् आह्लादकत्व (ही) माधुर्य है। द्रुतिकारणम् अर्थात् मन को द्रवित करने वाला होता है। यह शृंगार, करुण, विप्रलंभ एवं शांत रसों में अतिशयता से पाया जाता है।

'ओज' गुण 'वीर वीभत्स रौद्रेषु'[४] अर्थात् वीर, वीभत्स एवं रौद्र रसों में होता है। भाषा का यह गुण हिन्दी के वीरगाथा-कालीन कवियों एवं भूषण का परमप्रिय था। इसमें टवर्ग ग, ध, एवं संयुक्त वर्णों का बाहुल्य होता है। कोमलकान्त शब्दों से इसकी बोलचाल नहीं है।

भाषा का तीसरा एवं अन्तिम गुण 'प्रसाद' गुण है। जिस काव्य को पाठक की बुद्धि शीघ्र ही ग्रहण करले, अर्थ समझने के लिए विशेष परिश्रम की आवश्यकता न हो वह काव्य प्रसाद गुण पूर्ण है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार :—

अर्थव्यक्तेः प्रसादाख्ये गुणे नैव परिग्रहः
अर्थव्यक्तिः पदानां हि झटित्यर्थे समर्पणं।[५]

उन्होंने भी प्रसाद गुण को अर्थ व्यक्त कराने का गुण माना है। तुरंत ही अर्थ-बोध कराना अर्थ-व्यक्ति है भाषा के इस गुण का महत्त्व इसी से जाना जा सकता है। कि इसकी पहुँच प्रत्येक रस के दरबार में समान रूप से है। इस गुण के अभाव में काव्य में क्लिष्टत्व दोष आ जाता है।

हमारे आलोच्य कवियों में माधुर्य गुण राशि-राशि प्राप्त होता है। प्रसाद में इस गुण के दर्शन कीजिए—

मधुरिमा में अपनी ही मौन
एक सोया संदेश महान,
सजग हो करता था संकेत
चेतना-मचल उठी अनजान।

× × ×

१—साहित्य दर्पण २—वही ३—काव्य-प्रकाश ४—आचार्य विश्वनाथ ५—साहित्य दर्पण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संध्या अरुण जलज के सर ले अब तक मन थी बहलाती,
मुरझाकर कब गिरा ताम रस, उसको खोज कहाँ पाती।
क्षितिज भाव का कुंकुम मिटता मलिन कालिमा के कर से,
कोकिल की काकली वृथा ही अब कलियों पर मँडराती।

पन्त में देखिए—

कनक-छाया में जबकि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार,
सुरभि पीड़ित मधुपों के बाल
तड़प, बन जाते हैं गुंजार;
न जाने ढुलक ओस में कौन
खींच लेता मेरे दृग मौन!

× × ×

सुन मधुर मरुल मुरली की ध्वनि
गृह-पुलिन नाँघ, सुख से विह्वल,
हम हुलस नृत्य करतीं हिलमिल
खस-खस पड़ता उर से अंचल।

ओज गुण भी हमारे कवियों में यत्र-तत्र प्राप्त होता है। प्रसाद जी की कामायनी के 'संघर्ष' सर्ग की भाषा में यह गुण बहुलता से मिलता है—

अंधड़ था बढ़ रहा, प्रजादल सा झुंझलाता,
रण वर्षा में शस्त्रों सा बिजली चमकाता।
किंतु क्रूर मनु वारण करते उन बाणों को,
बढ़े कुचलते हुए खड्ग से जन प्राणों को।
ताण्डव में थी तीव्र प्रगति परमाणु विकल थे,
नियति विकर्षणमयी, त्रास से सब व्याकुल थे।

× × × ×

आहत पीछे हटे, स्तंभ से टिक कर मनु ने,
श्वास लिया, टंकार किया दुर्लक्ष्मी धनु ने।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंत जी की ओज पूर्ण पंक्तियाँ देखिए :—

वजा लोहे के दन्त कठोर,
नचाती हिंसा जिह्वा लोल।

× × ×

दुहरा विद्युद्दाम चढ़ा द्रुत,
इन्द्रधनुष की कर टंकार,
विकट पटह-से निर्घोषित हो,
बरसा विशिखों-सा आसार।

इसी प्रकार प्रसाद गुण भी दोनों कवियों में प्राप्य है। कामायनी के प्रारम्भिक सर्गों में एवं पल्लव की अधिकांश रचनाओं में भाषा का यह गुण प्राप्त नहीं होता किन्तु ज्यों-ज्यों कामायनी अपनी मंज़िल की ओर बढ़ती जाती है एवं पन्त की कल्पना धरती की ओर आती जाती है, यह गुण बहुतायत से प्राप्त होता है। प्रसाद जी की प्रारंभिक रचनाएँ इस गुण से सर्वथा परिपूर्ण हैं। कुछ पंक्तियाँ निहारिए :—

जलन छाती की बड़ी सहता हूँ,
मिलो मत मुझसे यही कहता हूँ,
बड़ी हो दया तुम्हारी।

तुम रहो शीतल हमें जलने दो,
तमाशा देखो हाथ मलने दो,
तुम्हें है शपथ हमारी!

× × ×

"माँ जल दे, कुछ प्यासे होंगे,
क्या बैठी कर रही यहाँ?"
मुखर हो गया सूना मण्डप,
यह सजीवता रही कहाँ?

× × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माँ ! क्यों तू है इतनी उदास,
क्या मैं हूँ, तेरे नहीं पास,
तू कई दिनों से यों चुप रह,
क्या सोच रही है ? कुछ तो कह,
यह कैसा तेरा दुःख दुसह,
जो बाहर भीतर देता दाह,
लेती ढीली सी भरी साँस,
जैसे होती जाती हताश !

× × ×

"मैं रूठूँ मां और मना तू, कितनी अच्छी बात कही,
लो मैं सोता हूँ अब जाकर, बोलूंगा मैं आज नहीं।
पके फलों से पेट भरा है नींद नहीं खुलने वाली"
श्रद्धा चुम्बन ले प्रसन्न कुछ, कुछ विषाद से भरी रही।

पंत जी की कतिपय पंक्तियाँ ऐसी हैं जो समझ में ही नहीं आतीं, किंतु लगता ऐसा है कि वे स्वयं इसके प्रतिकूल हैं। पल्लव के 'प्रवेश' में केशव की खिल्ली उड़ाते हुए वे उन्हें "कठिन काव्य के प्रेत" एवं " भाषा के मिल्टन" कहते हैं। उनकी वीणा, युगवाणी, ग्राम्या आदि में से प्रसाद गुण पूर्ण पंक्तियाँ उद्धृत की जा सकती हैं। कुछ पंक्तियाँ देखिए :—

मां ! अल्मोड़े में आए थे,
जब राजर्षि विवेकानन्द,
तब मग में मखमल बिछवाया,
दीपावलि की विपुल अमंद,
बिना पाँवड़े पथ में क्या वे
जननि ! नहीं चल सकते हैं ?
दीपावलि क्यों की ? क्या वे माँ !
मंद दृष्टि कुछ रखते हैं ?

× × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहेंगे क्या मुझको सब लोग,
कभी आता है इसका ध्यान।
रोकने पर भी तो सखि हाय!
नहीं रुकती है यह मुस्कान!

× × × ×

"अकसर" एवं "फुर्तीले" जैसे शब्दों के प्रयोग से प्रसाद गुण और भी अधिक आ गया है जिसके कारण अर्थ समझने के लिए किसी परिश्रम की अपेक्षा नहीं रहती!

शब्द-चयन में दोनों कवि पुँगव अत्यंत सतर्क हैं। जहाँ जैसा भाव है तदनुसार ही शब्द प्रयुक्त किया गया है। पंत जी ने तो पल्लव के 'प्रवेश' में शब्दों के विषय में बहुत कुछ लिखा है। वे लिखते हैं—" 'हिलोर' में उठान, 'लहर' में सलिल के वक्षः स्थल की कोमल-कंपन, 'तरंग' में लहरों के समूह का एक दूसरे को धकेलना, उठकर गिरना 'बढ़ो-बढ़ो' कहने का शब्द मिलता है; 'वीचि' में जैसे किरणों में चमकती, हवा के पलने में हौले-हौले झूलती हुई हँसमुख लहरियों का, 'ऊर्मि' से मधुर मुखरित हिलोरों का, हिल्लोल-कल्लोल से ऊँची २ बाँहें उठाती हुई उत्पात-पूर्ण तरंगों का आभास मिलता है। 'पंख' शब्द में केवल फड़क ही मिलती है, उड़ान के लिए भारी लगता है; जैसे किसी ने पक्षी के पंखों में शीशे का टुकड़ा बाँध दिया हो, वह छटपटाकर बार-बार नीचे गिर पड़ता हो, अँग्रेजी का 'विंग' जैसे उड़ान का जीता-जागता चित्र है। इसी तरह 'टच' में जो चूने की कोमलता है वह 'स्पर्श' में नहीं मिलती। 'स्पर्श' जैसे प्रेमिका के अंगों का अचानक स्पर्श पाकर, अचानक हृदय में जो रोमांच हो उठता है, उसका चित्र है; ब्रज-भाषा के 'परस' में छूने की कोमलता अधिक विद्यमान है; 'जॉय' (joy) से जिस प्रकार मुँह भर जाता है; 'हर्ष' से उसी प्रकार आनन्द का स्फुरण प्रकट होता है। अँगरेजी के (air, में एक प्रकार की (transparency) मिलती है, मानो इसके द्वारा दूसरी ओर की वस्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिखाई पड़ती हो; 'अनिल' से एक प्रकार की कोमल शीतलता का अनुभव होता है जैसे खस की टट्टी से छनकर आ रही हो; 'वायु'में निर्मलता तो है ही, लचीलापन भी है, यह शब्द रबर के फ़ीते की तरह खिंचकर, फिर अपने ही स्थान पर आ जाता है, 'प्रभंजन' 'wind' की तरह शब्द करता, बालू के कण और पत्तों को उड़ाता हुआ बहता है; 'श्वसन' की सन-सनाहट छिप नहीं सकती, 'पवन' शब्द मुझे ऐसा लगता है जैसे हवा रुक गई हो, 'प' और 'न' की दीवारों से घिर-सा जाता है, 'समीर' लहराता हुआ बहता है।" स्पष्ट हैं कि कवि के कान शब्द-ध्वनि सुनने में कितने जागरूक हैं। यही कारण है कि शब्दों से ऐसी ध्वनि निस्सरित होती है जो अपना अर्थ अपने आप हो बताती चलती है। पंत के शब्द चित्र देखिये—

झूम-झूम झुक-झुक कर,
भीम नीम तरु निर्भर।
सिहर-सिहर थर् थर् थर्!
करता सर्! सर्!
चर्—मर्।

नीम की आवाज़ साफ़ सुनाई आ रही है तथा झँझा में उसके व्यापार तो गोचर हो ही रहे हैं। छोटे-छोटे शब्दों में ग्राम-युवती का चित्र निहारिए:—

अति श्याम वरण,
श्लथ, मंद चरण,
इठलाती आती ग्राम युवति
वह गज गति,
सर्प डगर पर,
सरकाती पट,
खिसकाती लट,
शरमाती झट,
वह नमित दृष्टि से देख उरोजों के युग घट।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दों में कितनी क्षिप्रता है। चित्रमयता तो है हीं" 'नौका विहार' के चित्रों के विषय में तो कहना ही क्या? कतिपय पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

मृदु मंद-मंद मंथर-मंथर लघुतरणि हंसिनी-सी सुन्दर।
तिर रही खोल पालों के पर॥

बिना देखे ही हंसिनी के समान पंख फैलाकर चलती हुई नौका दिखाई पड़ जाती है। इसी प्रकार निम्न पंक्तियों में तारों की आंखें खुली की खुली रह गई हैं—'विस्फारित' शब्द का जादू अकथनीय है—

विस्फारित नयनों से निश्चल कुछ खोज रहे चल तारक दल।

रश्मियों, का चित्र भी देखिए—

चाँदी के साँपों सी रलमल नाचती रश्मियाँ जल में चल,
रेखाओं सी खिंच तरल-सरल।

सुहाग की मधुर यामिनी में अपने प्राणधन के समीप चुपचाप जाती हुई नायिका का चित्र देखिए—

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात!
विकंपित उर मृदु पुलकित गात,
सशंकित ज्योत्स्ना—सी चुपचाप,
जड़ित पद नमित पलक दृग पात।

पन्त जी ने (प्रसाद जी की भाँति) भाव-चित्र भी खींचे हैं। परिवर्तन, का शब्द एवं भाव-चित्र लीजिए—

लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरंतर।
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्ष स्थल पर॥
शत-शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर।
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर॥
मृत्यु तुम्हारा गरल-दंत, कंचुक कल्पांतर।
अखिल विश्व ही विवर,
वक्र कुण्डल,
दिङ् मण्डल?

× × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चित्र खींचने की इसी प्रवृत्ति के कारण पंत जी को रलमल-टलमल, सनसन छलछल, कल कल गर्जन, झंझा, गुंजन, अट्टहास जैसे शब्द अत्यंत प्रिय हैं। इतना ही नहीं उन्होंने सा रे ग म का भी पूर्ण उपयोग किया है इसलिए उनकी रचनाओं के प्रारम्भ का 'सा' गुंजन से 'रे' बन गया है—'सा' से, जो मेरी वाणी का सम्वादी स्वर एक दम 'रे' हो गया, यह उन्नति का क्रम संगीत-प्रेमी पाठकों को खटकेगा नहीं, ऐसा मुझे विश्वास है।"[1]

भाषा प्रसाद जी की भी चित्रमय है :—

अरी आंधियो ! ओ बिजली की।
दिवा रात्रि तेरा नर्तन,
उसी वासना की उपासना।
वह तेरा प्रत्यावर्तन ॥

शब्द चित्र श्लाघ्य है।

इन पंक्तियों में कितनी खामोशी है:—

वह चंद्रहीन थी एक रात,
जिसमें सोया था स्वच्छ प्रात,
उजले उजले तारक झलमल।
प्रतिबिंबित सरिता वक्षस्थल।
धारा बह जाती विम्ब अटल,
खुलता था धीरे पवन पटल,
चुपचाप खड़ी थी वृक्ष पाँत।
सुनती जैसे कुछ निजी बात।

वस्तु चित्र देखिए—

उधर गरजती सिंधु लहरियाँ,
कुटिल काल के जालों सी।
चली आ रही फैन उगलती,
फन फैलाए व्यालों सी।

१. 'गुंजन'—विज्ञापन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसाद जी के तीसरे प्रकार के भाव चित्र हैं जिनमें उन्होंने चिंता, काम, आशा, वासना आदि का चित्रण किया है। भाव-चित्र खींचने के लिए कवि को महान कलाकार होना आवश्यक है।

चिंता का भाव-चित्र निहारिए—

हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल रेखा।
हरी भरी सी दौड़-धूप ओ,
जयमाला सी चल रेखा॥

लज्जा का चित्र तो अत्यन्त ही कलात्मक है। लज्जा क्या है? उसका क्या प्रभाव पड़ता है?—यह सब बातें कवि ने कितनी सूक्ष्मता से दर्शा दी हैं:—

नीरव निशीथ में लतिका-सी,
तुम कौन आ रही हो बढ़ती?
कोमल बाहें फैलाए-सी
आलिंगन का जादू पढ़ती।
किन इन्द्रजाल के फूलों से
लेकर सुहागकण राग भरे,
सिर नीचा कर हो गूँथ रही
माला जिससे मधुभार ढरे।

लज्जा यही तो है न—

× × ×

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ,
मैं शालीनता सिखाती हूँ,
मतवाली सुन्दरता पग में
नूपुर सी लिपट मानती हूँ।
लाली बन सरस कपोलों में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आँखों में अंजन सी लगती,
कुंचित अलकों सी घुँघराली,
मन की मरोर बनकर जगती।
चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली,
मैं वह हलकी सी मसलन हूँ
जो बनती कानों की लाली।

कौन मना कर सकता है कि "कविता के लिए चित्र-भाषा की आवश्यकता पड़ती है, उसके शब्द सस्वर होने चाहिए जो बोलते हों, सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर छलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें जो झंकार में चित्र, चित्र में झंकार हो।"—और हमारे कवियों की भाषा में यह गुण खूब है। प्रसाद एवं पंत में जहाँ तक भाषा सौंदर्य का प्रश्न है, पंत जी का स्थान प्रसाद जी से ऊँचा है। जिस प्रकार अभिव्यक्ति की मार्मिकता में महादेवी लासानी हैं इसी प्रकार भाषा के सौंदर्य में पंत बेजोड़। महा पंडित राहुल के शब्दों में "पंत बीसवीं सदी के महान कवियों में है इसमें संदेह नहीं। लेकिन महान कवि होने के साथ-साथ हिन्दी के लिए उनकी एक और भी बड़ी देन है, वह है हिन्दी की भाषा को कोमल और कांत बनाना। एक सच्ची पारखी की तरह पंत ने त्रिकाल से मौजूदा शब्दों को सेर, छटाँक में नहीं रत्ती-परमाणुओं के भार में तौल कर उनके मोल को बड़ी बारीका से आँका और उसे किसी यूनानी प्रस्तर शिल्पी की भाँति अपनी छेनी और हथौड़े को बहुत कोमल और दृढ़ हाथों से काटा-छाँटा, उसे सुन्दर भावों को प्रकट करने का माध्यम बनाया, शब्दों के सुन्दर निर्माण और विन्यास में पंत अद्वितीय हैं।" चाहे पंत "महान कवियों में" न हों किन्तु इसमें संदेह नहीं कि "शब्दों के सुन्दर निर्माण और विन्यास में (वे) अद्वितीय हैं।"—जी हाँ अद्वितीय, अनुपम बेजोड़।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोनों कवियों की भाषा संस्कृत बहुल है, कहीं कहीं इतनी कि पाठक भोहौं को ऊपर करके अपनी अयोग्यता का परिचय देने के लिए विवश हो जाता है। पंत जी में तो संस्कृत के वाक्य के वाक्य प्राप्त होते हैं यथा—'नानृतं जयति सत्यं मा भैः, पत्रं पुष्पं" एकोऽहं बहु श्याम' आदि। छायावाद के पतन का एक मुख्य कारण यह भी है कि कविताओं का ऐसा शब्द चयन होता था कि साधारण पाठकों के लिए वे अत्यन्त दुरूह हो जाती थीं। फिर भी संस्कृत शब्दों के साथ इन्होंने देशज यथा अँबियों, चित्तियों, खोंस, बृज भाषा के काजर, दीठ, दई आदि एवं उर्दू के अकसर, फुर्तीले, नादान, तमाशा मजलिस जैसे शब्दों का भी प्रयोग किया है पंत ने अँग्रजी शब्दों एवं उनके हिन्दी अनुवादों का भी प्रयोग किया है। 'अजान नयन' ऐसा ही अनुवाद है जिसे अँगरेजी में 'इनोसेंट आई' (Innocent Eye) कहते हैं। पंत में नए शब्द गढ़ने की भी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं— अनिर्वच, स्वप्निल, वातुल फेनिल आदि कहीं कहीं तो उन्होंने शब्दों का अर्थ भी बड़ी विचित्र किया है यथा 'मनोज'। यह शब्द हिन्दी में कामदेव के लिए रूढ़ है किन्तु आपने इसका अर्थ 'मन से उत्पन्न' करके 'तुम आत्मा के मन के मनोज' कहकर बापू को संबोधित किया है। सारांश में पंत को शब्दों की आत्मा का ज्ञान प्रसाद जी से कुछ अधिक है। उनकी टक्कर का शब्द-पारखी कठिनता से मिलता है, इसी लिए उनका प्रत्येक शब्द व्यंजना पूर्ण है। उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द के स्थान पर यदि कोई अन्य शब्द रख दिया जाय तो समस्त जादू चला जाता है। रंग, रस, रूप, गंध का उनके शब्दों से यूँ ही आभास मिल जाता है। प्रसाद जी में लाक्षणिक प्रयोग अधिक मिलते हैं। कामायनी का ही एक उदाहरण लीजिए—

पगली हाँ सम्हाल ले कैसे
छूट पड़ा तेरा अंचल।
देख बिखरती है मणि राजी,
अरी उठा वे सुध अंचल।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसमें पगली, अंचल, मणिराजी क्रमशः रात्रि, आकाश एवं तारा-ओं के लिए प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार 'आँसू' की यह पंक्तियाँ:-

झंझा, झकोर गर्जन है,
बिजली है नीरद माला।
पाकर इस शून्य हृदय को,
सबने आ डेरा डाला॥

इसमें 'झंका झकोर, आकुलता के लिए, 'गर्जन' तड़पन के लिए, 'बिजली' टीस के लिए, 'नीरदमाला' अंधकार के लिए एवं 'शून्य' हृदय के विशेषण के साथ साथ आकाश के लिए आया है। हाँ, प्रसाद जी की प्रारंभिक रचनाओं में वह सुथरापन नहीं जो आँसू लहर अथवा कामायनी में है।

पंत जी के 'पल्लव' में लाक्षणिक प्रयोगों का भण्डार है। उदाहरण के लिए चिर प्रसिद्ध पंक्तियाँ :—

धूल की ढेरी में अनजान।
छिपे हैं मेरे मधुमय गान॥

इसमें 'धूल की ढेरी' खराब वस्तुओं एवं 'मधुमय गान' सुन्दर वस्तुओं के लिए आए हैं। इसी प्रकार निम्न पंक्तियों में 'चाँदनी' का प्रयोग शीतलता तथा 'बच्चों की साँस' भोलेपन के लिए प्रयुक्त हुए हैं :—

चाँदनी का स्वभाव में बास,
विचारों में बच्चों की साँस।

प्रसाद एवं पंत की यह व्यंजनात्मक एवं लाक्षणिक पद्धति उस समय हिन्दी के लिए सर्वथा नवीन वस्तु थी। उसके अनंतर तो यह दोनों पद्धतियाँ छायावादी शैली की, आचार्य शुक्ल के शब्दों में "असली विशेषता" ही बन गईं।

अलंकारों के प्रति यह कवि दीवाने नहीं हुए हैं। पंत ने तो यहाँ तक कह दिया था :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार !
वाणी ! मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार ॥

जैसा कि अलंकार के अध्याय में बताया गया है इनमें जहाँ कहीं भी अलंकार हैं वे स्वाभाविक हैं, ऊपर से थोपे हुए नहीं। वे "केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। वे वाणी के हास, अश्रु, स्वप्न-पुलक, हाव-भाव हैं।"

भावों की सबल अभिव्यक्ति के लिए इन्होंने कहीं कहीं मुहावरों का भी प्रयोग किया है—कहीं कहीं ही।

आचार्य द्विवेदी ने व्याकरण के जिस मानसरोवर का निर्माण किया उसकी ओर इन्होंने देखा भी नहीं। कहीं कहीं आप छंद के छंद पढ़ जाइए, क्रिया के दर्शन नहीं होंगे। पंत तो एक डग और आगे बढ़ गए और उन्होंने पूरक क्रिया "है" को ही त्याज्य माना। यद्यपि बाद में उन्हें "है" की महत्ता का बोध हुआ किंतु ऐसा सोचना भी रूढ़िवादी महल पर बहुत बड़ा वज्र-प्रहार था। किंतु प्रसाद एवं पंत का सबसे बड़ा प्रहार हिन्दी की लिंग परंपरा पर था। प्रसाद जी के 'आँसू' का आलम्बन लिंग प्रतीत होता है जो 'संज्ञा' सा आकर 'मादकता सा चला गया है। नीचे की पंक्तियाँ देखिए :—

लगा कहते आगंतुक व्यक्ति,
मिटाता उत्कण्ठा सविशेष,
दे रहा हो कोकिल सानंद
सुमन को ज्यों मधुमय संदेश

इन पंक्तियों में श्रद्धा—स्त्री—एवं कोकिल दोनों को ही पुल्लिंग माना है।

'प्रभात' को यदि प्रसाद जी ने पुल्लिंग माना तो पंत ने स्त्रीलिंग (यद्यपि बाद में पुल्लिंग ही माना)। पंत जी, इस दिशा में, प्रसाद जी से योजनों आगे हैं। वे लिंग-निर्णय अकारांत एवं इकारांत को ध्यान में रखकर नहीं करते अपितु शब्द की कोमलता एवं परुषता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का ध्यान रखते हैं। वे पुल्लिंग उस शब्द को मानते हैं जिसमें पुरुषता, महानता आदि पुरुषोचित गुण हों तथा स्त्रीलिंग उसे जिसमें कोमलता, लावण्य, लघुता आदि स्त्रियोचित। उनके विचार से "लिंग का अर्थ के साथ सामंजस्य" होना चाहिए अर्थात् शब्द का जैसा अर्थ हो वैसा ही उस शब्द का लिंग होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता तो "शब्दों का ठीक ठीक चित्र सामने नहीं उतरता और कविता में उनका प्रयोग करते समय कल्पना कुंठित सी हो जाती है।" नवयुवक पंत के लिंग सम्बन्धी यह विचार सचमुच कितने क्रांतिकारी थे ! इसकी सबसे बड़ी कमी यह थी की लिंग सम्बन्धी किसी विशेष नियम के अभाव में लेखक की भावना ही किसी शब्द के लिंग-निर्णय में उत्तरदायी थी। इन भूल भुलैयों में पंत जी स्वयं कई बार फँसे। प्रारम्भ में आँसू में उन्होंने 'कंपन' एवं 'दशन' को स्त्री लिंग माना :—

वर्ण-वर्ण है उर की कंपन,
शब्द-शब्द है सुधि की दशन,

किंतु बाद में, शायद पुरुषत्व का अनुभव करके, उन्होंने इन दोनों को पुल्लिंग बना दिया तथा 'पल्लव' में यह पंक्तियाँ पुल्लिंग होकर छपीं :—

वर्ण-वर्ण है उर का कंपन,
शब्द-शब्द है सुधिका दशन,

इस पंक्ति में आया हुआ 'साँस' पुल्लिंग है :—

कहाँ नहीं है स्नेह
साँस सा सब के उर में,

'आँसू' की नीचे की पंक्ति में छोरें शब्द कितना बेतुका है :—

क्यों व्यथित व्योम गंगा सी
छिटका कर दोनों छोरें।

यदि पंत जी से लिंग-विपर्यय का जवाब तलब किया जाय तो सम्भवतः वे 'कामायनी' के मनु की पंक्ति दुहरा दें :—

वशी नियामक रहे, न ऐसा मैंने माना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारे कवि रसों के कवि तो नहीं हैं फिर भी उनकी रचनाओं में समस्त रस प्राप्त होते हैं—विशेषतः श्रृंगार एवं करुण। प्रसाद जी का आँसू तो समूचा करुण रस ही में है। छंद-चयन भी रसानुसार ही हुआ है, फलतः वाचक पर कवियों का अभीप्सित प्रभाव पड़ता है। प्रसाद एवं पंत ने इसी प्रभाव के लिए नवीन छन्दों की रचना की स्वच्छंद छंद गढ़े। इन्होंने शैलियाँ भी कई प्रकार की प्रयुक्त की—वर्णनात्मक, विचारात्मक, उद्‍बोधनात्मक। पंत जी में "मैं-शैली" भी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद एवं पंत ने कितने कठिन प्रयास से खड़ी बोली को परिमार्जित करके काव्योचित रूप प्रदान किया। भारतेन्दु युगीन कवियों ने खड़ी बोली के जिस पादप को रोपा, द्विवेदी युगीग कवियों ने येन केन प्रकारेण उसे सूखने से तो बचा लिया, किंतु सरस फल किस प्रकार की महनत से लाया जा सकता है, यह बात हमें प्रसाद एवं पंत ने ही बताई। भारतेन्दु ने जिस भवन की आधार शिला रखी, द्विवेदी युगीन कवियों ने उस आधार पर अत्यन्त विशाल भवन तो खड़ा कर दिया किंतु सुरुचिपूर्ण रंगों की पुताई भी कम महत्व की नहीं, यह बात हमें प्रसाद एवं पंत ने ही जानने को दी। 'ल आजार' भाषा को किस प्रकार 'ल बेर' बनाया जाता है, इसका ज्ञान हमें सर्व प्रथम प्रसाद एवं पंत ने ही कराया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२—छन्द-योजना

'Form of composition........should be suitable to the subject matter..........."—W. Basil Worsfold, 'Judgement in Literature' Page 79.

"अर्थात् काव्य-रचना का प्रकार (अर्थात् छंद) प्रतिपाद्य विषय के अनुकूल होना चाहिए।"

काव्य और संगीत का संबंध आदिकाल से चला आ रहा है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि प्रत्येक भाषा का साहित्य आरंभ में पद्य में प्राप्त होता है—गद्य में तो बहुत पीछे प्राप्त होता है। लैम्बोर्न ने तो यहाँ तक कहा है कि कविता संगीत से ही उत्पन्न हुई है और उसी का एक अंग है।[१] कोलरिज ने कविता को विचार तो कहा किंतु सूखा नहीं, नीरस नहीं, अपितु संगीतमय।[२] यही कारण है कि कवि अपने अभीप्सित प्रभाव के लिए, अपने विचार को संगीतमय बनाने के लिए, छंदों की शरण जाता है। आल्हखण्ड की पंक्तियाँ सुनकर किसकी भुजाओं की मछलियाँ नहीं फड़क उठेंगी। मर्सिया सुनकर किसके नयन सजल नहीं हो उठेंगे? अर्थ यह है कि संगीतमय कथन का प्रभाव सीधा, शीघ्र और स्थायी पड़ता है, गद्य में कही हुई बात का क्षणिक। अतः सबल भावों की अभिव्यक्ति के लिए संगीत की उँगली पकड़नी ही होती है, दूसरे शब्दों में छन्दों का आश्रय लेना ही पड़ता है।

१—Poetry was born of music and is a form of music.

२—Musical thought—S. T. Coleridge.—E. A. G. Lamborn.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छन्द-रचना में दो बातें ध्यान में रखनी पड़ती हैं—लय एवं तुक। लय में पुनः दो बातों में से एक का ध्यान रखना पड़ता है—वर्णों का अथवा मात्राओं का। जिस छंद की लय वर्णों पर निर्भर रहती है उसे वर्णिक छंद एवं जिसकी मात्राओं पर रहती है, उसे मात्रिक छंद कहते हैं। इसी प्रकार जिस छंद की पंक्तियों के अन्तिम शब्द का नाद एक-सा होता है उसे तुकांत छंद एवं इसके विपरीत छंद को अतुकान्त छंद (Blank Verse) कहते हैं। हिन्दी में सब प्रकार के छन्द प्राप्त हैं—वर्णिक, मात्रिक, तुकांत एवं अतुकांत।

कबीर, जायसी, सूर ने मात्रिक तुकांत छंद लिखे। रत्ना के प्राणधन ने वर्णिक एवं मात्रिक—दोनों प्रकार के छंदों पर समान रूप से सफलता पाई। रीतिकाल में, ब्रजभाषा में, भी दोनों प्रकार के लिखे गए—हाँ, वर्णिक छन्दों का प्राचुर्य रहा। भारतेन्दु काल तो हिन्दी के लिए रिनेसाँ (Renaissance) बनकर आया ही। उसमें भाव एवं भाषा-परिवर्तन के साथ-साथ छन्दों में भी परिवर्तन हुआ। हिन्दी के रोला छंद के साथ भारतेन्दु ने उर्दू छन्दों की भी परिपाटी चला दी।

दिल मेरा ले गया दगा करके।
बेवफा हो गया वफा करके
हिज की शब घटा ही दी हमने।
दास्ताँ जुल्फ की बढ़ा करके॥

अनन्तर हरिऔध जी ने इस परम्परा में विपुल योग दिया। उन्होंने खड़ी बोली में (ब्रजभाषा का मोह छोड़ कर) उर्दू छन्द लिखने प्रारम्भ किए। तदनन्तर उन्होंने संस्कृत की मात्रिक छंद रचना में अपनी लेखनी आज़मायी और हिन्दी-जगत को 'प्रिय प्रवास' दिया। इसकी भाषा संस्कृत बहुला एवं समास-प्रधान है। एक छंद निहारिए :—

रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना,
तन्वंगी कल हासिनी सुरसिका क्रीड़ा कला पुत्तली।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शोभा वारिधि की अमूल्य मणि सी लावण्य लीलामयी,
श्री राधा मृदुभाषिणी मृगदृगी माधुर्य-सन्मूर्ति थी।

जिस प्रकार भारतेन्दु ने उर्दू-बहार के लिए उर्दू के ही शब्द प्रयुक्त किए, उसी प्रकार हरिऔध जी ने संस्कृत वृत्तों के लिए, संस्कृत पदावली चुनी। उपर्युक्त पंक्तियों को पढ़ने से ऐसा लगता है कि हम संस्कृत का छंद पढ़ रहे हैं।

प्रसाद-पंत युग में छंद-जगत में बड़े-बड़े भूचाल आए। कवि श्री निराला, छन्द-मार्ग के टॉर्च-बियरर (Torch Bearer) बने। वर्णिक छन्दों का तो प्रश्न ही क्या उन्होंने प्रारंभ में मात्रिक वृत्तों का भी बहिष्कार किया और ऐसे छन्द लिखे जिन्हें छंद कहने में शर्म आती थी:-

कितना सुबोध है!
आज्ञापालन के सिवा कुछ भी नहीं जानता है
आता है सामने तो सिर झुका
दृष्टि चरणों की ओर रखता है
कहता है बालक द्रुत—"क्या है आदेश माता?"

ऐसा लगता है यह यह मानों आचार्य महावीर प्रसाद जी द्विवेदी जी का आज्ञापालन है जो उन्होंने कहा था—"....नए कवि अपनी कविता में नयापन कैसे ला सकते हैं? वही तुक, वही शब्द, वही उपमा, वही रूपक। इस पर भी लोग पुरानी लकीर बराबर पीटते जाते हैं। कवित्त, सवैये, दोहे, सोरठे लिखने से बाज नहीं आते।" निराला जी ने इस चुनौती को स्वीकार किया एवं शब्द, छंद तुक, उपमा, रूपक, कवित्त, सवैये, दोहे, सोरठे—सभी में अपूर्व क्रांति ला दी। बा० श्यामसुन्दरदास—एवं स्वयं द्विवेदी जी को इतनी बड़ी क्रांति रुचिकर नहीं लगी। बाबूजी ने तो यहाँ तक कहा "छंदहीन कविता नवीन युग में उत्पन्न हुई है। अब उसकी निरंतर प्रगति होगी और अंत में हमारा सम्पूर्ण काव्य गद्य की भाषा द्वारा ही प्रकाशित हो तो कोई आश्चर्य नहीं।"[1] आचार्य शुक्ल इसे

१—साहित्यालोचन (दसवीं आवृत्ति) पृ० १०२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाल्ट ह्विटमन की नक़ल मानते हैं—"इधर कुछ दिनों से विना छंद (Metre) के पद्य भी विना तुकान्त के होना तो बहुत ध्यान देने की वात नहीं निराला जी ऐसे नई रंगत के कवियों में देखने में आते है। यह अमेरिका के एक कवि वाल्ट ह्विटमैन (Walt Whitman) की नकल है जो पहले वँगला में थोड़ी वहुत आई। विना किसी प्रकार की छन्दोव्यवस्था की अपनी पहली रचना (Leaves of Grass) उसने सन् १८५५ ई० में प्रकाशित की। उसके उपरान्त और भी वहुत सी रचनाएँ इस प्रकार की मुक्त या स्वच्छंद पंक्तयों में निकलीं, जिन में निकलीं, जिनके संवंध में एक समालोचक ने लिखा है :—A chose of impressions, thought or feelings thrown together without rhyme, which matter little, without metre, which matters more and often without reason which matters much."

—Literature in the Century
(Nineteenth Century Service)
by A. B. De Mille,'

प्रारंभ में प्रसादजी ने व्रजभाषा में कवित्त लिखे। सूरदास के पदों के समान भी पद रचे एवं 'करुणालय' से उन्होंने अतुकांत रचनाएँ भी प्रारम्भ कर दीं। आरंभ में उन्हें मुक्त छन्दों में अधिक सफलता नहीं प्राप्त हो सकी, हाँ 'प्रेम-पथिक' की ओर उन्हें सफलता मिली :—

पथिक प्रेम की राह अनौखी, भूल भूल कर चलना है,
घनी छाँह है जो ऊपर तो नीचे काँटे विछे हुए।

× × ×

इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रांत भवन में टिक रहना,
किंतु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं।

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास (१९९७ सं०) पृ० ६७३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसे अतुकांत छंदों से भिन्न उनके ऐसे भी अतुकांत छंद हैं जिनके वाक्य चरण के बीच में ही पूरे हो आते हैं :—

तो बचने के लिए शत्रु के सामने
पीठ करोगे ? नहीं, कभी ऐसा नहीं
दृढ़ प्रतिज्ञ यह हृदय, तुम्हारी ढाल बन
तुम्हें बचावेगा ! इस पर भी ध्यान दो
घोर अँधेरे में उठती पर जब लहर हो
तुमुल घात प्रतिघात पवन का हो रहा
× × ×
छोड़ कूदना तिनके का अवलंब ले।
घोर सिंधु में, क्या बुधजन का काम है ?

'आँसू' में आनंद छंद है। इसमें १४-१४ मात्राओं पर विराम देकर २८ मात्राएँ हैं। लोकप्रियता के कारण इसे आँसू छंद भी कह देते हैं। हृदय की बेकली की अभिव्यक्ति के लिए जितना उपयुक्त यह छंद है उतना अन्य नहीं हो सकता। पंक्ति से ऐसा नाद निकलता है मानो कोई सचमुच रो रहा हो :—

इस करुणा कलित हृदय में,
क्यों विकल रागिनी बजती ?
इन हाहाकार स्वरों में,
वेदना असीम गरजती।

प्रसाद जी की अंतिम कृति कामायनी आद्यन्त छन्दोबद्ध है। न जाने किस हौंस में उन्होंने कवि-जीवन के प्रारंभ में अतुकांत, छन्दहीन कविताएँ रचीं अन्यथा 'अनुभूत नाद-सौंदर्य की प्रेषणीयता के लिए शुक्ल की भाँति छंद के बंधन को वे भी आवश्यक समझते हैं—"......छंद वास्तव में बँधी हुई लय के भिन्न ढाँचों (Patterans) का योग है जो निर्दिष्ट लम्बाई का होता है। लय-स्वर के चढ़ाव-उतार छोटे-छोटे ढाँचे ही हैं जो किसी छंद के चरण के भीतर व्यस्त रहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छंद द्वारा होता यह है कि इन ढाँचों की मिति और इनके योग की मिति दोनों श्रोता को ज्ञात हो जाती है जिससे वह भीतर ही भीतर पढ़ने वाले के साथ ही साथ उसकी नाद की गति में योग देता चलता है। गाना सुनने के शौकीन गवैये के मुँह से किसी पद के पूरे होते होते उसे किस प्रकार रोक लेते हैं, यह बराबर देखा जाता है। लय तथा लय के योग की मिति बिलकुल अज्ञात रहने से यह बात नहीं हो सकती। जब तक कवि आप ही गाकर अपनी लय का ठीक ठीक पता न देगा तब तक पाठक अपने मन में उसका ठीक ठीक अनुसरण न कर सकेगा। अतः छंद के बंधन के सर्वथा त्याग में हमें तो अनुभूत नाद-सौंदर्य की प्रेषणीयता (Communicability of Sound Impulse) का प्रत्यक्ष ह्रास ही दिखाई पड़ता है।"[1] छंद के विषय में पंत के भी ऐसे ही विचार हैं—'जिस प्रकार नदी के तट अपने बंधन से धारा की गति को सुरक्षित रखते हैं जिनके बिना वह, अपनी ही बंधन-हीनता में प्रवाह खो बैठती है उसी प्रकार छंद भी अपने नियंत्रण से राग को स्पंदन-कंपन तथा वेग प्रदान कर, निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल, सजल कलरव भर उन्हें सजीव बना देते हैं।"

इसी प्रेषणीयता के लिए, शब्दों के रोड़ों को सजीव बनाने के लिए प्रसाद जी ने कामायनी में ही लगभग एक दर्जन छन्दों का व्यवहार किया—किसी प्रदर्शन के लिए नहीं अन्यथा यह भी राम-चंद्रिका बन जाती। इन छंदों में कुछ तो हिन्दी में प्राचीन काल से चले आ रहे ही छन्द हैं एवं कुछ नवीन गढ़ लिए गए हैं। २४ मात्राओं का रोला छंद युद्ध-वर्णन के लिए अत्यंत उपयुक्त है जो हिन्दी में चिरकाल से चला आ रहा है। प्रसाद जी के 'संघर्ष' सर्ग में इसका सफल प्रयोग किया है :—

१. 'काव्य में रहस्यवाद'।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किंतु सुन रहा कौन धधकती वेदी ज्वाला,
सामूहिक वलि का निकला था पत निराला।
रक्तोमन्द मनु का न हाथ अब भी रुकता था,
प्रजा पक्ष का भी न किन्तु साहस झुकता था।
वहीं घर्षिता खड़ी इड़ा सारस्वत रानी,
वे प्रतिशोध अधीर रक्त बहता बन पानी।

'वासना' सर्ग में भी २४ मात्राओं का रूप माला छंद प्रयुक्त किया गया है। इसका दूसरा नाम मदन छंद भी है—मदन और वासना,—ठीक तो है :—

मधु वरसती विधु किरन है काँपती सुकुमार,
पवन में है पुलक मंथर, चल रहा मधु भार।
तुम समीप, अधीर इतने आज क्यों हैं प्राण!
छक रहा है किस सुरभि से तृप्त होकर घ्राण।

सोलह मात्राओं के दो छंद लिखे गए हैं—शृंगार एवं पदपादा कुलक। प्रथम प्रकार का छंद 'श्रद्धा' एवं द्वितीय प्रकार का 'काम' एवं 'लज्जा' सर्गों में हैं। अंतर यह है कि शृंगार के अंत में दीर्घ एवं लघु (ऽ।) आता है जबकि पदपादा कुलक के अंत में दीर्घ (ऽ) मात्र।

शृंगार छंद का उदाहरण लीजिए—

कौन हो तुम वसंत के दूत,
विरस पतझड़ में अति सुकुमार।
घन तिमिर में चपला की रेख,
तपन में शीतल मंद बयार॥

पदपादा कुलक छन्द इन पंक्तियों में है :—

मैं जभी तोलने का करती,
उपचार स्वयं तुल जाती हूँ।
भुज लता फँसा कर नर तरु से,
झूले सी झोंके खाती हूँ॥

× × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह नीड़ मनोहर कृतियों का,
यह विश्व कर्म रंग स्थल है।
है परंपरा लग रही यहाँ,
ठहरा जिसमें जितना बल है ॥

इड़ा सर्ग में ऐसे गीत हैं जिन्हें प्रसाद जी ने स्वेच्छानुसार ढाल लिया है। इनके अतिरिक्त प्रसाद जी का छंद-चयन और भी कई प्रकार का है।

पंत जी के कान नाद-सौंदर्य पहचानने में अत्यंत निपुण हैं अतः उनके छंद-चयन के विषय में तो कहना ही क्या ? प्रसाद जी की भाँति इन्हें भी वर्ण-वृत्तों की अपेक्षा मात्रिक छंद प्रिय रहे हैं किंतु उन परंपरागत छंदों के "बीच बीच में""एक स्वरता तोड़ने तथा भावाभिव्यक्ति की सुविधा के अनुसार उसके चरण घटा बढ़ा (भी) दिए गए हैं।"[१] जॉन कीट्स ने भी तो अपने प्रसिद्ध बैलेड 'ला बेले डैम सास मःसी' (La Belle Dame Sans Merci) में इसी एकरूपता (Monotony) को दूर करने के अंतिम पंक्ति शेष तीन पंक्तियों की आधी रहने दी थी। पंत में देखिए :—

जगत की शत कातर चीत्कार।
बेधती बधिर ! तुम्हारे कान।
अश्रु स्रोतों की अगणित धार।
सींचती उर पाषाण।

इसकी प्रथम तीन पंक्तियों में सोलह किन्तु अन्तिम पंक्ति में केवल बारह मात्राएँ हैं। 'परिवर्तन' शीर्षक रचना देखिए जिसमें चिर परिचित रोला छंद की क्या दशा करदी गई है :—

---

१. पल्लव की भूमिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहे निष्ठुर परिवर्तन !
तुम्हारा ही ताण्डव नर्तन,
विश्व ही करुण विवर्तन !
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन,
निखिल उत्थान, पतन !
अहे वासुकि सहस्रफन !

लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरंतर,
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्ष स्थल पर !
शत शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर,
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर !
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पांतर !
अखिल विश्व ही विवर,
वक्र कुण्डल,
दिङ् मण्डल।

'ग्रंथि' में उन्नीस मात्राओं का निम्न तुकांत छंद है। पंक्तियाँ रन-ऑन (Run-On-lines) हैं जो यत्र तत्र नितांत गद्य बन गई हैं :—

जब प्रणय का प्रथम परिचय मूकता।
दे चुकी थी हृदय को तब यत्न से॥
बैठकर मैंने निकट ही शांत हो,
विनत वाणी में प्रिया से यों कहा—

यदि इन पंक्तियों को एक सीध में लिख दिया जाय तो गद्य बन जायगी। पंत जी हिन्दी के स्वच्छंद छंद के आविष्कारक के आसन पर स्वयं को बिठाते हैं किन्तु कौन नहीं जानता कि उस पर निराला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जी पूर्व से ही आसीन हैं। पंत जी लिखते हैं—'सन् १९२१ में जब 'उच्छ्वास' मेरी कृश लेखनी से यज्ञ के कनक-वलय की तरह निकल पड़ा था तब निगम जी ने 'सम्मेलन-पत्रिका' में उस 'बीसवीं सदी के महाकाव्य' की आलोचना करते हुए लिखा था—"इसकी भाषा रंगीली, छंद स्वच्छंद हैं।" पर उस वामन ने, जो लोक-प्रियता के रात दिन घटने-बढ़ने वाले चाँद को पकड़ने के लिए बहुत छोटा था, कुछ ऐसी टाँगें फैला दीं कि आज सौभाग्य अथवा दुर्भाग्यवश हिन्दी में सर्वत्र 'स्वच्छंद छंद ही की छटा दिखलाई पड़ती है।' निराला जी ने "पंत जी और पल्लव" नामक निबंध में इस पर खूब चुटकी ली है।

पंत जी ने भावानुसार नए छंदों का भी आविष्कार किया है। छोटे छोटे शब्दों में नीचे की पंक्तियाँ देखिए, चित्र बन जाता है :—

जब जल से भर
भारी गागर
खींचती उबहती वह, बरबस
चोली से उभर उभर कसमस

खिंचते संग युग रस भरे कलश ;—
जल छलकाती,
रस बरसाती,
बल खाती वह घर जो जाती,
सिर पर घट,
उर पर धर पट।

कुछ और पंक्तियाँ देखिए—
ताक रहे हो गगन ?
मृत्यु-नीलिमा-गहन गगन ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनिमेष, अचितवन, काल-नयन ?
निःस्पंद शून्य, निर्जन, निःस्वन ?
देखो भू को।

प्रारंभ में इसकी पंक्तियों का खिचाव बढ़ता गया है किंतु फिर एक दम 'देखो भू को' पर नीचे गिर पड़ा है। ज्ञात होता है कि 'गगन' देखने के लिए कितनी निगाह उठानी पड़ती है किन्तु 'भू को' देखने के लिए किसी विशेष प्रयत्न की अपेक्षा नहीं होती।

इस प्रकार पंत जी ने "छन्द के बंध" खोलकर नवीन छन्दों का आविष्कार तो किया किन्तु रोला, चौपाई, अरिल्ल, रूप माला, हरिगीतिका, पीयूषवर्षण आदि गतानुगतिक छन्दों का भी, प्रसाद जी की भाँति, प्रयोग करना न भूल सके।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१३—प्रसाद एवं पंत की अलंकार योजना

अलंकार रहिता विधवेव सरस्वती।

—अग्निपुराण।

"अर्थात् विना अलंकार के (तो) सरस्वती (भी) विधवा के समान हैं।"

मानव सदैव अपने मन को रंगीन तसवीरों पर लुटाता आया है। अनजाने ही उसका मन-सूरजमुखी सौंदर्य-सविता की ओर घूमता आया है। उसे पत्र-पत्र पर सत्य का सामना करना पड़ता है, किंतु सत्य तो सत्य ही है, कटु होता है। उस कटुता का माधुर्य में अनुवाद करने के लिए उसके लिए एक ही राह है, और वह है अलकारों का मुँह जोहना। लाला भगवानदीन ने ठीक ही लिखा है कि मनुष्य का "बाह्य और अंतर्जीवन अलंकारमय है।"[1] चाहे वह स्वयं कितना ही कुरूप क्यों न हो उसके भी हृदय के किसी कोने में अपने को सुसज्जित करने की लालसा दुबकी रहती है। ग्रामीण बालक भी रंगीन कागज—उदाहरणार्थ पतंग—को लेने लपकते हैं। तथा स्वेच्छानुसार काट छाँटकर उसे रूप दे देते हैं। जब बालकों में यह प्रवृत्ति पाई जाती है तो युवकों की तो बात ही क्या ?—और कवि ?—कवि तो अलंकार के विना एक डग भी आगे नहीं चल सकता—चाहे वह स्वयं इस तथ्य को जानता हो अथवा नहीं। कविता है क्या ?—रमणीय उक्ति ही तो काव्य है:—

रमणीयार्थ प्रतिपादिकः शब्दः काव्यम्।[2]

और रमणीयता अलंकारिता के अतिरिक्त क्या है ? सीधी-सादी बात को अलंकार द्वारा ही रमणीय बनाया जाता है। यदि अलंकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं होंगे, रमणीयता नहीं आ सकेगी और विना इसके कविता 'कविता' नहीं कहला सकेगी—और चाहे कुछ भी कहलाए।

अलंकारशास्त्री 'दीन' जी के अनुसार अलंकार शास्त्र का वर्णन सर्वप्रथम महर्षि द्वैपायन-व्यास रचित अग्निपुराण में पाया जाता है। इनका काल वाल्मीकि से बहुत पीछे का है किंतु अलंकारों की बहुलता वाल्मीकि तक में है स्वयंसिद्ध है कि कवि अनजाने ही अलंकारों का प्रयोग करता आया है और इस प्रकार अपने काव्य को सुन्दर बनाता आया है। 'सुन्दर" के अभाव में काव्य (और कोई भी वस्तु) अधिक दिनों तक आनंद नहीं दे सकती। सौंदर्योपासक कविवर कीट्स (J. Keats) के अनुसार तो सुंदर ही सदैव आनन्द देती है।[3] सौंदर्य क्या है?—अलंकार का ही तो पर्याय है यह:—

सौंदर्यमलंकारः।[4]

साहित्य दर्पणकार ने अलंकार की परिभाषा यों की है:—

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशयन.।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्ग दादिवत्॥

अर्थात् शब्द और अर्थ की शोभा बढ़ाने वाले, रस आदि के उपकारक शब्दार्थ के अस्थिर भावों को अलंकार कहते हैं।

आचार्य दण्डी अलंकारों को 'काव्य-शोभा-कर' कहते हैं:—

काव्यशोभाकरान्धर्मा न लंकारान्प्रचक्षते।

लाला भगवानदीन इस परिभाषा से सहमत नहीं। उनके अनुसार अलंकार सौंदर्य है, दूसरों के सौंदर्य को बढ़ाने वाला मात्र

१—अन्योक्ति कल्पद्रुम (द्वि. सं.) पृ. २
२—पंडितराज जगन्नाथ
३—'A thing of beauty is a joy for ever.
४—आचार्य वामन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं। बा० गुलाबराय "शोभा को अलं अर्थात् पूर्ण व पर्याप्त करने के कारण (ही उन्हें) अलंकार" कहते हैं।[1]

कुछ भी हो अलंकार काव्य का परमावश्यक तत्त्व है—'अलंकारा एव प्रधाना:।' चंद्रालोककार ने तो यहाँ तक कह डाला है कि यदि कोई काव्य को अलंकार रहित मानता है तो वह क्यों नहीं मान लेता कि अग्नि उष्णता हीन है—

अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्मनलं कृती॥
(—चंद्रालोक १-१८)

और ठीक भी है, वनिता का सुन्दर मुख भी अलंकार बिना अच्छा नहीं लगता :—

जदपि सुजाति सुलच्छणी, सुवरन सरिस सुवृत्त।
भूषन बिनु नहिं राजहीं, कविता बनिता मित्त॥[2]

तथा—

न कान्तममपिनिभूषं विभाति वनिता मुखम्॥[3]
—(काव्यालंकार १-१३)

आगे चलकर 'अलंकार सम्प्रदाय' एक संप्रदाय ही बन गया जो काव्य में अलंकारों को साध्य समझने लगा, अलंकार्य फीका पड़ गया। पं. कृष्णशंकर जी ने ठीक ही लिखा है—"जब ये (अलंकार) साधन न रहकार साध्य बनते हैं तो अपने कर्तव्य से च्युत हो जाते हैं।"[4] संस्कृत में दण्डी, भामह आदि एव हिन्दी में आचार्य केशव इस सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। 'सर्वधर्मानपरित्यज्य' का 'माम' का अर्थ इनके लिए 'अलंकार हो गया। खोज खोज कर अलंकारों की भर्ती की गई अलंकार हीन काव्य 'नग्न' दोष युक्त कहा जाने लगा। वे ऊपर से थोपी हुई वस्तु जान पड़ने लगे तभी तो दीन जी ने लिखा—"हम बाहरी आभूषणों को अलंकार नहीं मानते।" प्रसिद्ध अभिव्यंजनावादी (Expressionist) क्रोचे (Croce) भी अलंकारों को ऊपर से आरोपित वस्तु नहीं मानता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बा० गुलाबराय के शब्दों में—"अलंकार नितांत बाहरी नहीं हैं जो जब चाहे पहन लिए जाएँ या उतार कर रख दिए जाँय। वे कवि या लेखक के हृदय के उत्साह के साथ बँधे हुए हैं। हमारी भाषा की बहुत कुछ सम्पन्नता अलंकारों पर ही निर्भर है। वे महात्मा करण के कवच और कुण्डलों की भाँति सहज होकर ही शक्ति के द्योतक बनते हैं।"[५]

अब हमें देखना है कि कविवर प्रसाद एवं पंत का इन अलंकारों के प्रति क्या रवैया (attitude) है?

प्रसाद विशेषतः (प्रसाद) एवं पन्त अलंकारों के पीछे इतने तो नहीं पड़े जितने पुराने जमाने के कवि। फिर भी यत्र-तत्र अलंकार आ ही गए हैं। इनके लिए अलंकार अनिवार्य तो नहीं, हाँ आवश्यक अवश्य है। जिस प्रकार इन्होंने भाषा में क्रांति ला दी थी, उसी प्रकार इनके अलंकार सर्वथा नवीन हैं, पुराने कवियों के से घसे-पिटे नहीं। स्वदेशी अलंकारों की अपेक्षा इनकी रुचि विदेशी अलंकारों की ओर विशेष दिखाई पड़ती है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनके अलंकार ऊपर से थोपी वस्तु नहीं जान पड़ते, वे अपने आप ही आए हैं। पन्त ने अपनी 'वाणी' को समझाया था:

वाणी ! मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार?

आज्ञाकारिणी वाणी ने इनकी बात को अनसुना तो नहीं किया फिर भी वह कभी कभी अलंकार कक्ष में घुस जाती और चुपके से अलंकार धारण करके देख लेती—इससे उसकी शोभा बढ़ी ही, घटी नहीं। रीतिकालीन कवियों की भाषा की भाँति इनकी भाषा-कामिनी नहीं थी जो बिना अलंकारों के कवियों से मानकर जाती

१. सिद्धांत और अध्ययन पृ० २
२. आचार्य केशव
३. भामह
४. 'कविवर रत्नाकर' पृ० १४२
५. सिद्धांत और अध्ययन पृ० ४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं ऐंठी सी बैठी रहती। वह तो वर्तमान युग की शिक्षित नारी है जो अलंकार के नाम पर एक अँगूठी एवं चार चूड़ियों को ही पर्याय समझती है ताकि वे भार स्वरूप नहीं अपितु हार-स्वरूप होकर आवें। प्राचीन भारतीय अलंकार जो इन कवियों को सर्वाधिक प्रिय है वे हैं उपमा एवं रूपक। उपमालंकार तो न जाने कब से कवियों का परमप्रिय अलंकार रहा है। राजशेखर तो इसे अलंकारों की मुकुट मणि, सर्वस्व एवं कवियों की माता तक कहते हैं :—

अलंकार शिरोरत्नं सर्वस्वं काव्य संपदाम्।
उपमा कविवंशस्य मातैवेति मतिर्मम॥

पर इनका उपमालंकार भी बिल्कुल नवीन है, प्राचीन पथ का पथिक नहीं। प्रसाद जी की उपमाएँ देखिए:—

मादकता से आए तुम,
संज्ञा से चले गए थे।

इसमें तुम—स्थूल—को उपमान 'मादकता' एवं 'संज्ञा'—सूक्ष्म—हैं। निम्न पंक्तियाँ निहारिए :—

मकरंद मेघमाला सी,
वह स्मृति मदमाती आती।

इन पंक्तियों का उपमान उपरोक्त पंक्तियों से सर्वथा विपरीत है। स्मृति—सूक्ष्म—का उपमान मेघमाला—स्थूल माना गया है जबकि पूर्व पंक्तियों में स्थूल का सूक्ष्म उपमान है। सूक्ष्म के सूक्ष्म उपमान के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ अत्यन्त ही प्रसिद्ध हैं :—

जो घनीभूत पीड़ा थी,
मस्तक में स्मृति सी छाई।

यहाँ 'पीड़ा' उपमेय है एवं 'स्मृति' उपमान जो दोनों ही सूक्ष्म हैं इसी प्रकार :

निकल रही है मर्म वेदना,
करुणा कलित कहानी सी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थूल से स्थूल की उपमा देना तो अत्यन्त सरल है। कविगण न जाने कब से नेत्रों को कमल एवं जंघाओं को कदली-तनु मानते आए हैं। 'आँसू' की कतिपय निहारिए:—

काली आँखों में कितनी
यौवन की मद की लाली।
मानिक-मदिरा सी भर दी
किसने नीलम की प्याली॥

'काली आँखें' एवं 'नीलम की प्याली' दोनों वस्तुएँ ही देखी जा सकती हैं। 'मछली सी आँखें' तो अत्यन्त स्थूल हैं। गर्भधारिणी श्रद्धा का उपमाओं द्वारा वर्णन देखिए:—

केतकी गर्भ सा पीला मुँह
आँखों में आलस भरा स्नेह,
कुछ कृशता नई लजीली थी
कंपित लतिका सी लिए देह।

बँधे हुए पीन पयोधरों का तो कहना ही क्या—

सोने की सिकता में मानो
कालिन्दी बहती भर उसास,
स्वर्गंगा में इन्दीवर की
या एकपंक्ति कर रही हास!

'पहेली सा जीवन' कहने में कितना साम्य है। पहेली भी तो नहीं सुलझ पाती और जीवन ही कहाँ सुलझता है?

नीले परिधान में से चमकता हुआ श्रद्धा का सुकोमल गात कैसा रहा होगा—इसे बताने के लिए साधारण उपमा से तो काम नहीं चल सकता, पुराने उपमान क्या खाकर सामने आ सकते हैं, अतः कवि नई ही उपमा देता है:—

नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ वन बीच गुलाबी रंग।

मेघों के वन में गुलाबी रंग के बिजली के फूल तो आपने देखे ही होंगे, बस फिर क्या है ? श्रद्धा के शरीर का कुछ कुछ अनुमान आप लगा सकते हैं। और हाँ, आपने फुंकार मारता हुआ टेढ़ा मेढ़ा सर्प तो निहारा होगा, बस ऐसी ही जलप्लावन की अवस्था थी :—

उधर गरजती सिंधु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों सी,
चली आ रहीं फेन उगलती,
फन फैलाए व्यालों सी।

उपमाओं के चयन में कवि अधिकतर अपने पर ही निर्भर रहे हैं :—

जल उठा स्नेह दीपक सा,
नवनीत हृदय था मेरा।
अब शेष धूम रेखा से,
चित्रित कर रहा अँधेरा॥

इतना ही नहीं प्रसाद जी परिचित व्यापारों की भी योजना इस प्रकार की है कि उनमें नव नवीनता है :—

कुसुमाकर रजनी के जो,
पिछले पहरों में खिलता।
उस मृदुल शिरीष सुमन सा,
मैं प्रात धूल में मिलता॥

जरा इधर भी देख लीजिए। इडा का वर्णन है—

बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल।
वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशि खण्ड सदृश था स्पष्ट भाल।
दो पद्मपलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थूल अलकों का सूक्ष्म तर्कजाल उपमान कितना समीचीन है! तर्क से भी तो किसी एक निश्चित विंदु पर पहुँच जाना असंभव है, वह भी तो उस उलझी डोरी के समान है जिसका सुलझाना दुष्कर है।[1] कितना अपूर्व साम्य है। दूसरे इड़ा बुद्धि की प्रतीक है और तर्कशास्त्र (Logic) के लिए भी तीक्ष्ण बुद्धि अपेक्षित है। इस प्रकार का उपमालंकार अलंकारों के गढ़ रीतियुग में कहाँ? कहीं कहीं घिसी हुई पुरानी उपमायें भी हैं—

विद्रुम सीपी सम्पुट में,
मोती के दाने कैसे।
है हंस न शुक यह फिर क्यों,
चुगने को मुक्ता ऐसे?

ओठों को मूँगे के समान लाल, दाँतों को मोती एवं नाक को शुक की चोंच न जाने कब से कहते आए हैं। इसी प्रकार मन को पतंग कहना उर्दू के परवाने की स्मृति दिला देता है—

कैसी कड़ी रूप की ज्वाला।
पड़ता है पतंग-सा इसमें मन होकर मतवाला।
सांध्य गगन-सी रागमयी यह बड़ी तीव्र थी हाला॥

संभव है प्रसाद एवं पंत हिन्दी जनता को एकाएक परेशानी से बचाने के लिए नवीन उपमाओं के साथ पुरानी उपमायें भी प्रयुक्त की हैं नए पैसे के साथ पुराना पैसा भी चलने दिया है। पंत में भी पुराने ढंग की अलंकार योजना मिलती है।

द्विरद–दन्तों से उठकर,
सुखद कर सीकर से बढ़कर।
भूति से शोभित बिखर बिखर,
फैल फिर कटि के-से परिकर।

---

१. फिलसफी को बहस के अन्दर खुदा मिलता नहीं।
डोर को सुलझा रहा है औ, सिरा मिलता नहीं॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बदल यों विविधि वेश जलधर,
बनाते थे गिरि को गजवर।

पंत की उपमाओं के विषय में तो कहना ही क्या ? वे तो उपमाओं की लड़ी बाँध देते हैं। छाया के लिए कहाँ कहाँ से उपमान लाए गए हैं—

तरुवर के छायानुवाद-सी,
उपमा—सी भावुकता—सी।
अविदित भावाकुल भाषा-सी,
कटी छँटी नव कविता सी।

ऐसी उपमायें खोज निकालना प्राचीन कवियों के लिए स्वप्न था। कहीं कहीं ऐसी नवीन उपमाओं से कविता में दुर्बोधता भी आ गई है—

गूढ़ कल्पना-सी कवियों की,
अज्ञाता के विस्मय सी।
ऋषियों के गंभीर हृदय सी,
बच्चों के तुतले भय सी।

'बच्चों के तुतले भय सी' का अर्थ उस समय तक नहीं समझा जा सकता जब तक 'भय' का अर्थ 'भय का कारण' एवं 'तुतले भय' का अर्थ 'तुतली बोली में व्यंजित भय' न लिया जाय। इन लक्ष्यार्थों के उपरांत अर्थ होगा—'तुम बच्चे के उस भय के समान हो जिसे वह अपनी तुतली बोली में व्यक्त करता है।' पंत जी के बादल तो न जाने कैसे कैसे हैं ? कभी 'कमल दलों' से हैं तो कभी 'विहग-से'। यदि एक समय वे 'मृग से' हैं तो दूसरे समय 'मत्त मतंगज से'। यदि एक बार वे 'परियों के बच्चों से' कोमल हैं तो :

कभी अचानक भूतों का-सा,
प्रकटा विकट महा आकार।
कड़क-कड़क जब हँसते हम सब,
थर्रा उठता है संसार।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निम्न पंक्तियों के से उपमान क्या कहीं सम्भव हैं ?

धीरे धीरे संशय से उठ,
बढ़ अपयश से शीघ्र अछोर।
नभ के उर में उमड़ मोह-से,
फैल लालसा-से निशि भोर।

संशय किस प्रकार धीरे धीरे उठता है—इसे कौन नहीं जानता ? बदनामी कितनी जल्दी फैल जाती है–इसको बताने की आवश्यकता नहीं। सांसारिक व्यक्ति के हृदय में कितना मोह उमड़ता है—इसे सभी जानते हैं और लालसा का बढ़ना ?–इसे तो आप भी जानते हैं। एक जगह और ऐसी ही अमूर्त से उपमा दी गई है—

गिरिवर के उर से उठ-उठ कर,
उच्चाकांक्षाओं से तरुवर।

—'पर्वत प्रदेश में पावस'

हृदय में आकांक्षायें उठती ही जाती हैं, इसी प्रकार पर्वत-हृदय से तरुवर। दो पंक्तियाँ और निहारिए—

छपी-सी पी-सी मृदु मुसकान,
छिपी-सी खिंची सखी-सी साथ,
उसी की उपमा सी बन............

'ग्रंथि' में उपमाओं की क्या कमी है ?—

लाज की मादक सुरा सी लालिमा,
फैल गालों में नवीन गुलाब-से।
छलकती थी बाढ़ सी सौंदर्य की,
अधखुले सस्मित गढ़ों से सीप से।
इन गढ़ों में-रूप के आवर्त से,
घूम फिर भर नाव से किसके नयन।
हैं नहीं डूबे भटक कर अटक कर,
भार से दब कर तरुण सौंदर्य के ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपमाओं की माला गूंथ दी है इन पंक्तियों में तो। सचमुच सौंदर्य के भँवरों में किसके नयनों की नाव नहीं डूब जायगी ?

कहीं कहीं तो उपमाओं की झड़ी लग जाती है जिससे व्यंजना में तीव्रता आ गई है—

जब अचानक अनिल की छवि में पला,
एक जल-कण जलद-शिशु सा-पलकपर,
आ पड़ा सुकुमारता का गान—सा ।[१]
चाह-सा सुधि-सा सगुन-सा स्वप्न-सा ।

तरुणी के एकाएक चौंकने का चित्र कितना कोमल है—

.....................मैं झट झौंककर ।
जग पड़ी हूँ अनिल पीड़ित लहर सी ॥

बसन्तु ऋतु में पृथ्वी का वैभव ठीक उसी प्रकार बढ़ता है जिस प्रकार उसके दिन उपमा-कितनी प्रसंगानुकूल है।

अवनि के बढ़ रहे थे दिवस से ।

इस प्रकार हमारे दोनों कवियों के उपमालंकार के भूरि भूरि प्रयोग किए हैं किन्तु उपमान सर्वथा नवीन है, उनमें परम्परा की गंध तक नहीं। उपमा के अतिरिक्त इनका प्राचीन प्रिय अलंकार रूपक है। इस अलंकार में भी इनका पथ प्राचीन कवियों से भिन्न है। सूर अथवा तुलसी अथवा रीतिकालीन कविगणों की भांति इनके रूपक अधिक लम्बे नहीं खिचते—दो तीन पंक्तियों में ही समाप्त हो जाते हैं। आँसू की चिर परिचित पंक्तियाँ निहारिए—

मुख-कमल समीप सजे थे,
दो किसलय दल पुरइन के।

---

१. ऐसी ही एक झड़ी उद्धव शतक में है—

सूखे से सुमे से सक बके से सके से थके से।
भूले से भ्रमे से भभरे से भकुवाने से;
हौले से हले से हूले हूले से हिए में हाय,
हारे से हरे से रहे हेरत हिराने से ॥२२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जल-विन्दु सदृश ठहरे कब,
इन कानों में दुख किनके।

मुख को कमल मानकर कानों को पत्ते कहना कितना उपयुक्त है, इतना ही नहीं पुरइन के दल पर बूँद स्थिर नहीं रहती इसी प्रकार उनके कानों में प्रसाद जी के दुख-विन्दु नहीं ठहरते। आँसू की दो पंक्तियाँ और देखिए—

इस हृदय कमल का घिरना,
अलि अलिकों की उलझन में।
मिलना निश्वास-पवन में॥

निम्नलिखित पंक्तियों का रूपक देखिए जिसमें 'स' आ जाने से उपमा भी सटक आई है—

लतिका घूँघट से चितवन की,
वह कुसुम दुग्ध सी मधु धारा,
सावित करती मन अजिर रही,
था तुच्छ विश्व-वैभव सारा।

पंत में भी ऐसे प्रयोग पाए जाते हैं। कभी कभी उनकी पंक्तियाँ उपमा से प्रारंभ होकर साँगरूपक में पर्यवसित होती हैं और कभी कभी इसका विलोम होता है। उदाहरणार्थ :—

रँगीले-गीले फूलों-से
अधखिले भावों से प्रमुदित
वाल्यःसरिता के कूलों से
खेलती थी तरंग-सी नित।

प्रारंभ को दो पंक्तियों में उपमालंकार है किंतु वाल-सरिता में रूपकालंकार। इसके विपरीत निम्न पंक्तियाँ निहारिए :

खैंच ऐंचीला भ्रू-सुरचाप—
शैल की सुधि यों वारंवार—
हिला हरियाली सुदुकूल,
झूला झरनों का झलमल हार""।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'भ्रू-सुरचाप' के रूपक में 'हरियाली का सुदुकूल' एवं 'झरनों का हार' इतनी जोर की चोट देता है कि बेचारा गिर पड़ता है। जैसा अभी कहा है प्राचीन कवियों की भाँति पंत की रूपक शृंखला दूर तक चलती नहीं दिखाई देती है। हाँ, दूर तक चलने वाले व्यंग्य रूपक अवश्य दिखाई देते हैं जिनमें दो-दो तीन-तीन उपमानों का गुंफन दूर तक चलता दिखाई पड़ता है :—

सजा सुमनों के सौरभ-हार
गूँथते थे उपहार;
अभी तो हैं ये नवल प्रवाल,
नहीं छूटी तरु डाल।
विश्व पर विस्मित चितवन डाल
हिलाते अधर प्रवाल।
न पत्रों का मर्मर संगीत,
न पुष्पों का रस, राग, पराग
एक अस्फुट, अस्पष्ट अगीत,
सुप्ति की ये स्वप्निल मुसकान
सरल शिशुओं के शुचि अनुराग.
वन्य विहगों के गान।

'विरोधाभास' के लिए प्रसाद जी की निम्न पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं :—

जीवन में मृत्यु बसी है,
जैसे बिजली हो घन में।

एवं—

शीतल ज्वाला जलती है,
ईंधन होता दृग-जल का।

पंत की निम्न पंक्तियाँ देखिए :—

गिरा हो जाती है नयन
नयन करते नीरव भाषण।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन पंक्तियों में दर्शाया गया है कि स्नेह के कारण वाणी में नेत्रों की शक्ति आ जाती है अर्थात् प्रेमी प्रिय का ऐसा वर्णन करता है कि श्रोता के समक्ष उसका चित्र आ खड़ा होता है। इसी प्रकार 'नयन करते नीरव भाषण'—आँखों ही आँखों में, बिना मुँह खोले, सब बातें हो जाती हैं।

विरोधाभास का एक और उदाहरण 'ग्रंथि' से लीजिए :—

जो अपांगों से अधिक है देखता,
दूर होकर और बढ़ता है तथा,
वारि पीकर पूछता है घर सदा!

प्रेम की विचित्र रीति का वर्णन उन पंक्तियों में बड़ी सुन्दरता से किया गया है। साधारणतया व्यक्ति समूचे नयन ने भली भाँति देखता है किंतु प्रेम करने वाले अपांगों से—नेत्रों के कोरों से अधिक देखते हैं। वस्तु दूर होकर घटती जाती है किंतु प्रेम दूर होकर—वियोगावस्था में—और भी अधिक बढ़ता जाता है। जीवन में व्यक्ति पानी पीने से पूर्व पिलाने वाली की जाति पूछता है किंतु प्रेमी पानी पीकर जाति पूछता है—यदि पूछता है तो। अन्तिम पंक्ति में लोकोक्ति अलंकार भी है।

निम्न पंक्तियाँ देखिए—'ग्रंथि' से ही :—

निज पलक मेरी विकलता साथ ही
अवनि से, उर से, मृगेक्षणि ने उठा,
एक पल, निज स्नेह श्यामल दृष्टि से
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप सी।

प्रथम दो पंक्तियों में यथासंख्य अलंकार हैं—उस बालिका ने अवनि से पलक उठाए और 'मेरी विकलता' उर से उठी। 'स्नेह' में श्लेष एवं-दीप-सी में उपमा है। श्लेष का उदाहरण पंत की निम्न पंक्तियों में भी है :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चढ़ाता भी है तो गुण से,
डोर कर में है मन आकाश,
पटकता भी है तो गुण से,
खींचने को चकई सा पास।

'प्रसाद' जी का यथासंख्य इन पंक्तियों में है—

दिवा रात्रि या मित्र वरुण की,
बाला का अक्षय शृंगार।

एवं—

नीचे जल था ऊपर हिम था,
एक तरल था एक सघन।

अन्य स्थानों पर भी जहाँ यमक, श्लेष, यथा संख्य आदि आए हैं वहाँ प्राचीन कवियों की भाँति खिलवाड़ नहीं।

जहाँ तक अनुप्रास अलंकार का सम्बन्ध है यह तो नहीं कि वह नहीं है किंतु उसका इन कवियों के लिए इतना आग्रह नहीं जितना रीतिकालीन कवियों के लिए था। दो एक उदाहरण देखिए:

कुसुम कानन अंचल में मंद
पवन प्रेरित सौरभ साकार,
रचित परमाणु पराग शरीर,
खड़ा हो ले मधु का आधार।
आज शक्ति का खेल खेलने में आतुर नर,
प्रकृति संग संघर्ष निरंतर अब कैसा डर?

इसी प्रकार पंत जी की पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं:—

तरणि के ही संग तरल तरंग में,
तरणि डूबी थी हमारी ताल में।

अनुप्रास के साथ-साथ इसमें यमक भी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी प्रकार—

लोल लहरों में कलापति पर लिखी।
× × ×
सुन मधु मरुत मुरली की ध्वनि।
× × ×
ललित लोल उमंग सी लावण्य की।

सन्देहालँकार दोनों कवियों में प्रचुररूप में पाया जाता है। पंत जी को यह अलंकार अत्यंत प्रिय है। प्रथम प्रसाद जी को लीजिए :—

थी किस अनँग के धनु की,
कह शिथिल शिंजिनी दुहरी।
अलबेली बाहुलता या,
तनुछवि-सर की नवलहरी॥
× × ×
आह ! वह मुख ! पश्चिम के व्योम,
बीच जब घिरते हों घन श्याम,
अरुण रवि मण्डल उनको भेद
दिखाई देता हो छवि धाम।
या कि नव इन्द्र नील लघु शृंग
फोड़ कर धधक रही हो कान्त,
एक लघु ज्वालामुखी अचेत
माधवी रजनी में अश्रांत।

पंत जी का उदाहरण लीजिए :—

निद्रा के नस अलसित बन में
वह क्या भावी की छाया,
दृग-पलकों में विचर रही, या
वन्य देवियों की माया!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंत जी का उल्लेख अलंकार दर्शनीय है :—

बिंदु में थीं तुम सिंधु अनंत
एक स्वर में समस्त संगीत,
एक कलिका में अखिल बसंत,
धरा पर थीं तुम स्वर्ग पुनीत।

इन प्राचीन अलंकारों के साथ ही साथ हमारे कवियों में पश्चिम के कतिपय विशेष अलंकार पाए जाते हैं। वे हैं मानवीकरण (Personification), विशेषण विपर्यय (Transferred Epithet) एवं ध्वनि चित्रण (Onomatopoeia)। छायावादी कवियों के अतिरिक्त भी वर्तमान युगीन कवियों को पश्चिमी दूकान से आए हुए यह आभूषण अत्यंत प्रिय हैं।

जहाँ तक मानवीयकरण (Personification) का प्रश्न है प्रसाद, पंत, निराला—तीनों इसके धनी हैं। यह अलंकार वहाँ होता है जहाँ अचेतन (Inanimate) पर चेतन (Animate) का आरोप कर दिया जाता है।[१] प्रसाद जी का चिर, परिचित धरा का मानवीकरण देखिए:—

सिंधु-सेज पर धरा बधू अब
नतिक संकुचित बैठी सी,
प्रलय-निशा की हलचल स्मृति में
मान किए सी, ऐंठी सी।

ऊषा को प्रसाद जी ने किस खूबी से नारी बना दिया है:—

१—(a "In Personification inanimate objects and abstract notions are spoken of as having life and intelligence."
—P. C. Wren, (H. S. Grammar (32nd Ed.) Page 363.

(b) By this figure we ascribe intelligence and personality to inanimate things."
—J. C. Nesfield (Eng. Grammar Servies Bk IV) Page 395.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बीती विभावरी जाग री।
अम्बर पनघट में डुबो रही
ताराघट ऊषा नागरी॥

ऊषा नागरी किस सजीवता के साथ अम्बर पनघट में ताराओं के एक-एक घट को डुबो रही है।

पन्त में मानवीकरण के राशि राशि उदाहरण प्राप्त होते हैं। चाँदनी का अति प्रसिद्ध मानवीकरण देखिए:—

नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारद-हासिनि,
मृदु करतल पर शशि-मुखधर,
नीरव, अनिमिष, एकाकिन !
+ + +
दिन की आभा दुलहिन बन
आई निशि-निभृत शयन पर,
वह छवि की छुई मुई सी
मृदु मधुर लाज से मर-मर।

इनके अतिरिक्त मानवीकरण के अन्य उदाहरण 'प्रकृति-चित्रण' नामक अध्याय में दिए हैं अतः यहाँ पुनरावृति करना निरर्थक है।

शब्द-ध्वनि या ध्वनि चित्रण (Onomatopoeia) नामक अलंकार तो प्रसाद एवं पन्त के प्रत्येक शब्द में ही समझिए। यह अलंकार वहाँ होता है जहाँ शब्द के उच्चारण मात्र से ही अर्थ बोध हो जाय।[१] यह अलंकार पश्चिम की "देन" कदापि नहीं है। कबीर, सूर, जायसी, तुलसी एवं रीतिकालीन कवियों में यह

१—"This is the name given to that artifice of language by which the sound of the words is made to suggest ornecho the sense."
—Ibid P. 402.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहंकार यधिकत्र रूप में प्राप्य है—हाँ, नामकरण शायद अभी लम्बा है। प्रथम प्रसाद जी को लें :—

उधर गरजती सिंधु लहरियाँ,
कुटिल काल के जालों सी
चली आ रही फैन उगलती,
फन फैलाए व्यालों सी।
धँसती धरा, धधकती ज्वाला,
ज्वालामुखियों के निश्वास,
और संकुचित क्रमशः उसके
अवयव का होता था ह्रास।

पठन मात्र से हम जान जाते हैं कि सिंधु लहरियाँ किस प्रकार 'गरजती' होंगी 'फन फैलाए व्यालों सी' से हमें शीघ्र ज्ञात हो जाता है कि सिंधु-लहरें एक के ऊपर एक उठती गिरती चली आ रही हैं। 'धँसती एवं धधकती' शब्द भी अपनी कहानी अपने आप ही कह रहे हैं। निम्न पंक्तियाँ देखिए :—

झंझा झकोर, गर्जन है,
विजली है नीरद माला।

इनमें भावनाओं का तूफान गर्जन करता हुआ यूँ ही सुनाई पड़ता है। इसके साथ ही साथ मधुर पंक्तियाँ भी देखिए—

कंकन कणित रणित नूपुर थे,
हिलते थे छाती पर हार।

'उठ उठ गिर गिर फिर आती' में छोटे शब्दों की आवृत्ति से ज्ञात हो जाता है कि कार्य में कितनी क्षिप्रता है। नीचे की पंक्तियों से नूपुरों की आवाज सुन लीजिए :—

तभी कामना के नूपुर की,
हो जाती झनकार।

यदि प्रत्येक शब्द की आवाज सुननी हो तो यह पंक्ति देखिए:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खग-कुल-कुल-कुल-सा बोल रहा।

पंतजी का तो कहना ही क्या? वे तो ध्वनि चित्रण के उस भंडार में बैठे हैं जहाँ हिन्दी के किसी भी कवि की साँस तक नहीं पहुँच सकती। 'ग्रंथि' की एक छोटी सी पंक्ति निहारिए :—

विरह अहह कराहते इस शब्द से।

'ह' अक्षर की पुनरावृत्ति से ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई जीव प्रत्यक्ष ही कराह रहा है। चिड़ियों की ध्वनि सुननी हो तो यह पंक्तियाँ देखिए :

वाँसों का झुरमुट—
संध्या का झुटपुट
हैं चहक रही चिड़ियाँ
टी—वी—टी—टुट्—टुट्

'झंझा में नीम' का स्वर इन पंक्तियों में निकल पड़ रहा है :—

झूम झूम झुक झुक कर
भीम नीम तरु निर्भर
सिहर सिहर थर् थर् थर्
करता सर् मर्
चर् मर्।

शब्दों से ज्ञात हो जाता है कि नीम क्या करता है? कोमल स्वर निम्न पंक्तियों से निकल रहे हैं :—

पपीहों की वह पीन पुकार
निर्झरों की भारी झरझर,
झींगुरों की झीनी झनकार
घोनों की गुरु गंभीर घहर।
विंदुओं की छनती छनकार
दादुरों के वे दुहरे स्वर!

भयंकर शब्दों के लिए 'निष्ठुर परिवर्तन' उठा लीजिए :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहे वासुकि सहस्रफन !
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरंतर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्ष-स्थल पर !
शत शत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर !
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पांतर !
अखिल विश्व ही विवर,
वक्र कुण्डल
दिङ् मण्डल !

और जब बादल अपना राग अलापते हैं :—

कभी अचानक भूतों का सा
प्रकटा विकट महा आकार,
कड़क कड़क, जब हँसते हम सब,
थर्रा उठता है संसार,

तब तो पाठक उनके घोष से सचमुच ही थर्रा जाता है ! पंत को यह अलंकार अत्यंत ही प्रिय है (था ?) इसीलिए उनकी रचनाओं में रलमल, टलमल, झम झम, सन् सन, कल कल, छल छल जैसे शब्दों का बाहुल्य है जिनका अर्थ जानने के लिए किसी शब्द-कोष को नहीं उठाना पड़ता।

विशेषण विपर्यय (Transferred Epithet) लक्षणा वृत्ति पर आधारित है। अभिधावृत्ति के अनुसार विशेषण का जो स्थान होता है वहाँ इसे न रखकर कहीं दूर रखते हैं।[1] यह अलंकार पंत

१. (a) "The epithet or qualifying adjective is Transferred from a person to a thing."—J. C. Nesfield.
(Eng. Gram. Series BK. IV P. 398)
(b) "An epithet is trasnferred from its proper word to another that is Closely associated with it in the Sentence. "—P. C. Wren.
(H. S. Grammar 32nd Ed.) P. 367.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में खूब है एक उदाहरण लीजिए :—

दीनता के ही विकंपित पात्र में
दान बढ़ कर छलकता है प्रीति से !

इन लघु पंक्तियों में दीनता की प्रधानता दिखाने के लिए कवि ने उसे मूर्तिमंत कर दिया है। पात्र दीन का नहीं दीनता का है, इसी प्रकार दीन विकंपित नहीं, पात्र विकंपित हैं। इस प्रकार इसमें विशेषणों का विपर्यय है। नीचे की पंक्ति में व्यथित व्यक्ति नहीं अपितु व्यथा ही मूक है, भूलने वाला नहीं अपितु भुलाव मुखर है :—

मूक व्यथा का मुखरा भुलाव !

दो पंक्तियाँ और देखिए :—

कल्पने ! आओ, सजनि उस प्रेम की
सजल सुधि में मग्न हो जायें पुनः ।

प्रिय के वियोग में स्मृति मात्र से आँखें सजल हो जाती हैं। इस प्रकार सजल होना आँखों का गुण है किंतु यहाँ सुधि ही सजल हो गई है। इस प्रकार विशेषण के विपयय से पक्तियों में जीवन आ गया है उधर प्रसाद जी के 'आँसू' का प्रारम्भ निहारिए :—

इस करुणा कलित हृदय में,
अब विकल रागिनी बजती।
इन हा हा कार स्वरों में,
वेदना असीम गरजती ॥

इसमें अभिधार्थ से काम नहीं चलता अतः लक्ष्यार्थ लेना पड़ता है। हृदय कोई सारंगी नहीं जिसमें तार लगे हों और जिससे कोई 'रागिनी' निकले, इसी प्रकार वेदना कैसे गरज सकती है ?—हाँ, वेदना से व्यथित मनुष्य अवश्य गरजेगा—अत्यंत दुखी होगा।

इस प्रकार प्रसाद एवं पंत के लिए अलंकार 'अभिव्यक्ति के विशेष द्वार' होकर आए। 'वे भाषा की पुष्टि के लिए, राग की पूर्णता के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिए आवश्यक उपदान हैं........वे वाणी के हास, अश्रु, स्वप्न, पुलक, हाव, भाव हैं।

आधुनिक काल वैसे तो अलंकारों का काल नहीं है फिर भी प्रसाद एवं पंत ने उनका प्रयोग तो किया ही। "रीतिकाल में जब भाषा की जाली केवल अलंकारों के चौखटे में ही फिट करने के लिए बुनी जाने लगी और भावों की उदारता, शब्दों की कृपण-जड़ता में बँधकर सेनापति के दाता और सूम की तरह इकसार हो गई तो आधुनिक युग अलंकारों के प्रति एक विद्रोह लेकर खड़ा हुआ, परन्तु काव्य-देश से उनका सर्वथा निष्कासन तो असंभव था, हाँ उनकी पोजीशन अवश्य घटा दी गई और साथ ही आधुनिक विशेष दण्ड-विधान के अनुसार उनको कुछ विदेशी शिक्षादीक्षा देकर संस्कृत करने का भी सफल प्रयत्न किया गया।"

इस प्रकार, जैसा अभी पीछे दिखाया गया है, आधुनिक कवियों के अलंकार पश्चिमी रंग से रंगे हुए मिलते हैं। प्रसाद को अलंकारों से इतना मोह नहीं जितना पंत को। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि पंत की अलंकार प्रियता आधुनिक कवियों—प्रसाद, निराला महादेवी आदि—में सर्वाधिक है। इतना ही नहीं, कहीं कहीं तो उनकी काव्य-बाला अलंकार-भार से दब भी गई है। 'चाँदनी' का मानवीकरण अजीब ही है, इसी प्रकार उनकी अप्सरा। सम्भव है इसी अतिश-यता के कारण उन्हें १६३८ में "प्रास के रजत प्राश" खोलकर दो वर्ष उपरांत ही समस्त आभूषण उतारने के लिए अपनी मानिनी वाणी की प्रार्थना करनी पड़ी थी :—

तुम बहन कर सको जन मन में मेरे विचार,
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४—और अन्त में ......

अन्धास्ते ते कवयो येषां पंथाः क्षुण्णः परैर्भवेत् ।
परेषां तु पदाक्रान्तः पंथास्ते कवि कुंजरा ॥

—गंगावतरण १-१७।

"अर्थात् वे कवि अंधे हैं जो दूसरों द्वारा कुचले हुए मार्ग पर चलते हैं। महान् कवि तो वे ही हैं जिनके द्वारा बनाई गई राह पर दूसरे चलें।

गत पन्नों में हमने संक्षेप में, बा० जयशंकर प्रसाद एवं पं० सुमित्रानन्दन पंत का अध्ययन विविध दृष्टियों से एक ही साँस में किया। दोनों महान कवियों ने धूल में पड़ी हुई हिन्दी को कहाँ बिठा दिया! कवि शब्द "कव्" धातु से बना है जिसका अर्थ है वर्णन करना। अतः कवि वह है जो किसी वस्तु का मोहक ढंग से वर्णन करे—साधारण वर्णन तो हम और आप भी कर सकते हैं। अन्य अर्थ निर्माण करना भी है। कवि न कुछ से सब कुछ (Everything out of nothing) निर्मित कर देता है इसीलिए हीगेल (Hegel) ने कविता को सब से महान कला माना है। और इसीलिए वह भी अपने संसार का निर्माता है, ब्रह्मा है—'कवि-र्मनीषी परिभूः स्वयंभू।' प्रसाद एवं पंत दोनों ही महान कवि हैं। उन्होंने ऐसी ऐसी वस्तुओं का निर्माण किया जिन तक उनके पूर्ववर्ती कवियों का ध्यान भी नहीं पहुँच सका, शब्दों के ऐसे मधुर प्रयोग किए जिन्हें खोज निकलना पिछले कवियों के लिए असंभव था।

काव्य प्रकाशकार ने काव्य-रचना के कुछ प्रयोजन गिनाए हैं :—

काव्यं यशसेऽर्थ कृते व्यावहारविदे शिवेतरक्षत ये।
सद्यः परनिर्वतये कान्ता-सम्मिततयोप देश युजे ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारे कवियों ने इनमें चाहे किसी के लिए भी काव्य-रचना की हो यह नग्न सत्य है कि उन्होंने "अर्थकृते" नहीं की। प्रसाद जैसे एक निष्ठ शैव तो "परद्रव्येषु लोष्ठवत्" में विश्वास रखते ही थे, पंत इतने कोमल एवं लजीले हैं कि अर्थ जैसी वस्तु के विषय में सोच भी नहीं सकते—उसकी प्राप्ति के लिए तो परुषता एवं परले सिरे की वेहयायी वांछनीय है। यहाँ हमें वृहद्त्रयी के तीसरे कवि निराला का स्मरण हो आता है जिन पर चाणक्य का यह वाक्य कि 'धन अधम व्यक्ति (ही) चाहते हैं'' [१] पूर्णतया लागू होता है। ऐसा अवढर-दानी क्या आज के जगत में कहीं भी संभव है ?

प्रसाद एवं पन्त महान् कलाकार हैं। 'क' का अर्थ है आनंद और 'ला' का लाने वाली, अतः 'कला' वह है जो आनंद लावे। इन दोनों कवि पुँगवों की रचनाएँ पढ़कर कौन आनंद-विभोर नहीं हो उठेगा ! ! द्विवेदी युगीन काव्य-सिकता से ऊवे हुए पाठक को इन्होंने वह सावनी फुहारें दीं जो युग-युग तक याद रहेंगीं; हिन्दी के इतिहास में वह लीक बनादी जो मिटाए भी नहीं मिट सकेगी !!!

प्रारंभ में हमारे कवियों पर कैसे कैसे प्रहार किए गए—आह ! छायावाद एवं रहस्यवाद का लेबिल लगाकर इनकी रचनाओं का हुक्का-पानी वँद कर दिया गया, जहाँ तक वश चला कोमल कल्पनाओं एवं उससे भी कोमल अभिव्यंजनाओं को पत्र-पत्रिकाओं की पंचायतों में स्थान नहीं दिया गया, 'जूही कली' को 'बूढ़े बैलराज महाराज' के क्रूर खुरों से कुचलवा दिया गया। जिस प्रकार अवसर कुअवसर पं० नेहरू भारतीय जन-संघ को साम्प्रदायिक कहने से नहीं चूकते उसी प्रकार उस समय के आलोचक इन्हें साम्प्रदायिक कवि कहने लगे। शुक्ल जी को तो रहस्यवाद एवं असभ्यता में विशेष दूरी नहीं लगी। उन्हें रहस्य-भावना तो ठीक जँची किन्तु रहस्यवाद में उन्हें साम्प्रदायिक गंध आने लगी, कृत्रिमता (Arti-

१—'अधमाधनमिच्छन्ति'

—चाणक्य नीति ८–१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ficiality) एवं मिथ्यापन (Insincerity) की बू आने लगी, संसार से विमुखता एवं पलायन की योजना दीखने लगी, किन्तु जैसा कि बा० गुलाबराय ने कहा है यदि रहस्यवाद को मुलम्मा भी कहा जाय तब भी तो उस मुलम्मे में थोड़ा बहुत सोना होना अनिवार्य है, अतः वह थोड़ा बहुत सोना तो है ही, प्रारंभिक आलोचकों ने तो उसे भी स्वीकार नहीं किया—इतना ही नहीं, दूसरों से भी उसे स्वीकार न करने का आग्रह (दुराग्रह ?) किया। उस समय का आलोचक रहस्यवाद के भीतर मुस्कराते मानवतावाद को न चीन्ह सका। छायावाद की, उसके शैशव में ही कैसी मजाक उड़ाई गई, भारती के दुकूल में से घुटनों के बल सरकते ही उसे दुलार के बदले कैसी प्रताड़नाएँ दी गईं :—

मधुपीड़ा हो या मधुमूर्च्छा स्पंदन हो या हो अविपाक।
हृत्तन्त्री का 'रप्चर' हो या फेन्सी' हो या हो अभिशाप॥
हिचकी हो या हो उच्छ्वासें, नीरवता हो, फालिज हो।
क्यों न एक छाया छोरों का अलग मेडिकल कॉलिज हो॥

हमारे प्रसाद एवं पंत ने रीतिकालीन अतिशय श्रृँगारिकता एवं द्विवेदी युगीन मर्यादावादिता के विरुद्ध जो जिहाद बोला वह भला उन कन्जर्वेटिवों को कैसे भाता ? एक छोर पर तो रीतिकालीन कवि के जो प्रेम न होने पर भी उसके इजहार में, उसकी नुमायश में, ढेरों कागज़ बिगाड़ चुके थे तथा एक ओर आचार्य प्रवर द्विवेदी थे जिन्होंने प्रेम-गली में झाँकने पर कर्फ्यू लगा दिया था। हमारे कवियों ने इन दोनों प्रस्तावों को अपने वीटो के विशेषाधिकार से रद्द कर दिया एवं जीवन के सनातन सत्य, प्रेम, की बात सुनकर अपनी ईमानदारी का परिचय दिया। जो छायावाद को नितान्त पश्चिम का पिसर मुतवन्ना मानते हैं उन्हें याद रखना चाहिए कि छायावादी कवियों ने प्रेम का ऐसा प्रदर्शन कहीं नहीं—जी हाँ ! कहीं नहीं—किया जैसा पश्चिमी कवि करते हैं। "पूर्व और पश्चिम की संस्कृति में एक अंतर यह भी है कि हमारे यहाँ प्रेम का प्रदर्शन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं। हमारे यहाँ सँयम है, इसीलिए पति-पत्नी में प्रगाढ़ प्रेम होते हुए भी वे रास्ता चलते कहीं भी प्रेमालिंगन नहीं करते।"¹ कहने की आवश्यकता नहीं, प्रसाद एवं पन्त के प्रेम-चित्रण में संयम है, 'प्रदर्शन' नहीं; जैसा कि पश्चिम में होता है। और इसी शुद्ध एवं पुनीत प्रेम के कारण उन्होंने नारी को उच्चतम स्थान प्रदान किया। —उसे न तो खिलौना माना, न 'गुह्यतम् छिद्र' मात्र और न "पूँछ... जो कभी कभी उठाकर अलग भी रख दी जा सकती है।" उन्होंने नारी को वही स्थान दिया जो उन्हें भारत के ऋषि-मुनि काल में प्राप्त था फिर भी उनकी प्रत्येक बात में पश्चिम का ही प्रभाव टटोलना कहाँ तक समीचीन है ?

भाषा में भी नवीन मोड़ लाने का श्रेय प्रसादजी एवं पंतजी को ही है। व्रजभाषा की देखाभाली, साफ सुथरी, छायादार सड़क छोड़कर यह कविद्वय खड़ी बोली की ऊबड़ खाबड़, अनजान पगडण्डी पर चल पड़े। कितने परिश्रम के साथ इन्होंने उस पगडण्डी को राजपथ बनाया, कितना पसीना बहाकर उस पर घनी छाँह कर सके—क्या यह भुलाने की बातें हैं ? उनका शब्द विधान नवीन था, अलंकार योजना नवीन थी, छंद-योजना नवीन थी—सब कुछ नवीन ही नवीन था, और यही वह नवीनता थी जो पुरातनवादियों को रुचिकर नहीं लगी, इतना ही नहीं, अरुचिकर भी लगी। संभव है दूरारूढ़ लाक्षणिकता एवं स्वानुभूति पर आश्रित प्रतीक विधान उन रिटायर्ड जजों की समझ में ही न आए हों इसीलिए उनका फैसला प्रसाद-पंत के विरुद्ध हो गया हो। यह भी संभव है कि उन्हें अपने इन्द्रासन छिन जाने का भय हो इसीलिए उन्होंने गरलालोचना-मेनका को उनके समीप भेजा हो। शायद उन्होंने यह भी सोचा हो कि जीते जी ही बच्चों के नाम जायदाद क्यों करें

१—२८ अगस्त १९४९ को दिल्ली में, अपने भाषण में, गुरु जी (मा. स. गोलवलकर)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाय ? घर से निकाल दें तब ? कुछ भी हो ठण्डे खून को उष्ण-रक्त की क्रांति, काव्य-परंपरा के विरुद्ध विद्रोह की भावना, कतई पसंद नहीं आई, आती भी कैसे ?

प्रसादजी का स्वर, भरे द्विवेदी-युग में भी, अप्रभावित रहा। वे मौलिक चिंतक थे इसीलिए आर्यसमाजी सुधारवादी इतिवृत्तात्मक काव्य के विरुद्ध उन्होंने स्वानुभूतिपरक काव्य-भवन की आधार-शिला रक्खी जिस पर निराला एवं प्रसाद ने अपने सहयोगियों के साथ ऐसा भव्य भवन खड़ा कर दिया। प्रसादजी एक साथ कवि, कलाकार, दार्शनिक एवं पण्डित थे। संक्षेप में वे स्वयं एक युग थे। यह कहा जाता है कि छायावाद लघु गीतों में ही जीवित रह सकता है। इसका उत्तर उन्होंने कामायनी के रूप में दिया जिसमें उन्होंने अपने महाकवि, कलाकार एवं दार्शनिक रूप को चरम सीमा तक पहुँचा दिया। उधर 'काव्य कला तथा अन्य निबंध उनके पाण्डित्य का साक्ष्य दे रहे हैं। सर्वप्रथम उन्होंने ही इतिवृत्त प्रधान पद्यों के नगाड़ों की धूम में संकेतात्मक अभिव्यंजनामयी प्रेम की करुण नफीरी बजाई। सर्वप्रथम इन्होंने सतही वस्तुओं की ओर न निहार कर रहस्य को अपने काव्य का प्रतिपाद्य विषय चुना।" प्रकृति के द्वारा प्रेम और प्रेम के द्वारा प्रकृति पर उनकी अधिकाधिक दृष्टि पड़ती गई।"...... साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि उन्होंने ही सर्वप्रथम उदय होते हुए तारों और खिलती हुई कलियों के सौंदर्य को देखा और पहचाना।"[1] उन्होंने जो कुछ भी किया सर्वप्रथम ही किया अतः प्रारंभ में यदि वे समझ में नहीं आ सके तो कोई अचरज नहीं। प्रयोगवादी कवि भी तो नहीं समझे जा सके जिसके लिए बेचारे 'अज्ञेय' को इतनी वकालत करनी पड़ी। छायावादी कवियों के लिए यही परेशानी थी।

प्रसादजी की परंपरा को पन्तजी ने निभाया—और बहुत दिनों

१—श्री नंददुलारे वाजपेयी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तक निभाया। जैसा पीछे दिखाया जा चुका है प्रसादजी अपने समस्त कवि-जीवन में प्रेम और सौंदर्य के ही गायक रहे जिस प्रकार जीवन में आनंदवादी। जहाँ कहीं भी उनमें अन्य किसी प्रकार की लकीरें दिखाई पड़ती हैं वे आनंद की लकीरों को और भी गहरा करने के लिए ही आई हैं। पंत में यह बात नहीं। उन्होंने तो चारों दिशाओं में निगाह दौड़ाई। इतना ही क्यों आकाश धरती को भी उन्होंने अनदेखा नहीं रहने दिया। वे एक साथ ही छायावादी, रहस्यवादी, प्रगतिवादी, गाँधीवादी, मार्क्सवादी, अरविन्दवादी और ...... और अन्तश्चेतनावादी हैं। बहुत काल तक पंत की वीणा से 'सुन्दर' की ही ध्वनें निकलीं। 'गुन्जन' में वे 'शिवं की भूमि' पर आ गये। इसमें उनकी "वहिर्मुखी प्रकृति' सुख-दुख में समत्व स्थापित कर अन्तर्मुखी बनने का प्रयत्न" करने लगी।

सन् १९३७-३८ अर्थात् जब छायावाद का गगनचुम्बी प्रासाद ढहने लगा था, कवि अपने छायावादी युग का अन्त करके अपने चारों ओर के युग को वाणी देने का प्रयास करने लगा था। यहीं से पन्त ने ऐसा टर्न लिया कि छायावाद के लम्बे राजपथ पर प्रसादजी की ही स्मृति रह गई। 'युगवाणी के प्रकाशन के साथ पंतजी की काव्य साधना का दूसरा युग प्रारंभ होता है। उनके इस मोड़ से मार्क्सवादी बन्दे बड़े प्रभावित हुए। खुशियाँ मनाई गई, बताशे बाँटे गए, विज्ञापन किए गए; दीवाली मनाई गई। किन्तु कब तक ? जब तक पाकिस्तान नहीं बना। ज्यों ही पंत जी ने स्वर्ण किरण, स्वर्णधूलि, मधुज्वाल, उत्तरा लिखे बस ! कुछ मत पूछिए। मुहर्रम मनाए गए, काले फीते बाँटे गए, बत्तियाँ बुझा दी गईं। ब्लैक आउट हो गया। डा॰ रामविलासजी ने बहुत दिनों से टँगे हुए दुधारे को एक बार पुनः उठा लिया यह ठीक भी था। हमें तो यह विश्वास था कि कि 'ग्राम्या' का कवि "बौद्धिक सहानुभूति" के स्थान पर कभी न कभी तो सच्ची सहानुभूति देगा ही, किंतु उसने तो स्वर्ण के पीछे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने उत्तरदायित्व को भी विसार दिया, कलाकार की ईमानदारी क्या है—उसे भी भुला दिया। कवि की "बौद्धिक सहानुभूति" की मधुर छलना बेनकाब हो गई। किसान-मजदूर समझ गए कि यह व्यक्ति हमारे आँसू पौंछने के लिए आगे नहीं बढ़ सकता। पहले उसने दूर से जो कुछ धैर्य दिया वह सब औरों को आगे बढ़ाकर खुद पीछे खिसकना मात्र था। इतना ही नहीं वे बिना पीछे देखे इतना भागे कि अरविन्द-आश्रम में ही साँस ली। सच तो यह है कवि में निराला का सा न तो पौरुष ही है और न साहस ही। निरालाजी ने इसीलिए "उनकी कविता में (Female Graces) स्त्रीत्व के चिन्ह अधिक" बताए हैं।[१] उन्होंने यह भी लिखा है कि इसी के कारण पंतजी हिन्दी के कवित्त को नहीं समझ सके—उनके स्वभाव का स्त्रीत्व कवित्त जैसे पुरुषत्व-प्रधान काव्य के समझने में बाधक हुआ है। रही संगीत की बात, सो संगीत में भी

१—पंतजी और पल्लव।

स्त्री-पुरुष-भेद हुआ है—राग और रागनियों के नाम ही इनके उदाहरण हैं।..........पंतजी ने कवित्त की लड़ी को १६ मात्राओं से जो अपने अनुकूल कर लिया, वह स्त्री-भेद में हो गया है।"[१] इसी स्त्रीत्व के कारण उनकी कल्पना या तो "प्रभु के द्वार" पर बैठी रही या बूर्ज्वा वर्ग की ड्योढ़ी पर खड़ी रही—हाँ समाज की भीड़ कभी नहीं आ सकी। 'युगवाणी' एवं 'ग्राम्या' का कवि अपने स्वर्ण काव्य में जाने कैसे रामनामी ओढ़कर समन्वयवादी एवं प्रतिक्रियावादी बन गया।

किन्तु एक बात डाक्टर साहब से भी कहना है। उन्हें ऐसे कोमल व्यक्ति पर इतनी जोर से हथौड़े मारने की आवश्यकता नहीं थी। शायद वे समझाने से ही मान जाते। और फिर हम यह ही क्यों देखें कि उन्होंने हमें क्या नहीं दिया? हमें तो उसके विषय में सोचना है जो उन्होंने दिया है।

१—वही।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डाक्टर साहब तो पंत जी के दिशांतर पर ही क्षुब्ध हैं, बहुत से आलोचकों को तो उनमें मौलिकता जैसी किसी वस्तु के दर्शन नहीं होते। निराली जी ने लिखा—'किस तरह कहाँ कहाँ से छाया चित्रों को उनकी प्रकृति ने ग्रहण किया है उन्होंने नहीं लिखा। यह शायद इसलिए कि इससे महत्ता घट जायगी, लोग समादर कम करेंगे। दूसरों की आँखों में धूल झोंक कर, दूसरों को दबाकर बड़े होने की आदत पश्चिम की ही शिक्षा से मिलती है........। यद्यपि अपनी शिक्षा का हाल पंत जी ने नहीं लिखा, छिपा रक्खा है, तथापि एक जिज्ञासु दार्शनिक को वे धोखा नहीं दे सकेंगे।'[1] इसके अनंतर उन्होंने रवीद्रनाथ की कविताओं के भावों को पंत जी में ज्यों का त्यों दिखाया है। फिर वे आगे लिखते हैं—'............कहीं कहीं जो रूपान्तर किया है वह केवल अपने छंद की सुविधा के लिए पंत जी चौय कला में निपुण हैं। वह कभी एक पंक्ति से अधिक का लोभ नहीं करते। एक पंक्ति किसी एक कविता से ली, दूसरी किसी दूसरी कविता से तीसरी में कुछ अपना हिस्सा मिलाया चौथी में तुक मिलाने के लिए वैसा ही कुछ गढ़कर बैठा दिया। इस तरह की सफाई पकड़ने में समालोचकों को बड़ी दिक्कत होती है। उधर कवि को अपनी मौलिकता की विज्ञापनबाजी करने में कोई भय भी नहीं रहता। दूसरे के भाव को लेकर प्रायः सब कवियों ने कविताएँ लिखी हैं परन्तु वहाँ हर एक कवि ने दूसरे के भाव पर विजय पाने करने की उससे बढ़कर अपना कोई विशेष चमत्कार दिखलाने की चेष्टा की है। पंत जी में यह बात बहुत कम है। कहीं कहीं तो दूसरे के भावों को बदलकर उसमें कुछ अपना हिस्सा मिलाकर चमत्कार दिखलाने में इन्हें सफलता मिली है, परन्तु अधिकांश स्थलों में सुन्दर सुन्दर भावों को इन्होंने बड़ी बुरी तरह नष्ट कर डाला है। यह केवल इसलिए कि यह भावों के सौंदर्य पर उतना ध्यान नहीं देते, जितना शब्दों के सौंदर्य पर।'[1] वे और भी लिखते

१. प्रबन्ध-पद्म (द्वि० सं०) पृ० ७१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं—'यह दोष (अर्थात दूसरों का शब्द-साम्य ही अपना सकना, भाव-सौंदर्य नहीं।) पंत जी की तमाम कविताओं में हैं और यह केवल इसलिए कि वह पंक्तिचोर हैं भाव भण्डार के लूटने वाले डाकू नहीं। छकने के लिए एक चुल्लू से ज्यादा नहीं चाहते शायद हज्म न कर सकने का खौफ करते हैं।'[२] दुख तो यह है कि वे विचारे इस 'चुल्लू' को भी तो नहीं पचा सके यदि पचा लेते तो फिर क्या था। उन्होंने शायद आचार्य चंद्रबली पाण्डे का यह वाक्य नहीं पढ़ा होगा—'उधार लेना पतन है पचा लेना पराक्रम और पकड़ा जाना विनाश।'[३] नगेन्द्र जी पंत जी के चौर्य लांछन को दूर करने घर से निकलने किन्तु उन्हें भी लिखना ही पड़ा—'निराला जी के दूषित छिद्रान्वेषण से असहमत होते हुए भी हम उन पर संस्कृत के कालिदास बंगला के रवीन्द्र और अंगरेजी के शैली कीट्स एवं टेनिसन आदि का ऋण अस्वीकृत नहीं कर सकते।'[४] डा० भटनागर ने अपनी पुस्तक 'छायावाद' में चोरी की कई पंक्तियाँ उद्धृत की हैं। उधर पं० शांतिप्रिय द्विवेदी ने भी लिखा है क पंत ने 'अन्य कवियों के भावों से पाथेय भी लिया है।'[५] कुछ भी हो कवि ने स्वयं भी तो लिखा है-'मैं उन्नीसवीं सदी के अंगरेजी कवियों-मुख्यतः शैली वर्डसवर्थ कीट्स और टेनिसन से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ....मैं कवीन्द्र की प्रतिभा के गहरे प्रभाव को भी कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करता हूँ।....मेरे उपचेतन ने इन कवियों की निधियों का यत्र तत्र उपयोग भी किया है और उसे अपने विकास का अंग बताने की चेष्टा की है। निराला जी भी तो यही चाहते थे कि वे 'पल्लव' के 'प्रवेश' में कम से कम इसे स्वीकार तो करते।[७] कुछ भी हो, हमें भाव साम्य देख

१. वही पृ० ७३।
२. वही पृ० ७४।
३. राष्ट्र भाषा पर विचार'-पृ० ८८।
४. सुमित्रानंदन पंत'-पृ० ८०।
५. कवि और काव्य'—पृ० २०२।
६. आधुनिक कवि—पर्यालोचन पृ० २६।
७. देखिए 'पंतजी और पल्लव'।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर ही किसी कवि को चोर नहीं कह देना चाहिए। ध्वन्यालोककार के अनुसार तो यदि कवि अपने पूर्ववर्ती कवि के भाव को नूतनता के साथ कहता है तो वह चोर कदापि नहीं—

यदपि तदपि रम्यं यत्र लोकस्य किंचित,
स्फुरितमिदमितीयं बुद्धिरभ्युज्जिहीते।
अनुगतमपि पूर्वच्छायया वस्तु तादृक्,
सुकविरुपनिबध्नन् निंद्यतां नोपयाति।

अन्यत्र भी कहा गया है कि दूसरों की छायामात्र लेने वाला तो कवि ही हैं और भावापहरण करने वाला कुकवि। हाँ, चोर तो वह है जा भाव के साथ शब्दावली का भी अपहरण कर लें। उसको तो दूर से ही सलाम कर देना चाहिए जो पद वाक्य और अर्थ समेत सारे वाक्य का ही अपहरण करे :—

कविरनुतिच्छायामर्थं कुकवि पदादिक चौर :—
सर्व प्रबंधहर्त्रे साहसकर्त्रे नमस्तस्मै॥

इस लिहाज से पंत जी चोर नहीं ठहराए जा सकते। भाव साम्य तो होता ही है। कालिदास शैक्सपियर, तुलसी कौन ऐसा है जिसने अपने पूर्ववर्ती कवियों पुराण निगमागमों आदि से भाव न ग्रहण किए हों। यही ध्यान में रखकर 'यदि किसी कवि की कविता में भाव सादृश्य आ जाय तो समालोचना करते समय एकाएक उसे तुक्कड़ या चोर न कह वैठना चाहिए"……'[1] अन्यथा सभी तुक्कड़ और चोर ही नजर आयेंगे। इसी सनक में कि मैं नितांत मौलिक ही लिखूं, कवि गोल्डस्मिथ (Oliver Goldsmith) महीनों बेकार वैठा रहा था। हमें तो रसेल नावेल की वात जँचती है कि यदि कोई कवि नितांत मौलिक होने का इरादा करके कविता रचेगा तो अन्ततोगत्वा उसकी रचना वडी विचित्र बन जायगी।[2] तात्पर्य यह है कि पंत जी एवं अन्य कवियों का भाव-साम्य देखकर ही निंदक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाना उचित नहीं। प्रसाद जी तो मौलिक चिंतक हैं किंतु कामायनी तक की 'यथा सृष्टि' शतपथ, वेद आदि के 'आधार पर' ही तो हो सकी।[3]—अस्तु

प्रसाद एवं पंत ने छायावाद का ऐसा हरा पौधा रोपा कि दसियों सालों से सूखी रेती में चलता हुआ हिन्दी पाठक कृत कृत्य हो उठा सौंदर्य एवं प्रेम से लदे हुए ऐसे तराने सुनाए कि 'एक था राजा' के इतिवृत्ति सुन सुनकर ऊबे हुए पाठक का मन-मयूर हर्षातिरेक से एक बारगी पुनः थिरक उठा। सजल मेघ, कल-कल, निनादिनी सरिता, चंद्रिका-चर्चित यामिनी, अवगुंठन से झाँकती हुई नव कलिका, बेमतलब ही इतस्ततः दौड़ता हुआ भ्रमर, कोकिल की काकली इन सब को इस परिश्रम से एक साथ ही एक स्थान पर ला दिया कि हिंदी का पतझर—प्रताड़ित उद्यान कुछ ही क्षणों में नन्दन—कानन बन गया। हृदय के कुसुम करों से, गुमसुम 'खड़ी' हुई 'बोली' को इस कौशल से सजाया—सँवारा कि वह भारत जैसे महान राष्ट्र की 'भाषा' की चुनरी ओढ़, गर्व से ऊँचा मस्तक कर विश्व-भाषाओं के प्रतियोगिता—कक्ष में प्रवेश पा सकी। ऐसे अमर कवियों का स्थान हिंदी साहित्य के इतिहास में असंदिग्ध है। जहाँ तक पंत जी का प्रश्न है, अभी उनकी काव्याराधना अविराम गति से जारी है, भविष्य अपनी थाती सौंपने के लिए स्वयमेव उनकी ओर ललक कर बढ़ा चला आ रहा है। जहाँ तक प्रसाद जी का प्रश्न है आह? उन्हें स्वर्गीय कहने को जी तो नहीं चाहता किन्तु नयन

---

१. 'देव और विहारी' (द्वि० सं०) पृ० ७८।

२. 'If a poet resolves to be original it will end commonly in his being merely peculiar.'
—James Russel Lowell.

३. 'कामायनी'—आमुख पृ० ८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

LX-2

तो कहे ही दे रहे हैं, उनकी मौन, अनमनी पड़ी हुई बीना तो बताए ही दे रही है ! ! अब तो हमें राष्ट्र कवि के शब्दों से ही, जो उन्होंने साहित्यकार संसद—भवन में प्रसाद जी का तैल-चित्र उद्घाटन करते समय कहे थे, संतोष कर लेना पड़ता है—"प्रसाद जी भविष्य के द्रष्टा थे। उन्होंने हिंदी को और मानवता को अपने साहित्यिक कृतित्व द्वारा जो देन दी है वह आज भी जीवित है और भविष्य में भी जीवित रहेगी।"

समाप्त

मुद्रक—आगरा अखबार प्रेस, आगरा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi